MAPA- 508

भारत में स्थानीय शासन (भाग- 2)

LOCAL GOVERNANCE IN INDIA (Part- 2)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139
फोन नं0- 05946- 261122, 261123
टॉल फ्री नं0- 18001804025
ई0 मेल- info@uou.ac.in
वैबसाईट- http://uou.ac.in

अध्ययन मंडल

प्रो0 गिरिजा प्रसाद पाण्डे निदेशक- समाज विज्ञान विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	प्रो0 अजय सिंह रावत उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
प्रो0 अशोक कुमार शर्मा, सेवानिवृत्त लोक प्रशासन विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर	प्रो0 उमा मेदुरी लोक प्रशासन विभाग, इंदिरागांधी राष्ट्रीय मुक्त वि0वि0 दिल्ली
प्रो0 बी0 अरूण कुमार लोक प्रशासन विभाग, वर्धमान महावीर मुक्त वि0वि0 कोटा, राजस्थान	प्रो0 एम0 एम0 सेमवाल, राजनीति विज्ञान विभाग केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गढवाल, उत्तराखण्ड
डॉ0 ए0 के0 रुस्तगी, रीडर राजनीति विज्ञान विभाग जे0 एस0 पी0 जी0 कॉलेज, अमरोहा, उत्तर प्रदेश	प्रो0 मधुरेन्द्र कुमार (विशेष आमंत्रित सदस्य) राजनीति विज्ञान विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड
डॉ0 घनश्याम जोशी उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	डॉ0 सूर्य भान सिंह, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
पाठ्यक्रम संयोजन और सम्पादक	
डॉ0 घनश्याम जोशी लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ0 शशि सौरभ, राजनीति विज्ञान विभाग डॉ0 शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश	13, 14, 15
डॉ0 संतोष सिंह, राजनीति विज्ञान विभाग चौरी बेलहा महाविद्यालय, तरवा, आजमगढ़, उत्तर प्रदेश	17, 18, 19, 20
डॉ0 घनश्याम जोशी, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	16
डॉ0 दुर्गाकान्त चौधरी, राजनीति विज्ञान विभाग एस0 बी0 एस0 पी0 जी0 कालेज, रूद्रपुर, उत्तराखण्ड	21, 22, 23, 24

प्रकाशन वर्ष- 2020

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण- 2020

प्रकाशक निदेशालय- अध्ययन एवं प्रकाशन, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

अनुक्रम

भारत में स्थानीय शासन (भाग- 2)

खण्ड- 1 नगरीय शासन- 1	
1. नगरीय शासन का विकास	1 – 18
2. नगरीय शासन	19 – 37
3. नगरीय शासन संबंधी सुधार	38 – 55
4. 74वां संविधान संशोधन एवं नगरीय शासन का आधुनिक परिप्रेक्ष्य	56 – 67
खण्ड- 2 नगरीय शासन- 2	
5. नगर निगम	68 – 83
6. नगरपालिका	84 – 99
7. छावनी परिषद, औद्योगिक नगरियां	100 – 113
8. स्थानीय शासन का संघात्मक रूप	114 – 127
खण्ड- 3 नगरीय शासन एवम् राज्य प्रशासन	
9. नगरीय संस्थाओं पर राज्य का नियंत्रण	128 – 143
10. नगरीय शासन के आय के साधन	144 – 163
11. शासनिक ढाँचा: नगरीय स्थानीय प्रशासन	164 – 183
12. भारत में स्थानीय शासन की प्रगति का मूल्यांकन	184 – 203

इकाई- 1 नगरीय शासन का विकास

इकाई की संरचना

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 भारत में नगरीय शासन का महत्व

1.3 नगरीय शासन का विकास

1.3.1 प्राचीन भारत में नगरीय शासन

1.3.2 मध्यकालीन भारत में नगरीय शासन

1.3.3 आधुनिक भारत (ब्रिटिश काल) में नगरीय शासन

1.3.3.1 सन् 1687 से 1881 का काल

1.3.3.2 सन् 1882 से 1909 का काल

1.3.3.3 सन् 1927 से 1937 का काल

1.3.3.4 सन् 1937 से 1947 का काल

1.4 स्वतंत्र भारत में नगरीय स्वशासन का विकास

1.4.1 केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों द्वारा गठित समितियां और आयोग

1.4.2 नगरीय विकास मंत्रालय

1.5 सारांश

1.6 शब्दावली

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

लोकतंत्र का तात्पर्य यह है कि इस शासन व्यवस्था में लोगों स्वयं अपने स्वामी होते हैं, अर्थात वे स्वयं अपनी समस्याओं के समाधान हेतु स्वयं पर शासन करते हैं। लोककल्याणकारी राज्य की संकल्पना के विकास के साथ

ही साथ लोकतंत्र में लोगों की केन्द्रीयता और भी बढ़ गई। राज्य के कार्यक्षेत्र में विस्तार ने इस बात पर विशेष बल दिया कि लोग स्वयं अपनी समस्याओं का समाधान करें, क्योंकि केवल केन्द्र सरकार या राज्य सरकार से हम यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि उनके माध्यम से सभी समस्याओं का ससमय और सठीक समाधान किया जा सके। स्थानीय समस्याओं का समाधान स्थानीय लोगों के अलावा किसी और के द्वारा सठीक तरीके से कर पाना सम्भव नहीं है। अतः इसके लिए यह आवश्यक हो गया कि हम स्थानीय स्वशासन के माध्यम से न केवल स्थानीय समस्याओं का स्थानीय समाधान निकाले बल्कि इसके माध्यम से लोकतंत्र के जड़ों को और भी अधिक मजबूत बनाए।

स्थानीय स्वशासन की संकल्पना लोकतंत्र के विस्तार के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण मानी जाती है। इसे लोकतंत्र का आधार व आधारशिला भी कहा जाता है, क्योंकि यही वह माध्यम है जिसके द्वारा नागरिकों को अपने ही मामले में प्रबन्धन करने का अवसर प्राप्त होता है। भारत में स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं कोई नई नहीं हैं बल्कि प्राचीनकाल से भारत में स्थानीय स्वशासन किसी न किसी रूप में विद्यमान रही हैं। भारत में, ब्रिटिशकाल में स्थानीय स्वशासन शुरूआत सन् 1687 से मानी जाती है जब मद्रास कॉरपोरेशन की स्थापना हुई। स्वतंत्र भारत में स्थानीय स्वशासन की संरचना बहुत हद तक ब्रिटिश ढ़ाँचे से मिलती जुलती है। भारत में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को दो वर्गों में विभाजित किया गया है- ग्रामीण और शहरी। ग्रामीण क्षेत्रों में त्रिस्तरीय प्रशासनिक व्यवस्था अपनाई गई है- जिला परिषद्, पंचायत समिति और ग्राम पंचायत जिसे पंचायती राज कहते हैं तथा नगरों में नगर निगम (बड़े नगरों में) और नगरपालिका (छोटे नगरों में) के रूप में स्थापित किया गया है। स्वतंत्र भारत में स्थानीय स्वशासन की इकाइयों का विकास बड़ी ही तीव्र गति से हुआ है। भारत में स्थानीय शासन को संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्र व राज्य में शक्तियों के बंटवारे में राज्य सूची के अधीन रखा गया है तथा 1993 में दो संविधान संशोधनों- 73वाँ और 74वाँ, के माध्यम से संवैधानिक दर्जा भी प्रदान कर दिया गया है।

लोकतंत्र की सबसे महत्वपूर्ण विशिष्टता यह है कि यह शक्ति के विकेन्द्रीकरण पर बल देती है और शक्ति के विकेन्द्रीकरण की जब बात होती है तो स्थानीय स्वशासन की संकल्पना महत्वपूपर्ण हो जाती है, जिसके बिना विकेन्द्रीकरण की कल्पना भी नहीं की जा सकती। स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को बृहद रूप से दो वर्गों में विभाजित कर समझा जा सकता है- ग्रामीण स्वशासन तथा शहरी अथवा नगरीय स्वशासन। इस इकाई में हम स्थानीय स्वशासन के अंतर्गत भारत में नगरीय स्वशासन के विकास का अध्ययन करेंगे।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- नगरीय स्वशासन के महत्व को जान सकेंगे।
- भारत में नगरीय स्थानीय स्वशासन के विकास को समझ सकेंगे।
- भारत के वर्तमान नगरीय स्थानीय स्वशासन की पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।

1.2 भारत में नगरीय शासन का महत्व

भारत में नगरीय शासन का इतिहास बहुत ही पुराना रहा है जिसके सन्दर्भ में पिछली इकाई में चर्चा की जा चुकी है। नगरीय शासन में समय-समय पर कई परिवर्तन भी किए गए, इसलिए नगरीय शासन का इतिहास कई उतार-चढ़ाव से गुजरा है। भारत में लोकतंत्र की स्थापना का आधार कहे जाने वाले स्वशासन की इकाइयों में नगरीय शासन अत्यंत ही महत्वपूर्ण माना जाता रहा है। विकास के दौर में भारत भी विश्व के अन्य देशों के समकक्ष आगे बढ़ रहा है और समय के साथ-साथ भारत में भी शहरों का निरंतर विकास और प्रसार हो रहा है, जिसके कारण नगरीय शासन के अंतर्गत नवीन चुनौतियाँ भी आ रहीं हैं। वर्तमान में भारत में लगभग सौ से भी अधिक नगर निगम, 14 सौ से अधिक नगरपालिकाएं तथा 02 हजार से भी अधिक नगर पंचायत हैं। प्रत्येक पांच वर्ष में 32 लाख से भी अधिक सदस्यों का चुनाव इन निकायों में होता है, जिनमें से लगभग 10 लाख महिला प्रतिनिधि भी हैं। यदि भारत में कुल विधान सभाओं और संसद को मिला लिया जाए तब भी कुल जन प्रतिनिधियों की संख्या मात्र 05 हजार है। अतः नगरीय स्वशासन के निकायों ने बड़े पैमाने पर जन प्रतिनिधित्व को बढ़ावा दिया है। इतना ही नहीं बल्कि वर्तमान में लगभग 30 महिला मेयर हैं, नगरपालिकाओं में 05 सौ से भी अधिक महिला अध्यक्ष है तथा नगर पंचायतों में भी लगभग 650 नगर पंचायत महिलाओं के नेतृत्व में हैं। भारत में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों की जनसंख्या क्रमशः 16.2 तथा 8.2 प्रतिशत है और आरक्षण की व्यवस्था के माध्यम से वर्तमान में लगभग 6.6 लाख प्रतिनिधि नगरीय स्वशासन की इकाइयों में निर्वाचित हैं। इन नगरीय स्वशासन की इकाइयों ने न केवल लोकतंत्र का प्रसार किया है, बल्कि इनके माध्यम से महिलाओं तथा समाज के वंचित वर्गों का सशक्तिकरण भी सम्भव हो सका है। ऐसे में नगरीय शासन के वर्तमान स्वरूप को समझना और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है जिसके लिए सर्वप्रथम नगरीय स्वशासन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा इसके विकास को

समझना अत्यन्त आवश्यक है। इस इकाई में हम नगरीय स्वशासन के विकास को चरणबद्ध तरीके से समझने का प्रयास करेंगे।

1.3 भारत में नगरीय शासन का विकास

भारत में नगरीय शासन के विकास को समझने के लिए इसे मुख्यतः तीन चरणों में विभाजित करके देखा जा सकता है- प्रथम, प्राचीन भारत में स्थानीय स्वशासन; द्वितीय, मध्यकालीन भारत में स्थानीय स्वशासन; तृतीय, आधुनिक भारत में नगरीय स्थानीय स्वशासन। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि प्रथम तथा द्वितीय चरण में नगरीय स्वशासन के विकास को दर्शाना कठिन हो जाता है जबकि तृतीय चरण में नगरीय स्वशासन के विकास को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, क्योंकि प्रथम दो चरणों में भारत मुख्यतः गाँवों का देश ही था। यद्यपि शहरों के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता परन्तु प्राचीन तथा मध्यकाल में कुछ गिने-चुने नगर ही थे जो अत्यंत ही समृद्ध थे। शहरों का विकास स्पष्ट रूप से ब्रिटिश शासन के अंतर्गत ही हो सका जब ब्रिटिश शासन के द्वारा शहरों के विकास पर बल दिया गया। अतः इकाई के इस भाग में हम प्राचीन भारत तथा मध्य भारत में स्थानीय स्वशासन के विकास को दर्शाने के क्रम में नगरीय स्वशासन की इकाइयों के विकास को समझने का प्रयास करेंगे तथा आधुनिक भारत (ब्रिटिश काल) में नगरीय स्वशासन की इकाइयों के विकास को चरणबद्ध प्रकार से समझने का प्रयास करेंगे।

1.3.1 प्राचीन भारत में नगरीय शासन

रामायण के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में भारत में स्थानीय स्वशासन कितना महत्वपूर्ण और समृद्ध था। उस काल में प्रशासन दो भागों में विभाजित हुआ करता था- 'पुर' और 'जनपद'। ग्रामों की गणना जनपद में की जाती थी तथा वहाँ के निवासी 'जानपदा' कहलाते थे। इसके साथ ही 'ग्राम', 'महाग्राम' तथा 'घोष' का भी उल्लेख रामायण में मिलता है। ग्राम के निकट स्थित नगरों को 'पट्टन' कहा जाता था, जो कि उस समय जनपदों के लिए मंडी का काम करते थे। रामायण में 'श्रेणी' तथा 'नैंगम' जैसी संस्थाओं का भी उल्लेख मिलता है, परन्तु उनके संगठन पर विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो पाई है। महाभारत के शांतिपर्व में उल्लिखित है कि शासन की सबसे छोटी इकाई 'ग्राम' होगी, जिसके ऊपर क्रमशः दस, बीस, शत तथा सहस्त्र ग्राम-समूहों की इकाइयाँ होंगी। ग्रामों के अतिरिक्त राज्य में कुछ छोटे व बड़े नगर भी थे। इन नगरों के शासन का अधिकारी अथवा प्रमुख 'चिन्तक' कहलाता था। उसका कार्य अपने अधीनस्थों के कार्यों का निरीक्षण करना था। चिन्तक यह सुनिश्चित करता था कि उसके अधीनस्थों के द्वारा प्रजा के प्रति अन्याय न हो तथा उसका यह भी दायित्व था कि वह प्रजा

की रक्षा भी करे। शांतिपर्व में सचिव का भी उल्लेख मिलता है, जो सभी प्रादेशिक अधिकारियों के कार्यों का निर्देशन करता था। ग्राम तथा ग्रामों के प्रधान के साथ ही साथ निगमों व उनके प्रधानों का भी उल्लेख मिलता है। मनुस्मृति में मनु ने भी स्थानीय स्वशासन के व्यवस्थित स्वरूप पर बल दिया था तथा शासन की शक्तियों एवं कार्यों के विकेन्द्रीकरण के महत्व को स्पष्ट करते हुए इस बात पर बल दिया कि प्रजा में स्वशासन के गुणों का विकास भी होना चाहिए। इसके लिए उन्होंने राजा को एक पृथक उत्तरदायी मंत्री के पद सृजन का भी परामर्श दिया था। कौटिल्य ने अपनी सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' में नगर के लिए 'पुर' शब्द का प्रयोग किया था तथा पुर के प्रधान अधीक्षक को नागरिक कहा है। नागरिक को नगर की संपूर्ण कानून व्यवस्था तथा प्रशासनिक कार्यों के लिए उत्तरदायी माना है। कौटिल्य ने नगर को कई भागों में विभक्त कर नगर के प्रत्येक एक चौथाई भाग को जिस अधिकारी के अधीन रखा उसे 'स्थानिक' नाम दिया गया तथा प्रत्येक दस, बीस, चालीस परिवारों पर एक 'गोप' की नियुक्ति की व्यवस्था बताया, जिसका कार्य न केवल इन परिवारों के स्त्री व पुरूषों की जाति, गोत्र, नाम तथा व्यवसाय की जानकारी रखना था, अपितु उनकी आय एवं व्यय की जानकारी रखना भी था। ये स्थानीय संस्थायें सम्राट के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप से मुक्त हुआ करती थीं।

चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में भी शासन के विकेन्द्रीकरण की नीति को अपनाया गया। मेगस्थनीज के उस समय के पाटलिपुत्र नगर के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि नगर का कार्यभार पाँच-पाँच सदस्यों की छः समितियों में विभक्त था, जिनका कार्य उचित बाट एवं माप, व्यापार व वाणिज्य का निरीक्षण, जन्म-मृत्यु के अभिलेखों को रखना, विदेशियों का स्वागत-सत्कार, बिक्रीकर की वसूली आदि था। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में दक्षिण भारत में सातवाहन शासनकाल में नगरों व ग्रामों में स्थानीय राजनीतिक संस्थायें हुआ करती थीं। पश्चिमोत्तर भारत के कुषाण व अवन्ति के महाक्षत्रपों तथा गुप्त साम्राज्य के बीच में भद्रगण से लेकर खरपारिक गण तक छोटे-छोटे गणराज्य हुआ करते थे। गुप्तकाल में भी राजतंत्र में अनेक गणतंत्र थे, जो अपने आंतरिक मामलों में काफी हद तक स्वतंत्र हुआ करते थे।

1.3.2 मध्यकालीन भारत में नगरीय शासन

मध्यकालीन भारत में भी स्थानीय स्वशासन प्रचलित था। मध्यकाल का प्रारम्भ जो कि सल्तनत काल कहलाता है, इसमें दिल्ली के सुल्तान को इस बात का ज्ञात था कि इतने बड़े साम्राज्य को एक केन्द्र से संचालित कर पाना सम्भव नहीं है और न ही पूरे साम्राज्य पर सीधा नियंत्रण रख पाना सम्भव है। अतः उस काल में उन्होंने भी अपने साम्राज्य को विभिन्न प्रान्तों में विभाजित किया था। प्रान्त के प्रमुख को 'अमीर' अथवा 'वाली' कहा जाता था।

उनका दर्जा अर्ध स्वतंत्र शासक के समकक्ष होता था। अर्थात उनके कार्यों में सम्राठ द्वारा किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जाता था। इन प्रान्तों को भी छोटी इकाईयों 'शिक' में विभक्त किया गया था और 'शिक' के प्रमुख को 'शिकदार' कहा जाता था। शिक के उपरान्त छोटी इकाई के रूप में 'परगना' हुआ करती थी और परगने के बाद की इकाई 'मोंगा' अथवा 'गाँव' थी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मध्यकालीन भारत में भी प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण पर बल दिया गया था और स्थानीय निकायों को स्वायत्ता भी प्राप्त थी। हालांकि नगरीय शासन और ग्रामीण शासन में विभेद कर पाना कठिन था।

1.3.3 आधुनिक भारत (ब्रिटिश काल) में नगरीय शासन

ब्रिटिश शासनकाल में स्थानीय शासन का आरम्भ 1687 से मानी जाती है जब मद्रास में एक नगर निगम की स्थापना की गई। 1687 से उसका इतिहास कई उतार-चढ़ाव से प्रभावित रहा है। हर काल की अपनी एक विष्टिता रही है तथा कुछ निश्चित उद्देश्य रहे हैं।

1.3.3.1 सन् 1687 से 1881 का काल

भारत में नगरीय शासन की प्रारम्भ सन् 1687 से माना जाता है, जब इस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा सन् 1687 में मद्रास में नगर निगम की स्थापना की गई। इसे करों के संग्रह के अलावा दीवानी व फौजदारी मामलों का अभिलेख न्यायालय भी बनाया गया था। सन् 1726 में बम्बई तथा कलकत्ता में भी नगरपालिका निकायों की स्थापना की गई। सन् 1773 में रेग्यूलेटिंग एक्ट के अंतर्गत प्रेसीडेन्सी नगरों में 'जस्टिश ऑफ पीस' की नियुक्ति की गई, जिनका कार्य अपने नगरों की सफाई व्यवस्था और स्वास्थ की व्यवस्थाओं का पर्यवेक्षण करना था। सन् 1793 के अधिकार-पत्र अधिनियम द्वारा इन प्रेसीडेन्सी नगरों में नगर प्रशासन की स्थापना का उत्तरदायित्व गवर्नर जेनरल को सौंपा गया। उसे इस हेतु मद्रास, बम्बई व कलकत्ता में शांति दण्डाधिकारियों को नियुक्त करने का अधिकार भी दिया गया। सन् 1863 में कलकत्ता में भी नगर निगम की स्थापना की गई। वर्ष 1870 स्थानीय शासन के विकास की दृष्टि से अत्यंत ही महत्वपूर्ण रहा। सन् 1970 के रॉयल चार्टर के माध्यम से भारत के तीनों प्रेसीडेन्सी नगरों मद्रास, बाम्बे तथा कलकत्ता में मेयर कोर्ट की स्थापना की गई। ये कोर्ट प्रशासनिक कम और न्यायिक अधिक थे। सन् 1842 में बंगाल अधिनियम पारित हुआ, जिसके माध्यम से नगर समिति का गठन किया गया। इसका उद्देश्य नगर की सफाई व्यवस्था की देख-रेख करना था, परन्तु यह सफल न हो सका। सन् 1850 में सम्पूर्ण भारत के लिए एक अधिनियम पारित किया गया, जिसका उद्देश्य नागरिकों के आवेदन के आधार पर स्थानीय समितियों का गठन

करना था, जो कि स्वास्थ्य तथा अन्य सुविधाओं की व्यवस्था करें। परन्तु यह समिति भी ऐच्छिक ही थी, जो कि स्थानीय लोगों की मांगों के आधार पर बनाई जानी थी।

सन् 1863 में रॉयल आर्मी सेनिटेशन आयोग के द्वारा सरकार का ध्यान शहरों में फैलती गंदगी की ओर आकृष्ट किया गया, जिसके उपरान्त सरकार ने विभिन्न प्रान्तों के गवर्नरों को यह अधिकार सौंप दिया कि वे अपने प्रांत के अधीन आने वाले नगरों में निगमों की स्थापना कर सकते हैं। वे इन निगमों के सदस्य के रूप में न्यूनतम पांच तथा उससे भी अधिक सदस्यों की नियुक्ति कर सकते हैं।

सन् 1870 में लॉर्ड मेयो के प्रस्ताव को प्रकाशित किया गया, जिसमें यह कहा गया कि शासन का विकेन्द्रीकरण करने के लिए प्रान्तों को अधिक शक्तियाँ दी जाये तथा भारतीयों का प्रतिनिधित्व भी बढ़ाया जाए। इस प्रस्ताव के अंतर्गत स्थानीस निकायों में चुनाव कराए जाने के सिद्धान्त को भी लागू करने पर बल दिया गया। इस सिद्धान्त के लागू होने पर न केवल नगरीय स्थानीय स्वशासन को बढ़ावा मिला, बल्कि स्थानीय वित्त की व्यवस्था भी सुनिश्चित की गई। परन्तु व्यवहार में चुनाव के सिद्धान्त को कहीं आंशिक तो कहीं-कहीं पूर्ण रूप से अपनाया गया और अधिकतम मामलों में सदस्य मनोनीत ही किए जाते रहे। यह स्थानीय शासन की व्यवस्था तो कहीं से भी नहीं बन पायी, परन्तु इतना अवश्य सम्भव हो गया कि कुछ स्थानीय प्रबुद्ध वर्गों को सरकार द्वारा मनोनीत कर लिया गया, जिससे स्थानीय समस्याओं का समाधान किया जा सके। परन्तु सरकार पूर्ण रूप से इन निगमों पर अपना नियंत्रण स्थापित किए हुए थी।

लॉर्ड मेयो के प्रस्ताव में शक्तियों के विकेन्द्रीकरण तथा भारतीयों को प्रशासन से सम्बद्ध करने की आवश्यकता पर बल देते हुए इस हेतु नगर प्रशासन को सर्वाधिक उपयुक्त मानकर म्युनिसपल संस्थाओं को सशक्त बनाने का सुझाव दिया गया। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि इस काल में स्थानीय शासन को केन्द्र तथा प्रान्तों के वित्तीय बोझ को हल्का करने का साधन माना जाता रहा और इसी रूप में उसका प्रयोग किया जाता रहा। इस काल में निगमों के विकास को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकार की मंशा कहीं से भी स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को सशक्त करना नहीं थी, बल्कि इनका प्रयोग केवल सरकार के हितों में ही किया गया, जिससे सरकार पर पड़ रहे अतिरिक्त वित्तीय बोझ को हल्का किया जा सके। इन इकाइयों में ब्रिटिश लोगों का प्रतिनिधित्व अधिकतम था और भारतीयों को केवल नाममात्र प्रतिनिधित्व दिया गया।

1.3.3.2 सन् 1882 से 1909 का काल

1880 में लार्ड रिपन भारत के वाइसराय बनें। भारत में नगरीय शासन के विकास का अगला चरण लॉर्ड रिपन के प्रसिद्ध प्रस्ताव से होती है जो 18 मई 1882 में दिया गया। इनके शासनकाल का सबसे महत्वपूर्ण कार्य 1882 का स्थानीय स्वशासन का प्रस्ताव था। इस प्रस्ताव को स्थनी स्वशासन के विकास में एक मील का पत्थर माना जाता है। यह भारत में स्थानीय शासन का आधार बना और इसी लिए लॉर्ड रिपन को भारत में स्थानीय शासन का जनक भी माना जाता है। रिपन देश के नगरपालिकाओं को विकसित करना चाहते थे। उसके अनुसार इन्हीं संस्थाओं से देश की राजनीतिक शिक्षा का आरम्भ हो सकता है। इस प्रस्ताव में यह सुझाव दिया गया कि संपूर्ण भारत में स्थानीय निकायों की जाल बिछा दी जाए; सरकारी प्रतिनिधियों की संख्या कुल प्रतिनिधियों की तिहाई कर दी जाए; वित्तीय विकेन्द्रीकरण कर दिया जाए; तथा चुनाव को स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के गठन का आधार बना दिया जाए। इनका मुख्य उद्देश्य देश के प्रशासन को ही उत्तम बनाना नहीं था, बल्कि राजनीतिक और लोगों की शिक्षा का साधन बनाना भी था। ग्रामीण प्रदेशों में स्थानीय बोर्डों की स्थापना की गई। प्रत्येक जिले में जिला उपविभाग, तालुका अथवा तहसील बोर्ड बनाने की स्वीकृति मिली। इन स्थानीय निकायों को निश्चित कार्य दिए गए और आय के साधन भी चिन्हित कर दिए गए। इन संस्थाओं में गैर-सरकारी सदस्यों की संख्या अधिक रखे जाने पर बल दिया गया। सरकार के हस्तक्षेप को कम करने के उद्देश्य से आशा की गई कि सरकार इन्हें आदेश न दें बल्कि इनका मार्गदर्शन करे। बोर्ड के अध्यक्ष इन्हीं निकायों के सदस्यों द्वारा चुने जाए। प्रस्ताव को प्रत्येक प्रांत को अपनी परिस्थितियों के अनुसार लागू करने का सुझाव दिया गया। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु 1883-85 के बीच अनेक प्रान्तों में स्थानीय स्वशासन अधिनियम पारित किए गए। प्रारम्भ में लॉर्ड रिपन के इन सुझावों ने नगरीय शासन में बड़े पैमाने पर सुधार लाया। बड़े पैमाने पर चुने हुए प्रतिनिधि व अध्यक्ष अस्तित्व में आए। परन्तु समय के साथ-साथ इन सुधारों पर प्रशासन की रूढ़ीवादिता हावी हो गई। नौकरशाही भारतीयों को स्वशासन के योग्य नहीं समझती थी। लॉर्ड कर्जन ने इन सभी उदारवादी नीतियों का विरोध किया तथा स्थानीय संस्थाओं पर सरकारी नियंत्रण को बढ़ा दिया। लॉर्ड कर्जन की दृष्टि में यह सुधार बहुत अधिक क्रांतिकारी थे, जिनसे प्रशासनिक कुशलता प्रभावित हो रही थी इसलिए उन्होंने राजीनतिक शिक्षा के स्थान पर प्रशासनिक कुशलता को अधिक महत्व दिया। उपायुक्त इन संस्थाओं पर हावी होने लगे जिनके पास इन संस्थाओं पर नियंत्रण और पर्यवेक्षण का अधिकार था। चुनाव भी सफल न हो सके, क्यों कि यह व्यस्क मताधिकार नहीं था। चुनाव में नगर की कुल दो प्रतिशत जनसंख्या ही हिस्सा ले सकती थी। इस प्रकार लॉर्ड रिपन द्वारा किए गए सुधार आंशिक रूप से ही सफल हो सके।

लॉर्ड रिपन के शिक्षित करने का सिद्धान्त अधुरा रह गया और पूरा ध्यान प्रशासनिक कार्यकुशलता पर केन्द्रित कर दिया गया। उपायुक्त ही पूरे जिले में प्रभावशाली रह गया। लोगों में इतनी नागरिक चेतना का अभाव दिखा कि वे इन स्वशासन की इकाइयों को भली-भाँति संचालित कर सके। परन्तु लॉर्ड रिपन का योगदान खाली नहीं गया। उनके द्वारा किए गए सुधारों को वर्तमान में भी स्वशासन का आधार माना जाता है।

सन् 1907 में स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र में एक नया मोड़ आया जब 'विकेन्द्रीकरण पर रॉयल आयोग' की स्थापना की गई, जिसका कार्य केन्द्र, प्रान्त तथा इसके अधिनस्थ इकाइयों के मध्य वित्तीय व प्रशासनिक सम्बन्धों का अध्ययन करना था। आयोग ने स्थानीय स्वशासन के विषय का गहन अध्ययन किया तथा इनकी विफलता के लिए निम्न निष्कर्ष निकाले- अत्यधिक सरकारी नियंत्रण; मताधिकार का अधिकार का संकुचित होना; अत्यल्प संसाधन; शिक्षा और प्रशीक्षण का अभाव; योग्य और समर्पित लोगों की कमी; सेवाओं पर स्थानीय निकायों का अपर्याप्त नियंत्रण। रॉयल कमीशन ने रिपोर्ट में लिखा कि धन का अभाव ही स्थानीय संस्थाओं के प्रभावशाली ढ़ंग से काम न करने में प्रमुख बांधा बनी हुई है। आयोग ने स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को मजबूत बनाने हेतु अनेक सुझाव दिए।

अतः शक्ति के विकेन्द्रीकरण और क्रमिक लोकतांत्रिकरण के लिए आयोग ने निम्न सिफारिशें की- अध्यक्ष गैर-सरकरी जन प्रतिनिधि हो; अधिकतम सदस्य गैर-सरकारी जन प्रतिनिधि हों; स्वशासन की इकाइयों को अधिक वित्तीय स्वायत्ता तथा बजट पर नियंत्रण प्रदान किया जाए; बड़े नगरपालिकाओं को और भी अधिक शक्ति प्रदान की जाए जिससे वे अधिशासी अधिकारियों के साथ ही साथ शिक्षित स्वास्थ्य अधिकारियों को नियुक्त कर सकें।

1915 में भारतीय सरकार के प्रस्ताव में इन सिफारिशों पर प्रतिक्रिया दी गई। प्रस्ताव में नए करों का सुझाव अस्वीकृत कर दिया गया और आयोग के सुझाव केवल कागज़ी कार्यवाही ही बने रहे। 28 अप्रैल 1915 के प्रस्ताव में भारत सरकार ने इन सुझावों के क्रमिक कार्यन्वयन का सुझाव दिया। पंजाब वह पहला प्रांत था जिसने सर्वप्रथम रॉयल आयोग की सिफारिशों के आधार पर सन् 1911 में नगरपालिका अधिनियम पारित किया। इसी प्रकार अन्य प्रान्तों ने भी अधिनियम पारित किए। इस अधिनियम के तहत नगरपालिकाओं पर सरकारी नियंत्रण को कम करने, चुनाव की प्रक्रिया को अपनाने तथा चुनाव के माध्यम से अध्यक्ष को चुनने की व्यवस्था की गई थी। परन्तु व्यवहार में नगरीय शासन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया क्यों कि यह भी प्रयास किया गया था कि इसके पूर्व के अधिनियमों के प्रावधानों को पूर्ण रूप से न खारिज किया जाए। 1908 से लेकर 1918 तक चुने गए प्रतिनिधियों की संख्या में बढ़ोत्तरी तो दूर की बात थी, बल्कि इसमें कमी आने लगी थी। भारत शासन अधिनियम

1909 में विधान परिषदों में साम्प्रदायिक मतदान की व्यवस्था की गई थी। 1910 में मुस्लिम लीग ने स्थानीय चुनावों में भी साम्प्रदायिक आधार पर मतदान करवाने की मांग की। कई मामलों में साम्प्रदायिक मतदान को स्वीकार भी कर लिया गया परन्तु इसने स्थानीय शासन की व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डाला जिससे इसका विकास अवरूद्ध हो गया। मई 1918 में मॉन्टफोर्ड सुझाव में कहा गया कि स्थानीय संस्थाओं को प्रतिनिधि संस्था बना दिया जाए। उन पर नियंत्रण कम हो और उन्हें गलतियों से सीखने दिया जाए। रॉयल कमीशन के सुझावों को उन्होंने पृष्ठांकित किया तथा नगरपालिकाओं को कर लगाने के अधिक अधिकार दे दिये गये।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि इस चरण में नगरीय शासन के क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिसके कारण लोकतंत्र का प्रसार हुआ और स्थानीय निकायों को वित्तीय दायित्व भी सौंपे गये।

1.3.3.3 सन् 1927 से 1937 तक का काल

इस काल में भारत तथा ब्रिटेन में भारत के स्वतंत्रता संग्राम का दबाव बढ़ता जा रहा था। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटिश सरकार को भारतीय जनता के समर्थन की आवश्यकता थी इसलिए ब्रिटिश सरकार ने 20 अगस्त 1917 की ऐतिहासिक घोषणा की जिसके द्वारा भारतीयों को प्रशासन की प्रत्येक शाखा में भागीदारी का अवसर प्रदान करने की बात की गई तथा स्थानीय शासन के माध्यम से भारत में उत्तरदायी सरकार के निर्माण पर बल दिया गया। सन् 1918 के मॉन्टेग-चेम्सफॉर्ड प्रतिवेदन में स्वशासन को पूर्णतः प्रतिनिधिक और उत्तरदायी बनाए जाने की सिफारिश की गई। इसी आधार पर 16 मई 1918 के भारत सरकार के प्रस्ताव में प्रान्तों को यह सुझाव दिया गया कि नगरपालिका बोर्डों में अधिकतम सदस्य निर्वाचित हों, मतदान के अधिकार को और भी नीचले स्तर तक ले जाया जाए जिससे अधिकतम लोगों को यह अधिकार प्राप्त हो सके और साथ ही साथ इन निकायों का अध्यक्ष भी गैर-सरकारी तथा निर्वाचित हो। क्योंकि अब तक केवल नगरों के छः प्रतिशत लोगों को ही मतदान का अधिकार प्राप्त था तथा दो तिहाई अध्यक्ष सरकारी अधिकारी ही थे। बोर्डों को यह अधिकार दे दिया गया कि वे संवैधानिक दायरे में रहते हुए स्थानीय करारोपण कर सकते हैं परन्तु व्यय बजट द्वारा तय सीमा तक ही की जा सकेगी। उन्हें यह भी अधिकार दे दिया गया कि वे किस मद में कितने राजस्व का व्यय करेंगे उसका निर्धारण वे स्वयं करें। बाहरी नियंत्रण को भी सीमित कर दिया गया। सरकार केवल उन्हीं मामलों में हस्तक्षेप करेगी जब उसे ऐसा प्रतीत होगा कि कोई बोर्ड अपने कार्यों का संचालन करने में अयोग्य हो गई है। अल्पसंख्यकों को पृथक मताधिकार न प्रादन कर उन्हें मनोनीत करने की व्यवस्था को अपना लिया गया। हालांकि पंजाब प्रान्त में इसे अपनाने का प्रयास किया

गया परन्तु इस कार्य में असफल होने के बाद पुनः पृथक मताधिकार प्रदान करने की व्यवस्था को अपना लिया गया। इसके पश्चात कई नगरों में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था अपनाई गई।

भारत शासन अधिनियम 1919 ने द्वैध-शासन व्यवस्था को स्थापित किया। स्थानीय स्वशासन को प्रांतीय विधायिका के प्रति उत्तरदायी लोकप्रिय मंत्री के अधीन रख दिया गया। इस अधिनियम के तहत करों की एक सूची तैयार की गई जिसे केवल स्थानीय निकाय ही आरोपित कर सकते थे तथा वे कर केवल स्थानीय निकायों के लिए ही लगाए जा सकते थे। इससे स्थानीय निकायों को और भी अधिक स्वायत्तता प्राप्त हो गई। कई प्रान्तों में नगरपालिका अधिनियमों में संशोधन भी किया गया जिसके द्वारा इन स्थानीय निकायों को और भी अधिक स्वायत्तता प्रदान की गई, निकायों को और भी अधिक प्रतिनिधिक बनाया गया और गैर-सरकारी अध्यक्षों की व्यवस्था भी सुनिश्चित की गई। इन प्रयासों ने निःसंदेह स्थानीय स्वशासन को और भी अधिक लोकतांत्रिक बनाया परन्तु प्रशासनिक कार्यकुशला पर नकारात्मक प्रभाव पड़ने लगा। कई नगरपालिकाओं पर भ्रष्टाचार के मामले चलने लगे। यह महसूस किया गया कि स्थानीय स्वशासन की इकाइयों में भ्रष्टाचार और कार्यकुशला में गिरावट का मुख्य कारण यह था कि जब इन निकायों को सलाह, मार्गदर्शन और नियंत्रण की आवश्यकता सबसे अधिक थी, तब इन्हें सरकारी नियंत्रण से मुक्त कर दिया गया। अतः प्रशासनिक कार्यकुशलता को बढ़ाने और भ्रष्टाचार पर आवश्यक अंकुश लगाने हेतु प्रांतीय सरकारों को नगरपालिका कार्यकारी अधिकारी का पद सृजित करने के लिए कहा गया। 1920 में 1919 के भारत सरकार अधिनियम लागू होने पर स्थानीय शासन हस्तांतरित विषय बन गया जिसका नियंत्रण लोकप्रिय शक्तियों के अधीन हो गया। केन्द्रीय सरकार ने प्रांतीय सरकारों को इस विषय में निर्देश देने बंद कर दिए और प्रत्येक प्रांत को अपनी-अपनी आवश्यकता अनुसार स्वयत्त संस्थाओं का विकास करने की अनुमति मिल गई। स्थानीय करों व प्रांतीय कारों की सूची को अलग कर दिया गया। परन्तु वित्त अभी भी आरक्षित विषय था, अतः भारतीय मंत्री इस विषय में कुछ नहीं कर सके। स्वशासन की इस क्रियान्विति का मूल्यांकन 1930 में साइमन आयोग ने किया और इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया कि उत्तर प्रदेश, बंगाल व मद्रास के अतिरिक्त तथा ग्राम पंचायतों के क्षेत्र में इन संस्थाओं में कोई उन्नति देखने को नहीं मिली। स्वायत्त संस्थाओं की दशा 1919 के बाद बिगड़ गई है। अतः आयोग ने सुझाव दिया कि इन स्वायत्त संस्थाओं पर सरकार का नियंत्रण बढ़ा देना चाहिए। इस काल में प्रान्तों द्वारा जो विभिन्न अधिनियम बनाये उनमें मुख्य रूप से निम्नलिखित विशेषताएं थीं- स्थानीय संस्थाओं का गठन प्रायः पूर्णरूप से निर्वाचन के आधार पर रखते हुए निर्वाचक मण्डल का भी विस्तार किया गया; स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के अध्यक्ष पद पर गैर-सरकारी व्यक्ति की नियुक्ति को

स्वीकृति दी गई; स्थानीय संस्थाओं को अधिक प्रशासनिक शिक्तयाँ प्रदान की गई; स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं को वित्तीय क्षेत्र में पहले से अधिक शक्तियाँ दी गई थीं।

अतः यह देखा जा सकता है कि इस काल में नगरीय स्वशासन के निकायों को लोकतांत्रिक आधार पर संचालित करने के प्रयास किये गये जिससे स्थानीय प्रशासनिक कार्यकुशलता में कमी आई। इस काल में नगरीय निकायों के कार्यपद्धति को न ही पूर्ण रूप से विफल और न ही सफल माना जा सकता है। कुछ प्रान्तों में इन निकायों के द्वारा अच्छा प्रदर्शन किया गया तो कुछ प्रान्तों में यह प्रयोग विफल हो गया।

1.3.3.4 सन् 1937 से 1947 तक का काल

इस काल में स्थानीय शासन जीर्णोद्धार तथा पुनर्निर्माण की अवस्था में था। भारत शासन अधिनियम 1935 के तहत प्रांतीय स्वायत्तता ने नगरपालिकाओं को और भी प्रोत्साहन प्रदान किया। इस अधिनियम के माध्यम से प्रान्तों में द्वैद शासन को समाप्त कर दिया गया। स्थानीय सरकार को प्रांतीय विषय के रूप में मान्यता दे दी गई। परन्तु इस अधिनियम में स्थानीय सरकारों के लिए कोई कर की व्यवस्था नहीं की गई थी। इस परिवर्तन से स्थानीय सरकारों को नुकसान हुआ, क्योंकि जिन करों का रोपण पूर्व में पूर्णतयः स्थानीय माना जाता था, उन करों के रोपण का अधिकार भी प्रांतीय सरकारों को मिल गया। इसी दौरान द्वितीय विश्व युद्ध का प्रारम्भ 1939 में हो गया जिसके कारण प्रांतीय स्वायत्तता प्राप्त होने के बावजूद भी स्थानीय निकायों का सशक्तिकरण सम्भव नहीं हो सका, क्योंकि सभी का ध्यान स्थानीय स्वशासन से उठ कर केवल सुरक्षा तक ही सीमित रह गया जिसकी देख-रेख पूर्णरूप से जिला प्रशासन के स्तर से होनी थी। सन् 1947 में ब्रिटिश भारत को छोड़कर चले गए और स्थानीय निकायों का विकास पूर्ण रूप से कर पाने में अक्षम रह गए। 1935 के अधिनियम को 1937 में प्रांतीय भाग में लागू किए जाने से प्रान्तों में स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं को और भी अधिक गति मिली। लोकप्रिय सरकारें वित्त का नियंत्रण करती थीं और इसीलिए इन संस्थाओं को अधिक धन उपलब्ध करा देती थीं, प्रांतीय स्थानीय करों के बीच जो पृथक्कीकरण था वह समाप्त हो गया। लगभग सभी प्रान्तों में स्थानीय संस्थाओं को अधिक कार्यभार दे दिया गया। परन्तु उनकी कर लगाने की शक्तियाँ लगभग वही रहीं, अपितु कुछ कम कर दी गई अर्थात चुंगी बढ़ाने, व्यापारों, व्यवसायों तथा संम्पत्ति पर कर लगाने की शक्तियाँ कम कर दी गईं। विकेन्द्रीकरण आयोग की सिफारिशों को अनदेखा कर दिया गया। स्वतंत्रता के समय नये करों को लगाने के लिए प्रान्तीय सरकारों से आज्ञा लेनी आवश्यक थी।

1.4 स्वतंत्र भारत में नगरीय स्वशासन का विकास

15 अगस्त सन् 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ। 26 जनवरी सन् 1950 में भारतीय संविधान लागू हुआ, जिसमें भारत को एक सम्प्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में स्थापित किया गया। स्वतंत्र होने के उपरान्त भारत के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती यह थी कि भारतीय लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाया जाए। इस निश्चय से स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के विकास की नवीन आशाएं बंधीं। भारतीय संविधान में स्थानीय स्वायत्त शासन को राज्य सूची के अंतर्गत रखा गया। संविधान के चौथे अध्याय राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों के अंतर्गत अनुच्छेद- 40 में राज्य को निर्देशित किया गया कि वह ग्राम पंचायतों का गठन अधिक अच्छे ढ़ंग से करे और उन्हें स्वशासन की इकाइयों के रूप में अधिक अच्छे ढ़ग से कार्य करने के लिए समर्थ बनाने की भावना से उन्हें आवश्यक शक्तियाँ प्रादान की जानी चाहिए, परन्तु नगर स्थानीय निकायों के बारे में कोई निर्देश नहीं था। नगर स्थानीय इकाइयों का संदर्भ केवल संविधान की राज्य तथा समवर्ती सूचियों में पाया जाता है। राज्य सूची में क्रमांक 05 पर यह अंकित है, ''स्थानीय शासन अर्थात् स्थानीय स्वशासन अथवा ग्राम प्रशासन हेतु नगरमहापालिकाओं, इम्प्रूवमेंट ट्रस्टों, जिला बोर्डों, खनन बंदोबस्त सत्ताओं तथा अन्य स्थानीय सत्ताओं का गठन तथा शक्तियाँ।'' समवर्ती सूची के क्रमांक 20 पर ''आर्थिक तथा सामाजिक नियोजन'' अंकित है, जिसके अंतर्गत स्वाभाविक रूप से नगर नियोजन भी आता है। इस प्रकार मूल रूप से संविधान, नगर स्थानीय शासन को राज्यों के अधिकार-क्षेत्र में रखता है और केन्द्र सरकार की भूमिका न्यूनाधिक रूप में परामर्शदाता तथा उत्प्रेरक की है।

स्वतंत्र भारत में एक दशक तक नगरीय शासन के क्षेत्र में महानगरों में नगर निगम तथा छोटे नगरों में नगर परिषद् या नगरपालिकाएं जिस रूप में ब्रिटिश विरासत से प्राप्त हुई थीं, उसी रूप में निरन्तर क्रियाशील बनी रहीं। यह आशा की जा रही थी कि स्वतंत्र भारत में स्थानीय इकाइयाँ राष्ट्रीय नीतियोंके निर्माण में सहायक सिद्ध होंगी। परन्तु संवैधानिक दर्जा प्राप्त न होने के कारण इसकी शक्तियाँ, कार्य और इसकी भूमिका पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ दशकों तक भी नगरीय स्वशासन की स्थिति कमोबेस वही बनी रही। हालांकि इसमें सुधार के प्रयास जारी रहे। यह बड़े आश्चर्य का प्रश्न है कि नगरीय स्वशासन की इकाइयों का कोई उल्लेख राज्य के नीति-निदेशक तत्वों में भी नहीं किया गया था और न ही योजना आयोग द्वारा इस पर कोई ध्यान दिया गया। सर्वप्रथम तीसरे पंचवर्षीय योजना में इसका जिक्र किया गया। इससे पूर्व प्रथम और द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में केवल यह आलोचना की गई कि नगरीय स्वशासन की इकाइयाँ अपने दायित्वों का निर्वाह करने में सफल नहीं हो पा रही हैं। तृतीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत यह विश्वास जताया गया कि नगरीय शासन

तथा नगरों की समस्याओं का समाधान नगरीय स्वशासन की इकाइयों के द्वारा ही सम्भव है। नगरों का विस्तार हो रहा है और नगरीय जीवन के स्तर को सुधारने का कार्य इन्हीं इकाइयों के द्वारा सम्भव हो सकता है। तृतीय पंचवर्षीय योजना में नगरीय भूमि के मूल्य नियंत्रण, नगर विकास के लिए मास्टर प्लान, गृह निर्माण हेतु मापदण्ड निर्धारण व विकास कार्यक्रमों के लिए इन संस्थाओं को उत्तरदायी बनाया गया।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में ग्राम-नगर सम्बन्ध समिति तथा नगरीय स्थानीय निकायों के वित्तीय संसाधनों की वृद्धि हेतु मंत्रियों की समिति (Committee on Augmentation of Financial Resources of Urban Local Bodies) द्वारा दिए गए सुझावों पर विचार किया गया कि राज्य सरकार स्थानीय स्तर पर संसाधनों में वृद्धि करने हेतु आवश्यक कदम उठाए। सप्तम् पंचवर्षीय योजना में भी योजना आयोग केवल आलोचक की भूमिका में दिखती है। इस पंचवर्षीय योजना में भी योजना आयोग का यह कहना था कि नगरीय जीवन स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है, जिसका कारण यह है कि नगरीय स्वशासन की इकाइयाँ निष्क्रिय हो गई हैं और वित्तीय संकट के कारण वे अपना कार्य कर पाने में भी सक्षम नहीं हो पा रहीं हैं। परन्तु हम केन्द्र व राज्य सरकारों पर ही दोषारोपण नहीं कर सकते, क्योंकि उनके द्वारा कई प्रयास निरन्तर किये जा रहे हैं जिन्हें निम्नांकित रूप में समझा जा सकता है।

1.4.1 केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों द्वारा गठित समितियाँ और आयोग

नगरीय स्वशासन की कार्यशैली के अध्ययन हेतु समय-समय पर केन्द्र सरकार द्वारा विभिन्न समितियों व आयोगों का गठन किया गया जो कि निम्नवत् हैं-

1. **स्थानीय वित्तीय जाँच समिति (The Local Finance Enquiry Committee) सन् 1949-51-** इस समिति के द्वारा यह सिफारिश की गई कि स्थानीय निकायों हेतु कर व्यवस्था अलग से कर दी जाए, जिसमें राज्य अथवा केन्द्र किसी का कोई हस्तक्षेप न हो।
2. **कर जाँच आयोग (The Taxation Enquiry Commission) 1953-54-** इस समिति के द्वारा यह सिफारिश की गई कि नगरीय स्वशासन की इकाइयों का खर्च उनके आय से कहीं अधिक है, इसलिए उनके आय हेतु अलग से कर व्यवस्था सुनिश्चित की जाए जिसपर किसी का कोई हस्तक्षेप न हो।
3. **नगरपालिका कर्मचारियों की प्रशिक्षण समिति (The Committee on the Training of Municipal Employees) 1963-** इस समिति ने प्रशिक्षण पर बल देते हुए नगरपालिका कर्मचारियों के प्रशिक्षण के सम्बन्ध में यह सुझाव दिया गया कि इसके लिए केन्द्र और राज्य के स्तर पर अलग-अलग प्रशिक्षण संस्थानों की व्यवस्था की जाए। इस सिफारिश को स्वीकार करते हुए केन्द्र सरकार ने मुनिसिपल

प्रशासन में प्रशिक्षण और अनुसंधान केन्द्र की स्थापना आई0आई0पी0ए0, नई दिल्ली में कर दी। इसके तुरन्त बाद प्रांतीय प्रशिक्षण और अनुसंधान केन्द्र का निर्माण लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ; उस्मानिया विश्वविद्यालय, हायद्राबाद; इण्डियन इन्स्टीट्यूट आफ शोसल वेलफेयर एण्ड बिजनेस मैनेजमेन्ट, कलकत्ता; तथा ऑल इण्डिया इन्स्टीट्यूट ऑफ लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट, बाम्बे में कर दिया।

4. **ग्रामीण-नगरीय सम्बन्ध समिति (The Rural-Urban Relationship Committee) 1963-66-** इस समिति का प्रतिवेदन तीन अंकों में आया जिसके तहत विभिन्न मुद्दों पर चर्चा की गई जैसे- नगरीय विकास तथा योजना निर्माण हेतु मशीनरी; नगरीय स्थानीय निकायों की संरचना; नगरपालिका कार्मिकों की व्यवस्था; नगरीय स्थानीय निकायों का वित्त; नगरीय सामुदायिक विकास में जन भागीदारी; राज्य सरकार और नगरीय स्थानीय निकायों के मध्य सम्बन्ध; तथा ग्रामीण-शहरी सम्बन्ध। मुख्यतः इस समिति की सिफारिश यह थी कि ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों के मध्य परस्पर सहयोग और अंतर्निभरता को बढ़ावा दिया जाए।
5. **नगरीय स्थानीय निकायों के वित्तीय संसाधनों की वृद्धि हेतु मंत्रियों की समिति (The Committee of Ministers on Augmentation of Financial Resources of Urban Local Bodies) 1963-** वित्तीय स्थिति को सुधारने हेतु इस समिति की यह सिफारिश थी कि नगरीय स्थानीय निकायों को करारोपण के लिए क्षेत्र निश्चित कर दिए जाएं; करारोपण के अतिरिक्त आय के श्रोतों को तैयार किया जाए तथा नगरों के विकास के लिए संवैधानिक नगरीय विकास बोर्डों की स्थापना की जाए।
6. **नगरपालिका कर्मचारियों के सेवा दशा पर समिति (The Committee on Service Conditions of Municipal Employees) 1965-68-** इस समिति के यह प्रस्ताव दिया गया कि राज्य के स्तर पर ऐसे कार्मिकों को तैयार किया जाए जो स्थानीय स्वशासन की इकाइयों में भली भाँति कार्य करने योग्य हों तथा उनकी सेवा दशा बेहतर हो जिससे वे अपने कार्य को सुचारू रूप से कर सकें।

उपरोक्त के अतिरिक्त प्रशासनिक सुधार समिति के द्वारा भी नगरीय स्वशासन की इकाइयों को मजबूती देने पर बल दिया गया है। इसी क्रम में कई राज्य सरकारों के द्वारा भी समय-समय पर नगरीय स्वशासन की इकाइयों को सशक्त करने हेतु समितियों का गठन किया गया है। जैसे- असम में सन् 1969 में द फाइनान्सेज ऑफ मुनिसिपल कमिटी; दिल्ली में सन् 1948 में द दिल्ली मुनिसिपल ऑर्गनाइजेशन एन्क्वायरी कमिटी, कमिशन ऑन फाइनेन्सेज ऑफ

मुनिसिपल कॉरपरेशन ऑफ दिल्ली, न्यू दिल्ली मुनिसिपल कमिटी 1968; गुजरात में द मुनिसिपल रैस्नलाइजेशन कमिटी 1961; हरियाणा में रिसोर्स कमिटी (लोकल बॉडिज) 1988, मुनिसिपल ग्रान्ट्स कमिशन। इसी प्रकार केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़िसा, पंजाब, तमिलनाडु आदि में भी कई समितियों और आयोगों का गठन किया गया जिसके माध्यम से नगरीय स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को सशक्त करने का प्रयास किया गया।

इसी क्रम में स्थानीय स्वशासन के केन्द्रीय परिषद् का भी नाम उल्लेखनीय है। 1948 में केन्द्रीय स्वस्थ्य मंत्री की अध्यक्षता में केन्द्र सरकार के स्वस्थ्य मंत्रालय ने एक संगोष्ठी का आयोजन किया जिसमें यह प्रस्ताव पारित हुआ कि प्रत्येक वर्ष सभी राज्यों के स्थानीय स्वशासन मंत्री एक साथ संगोष्ठी का आयोजन करेंगे। स्थानीय स्वशासन की केन्द्रीय परिषद् का गठन राष्ट्रपति द्वारा 1954 में किया गया जिसकी अध्यक्षता पहले केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री करते थे (वर्तमान में नगरीय विकास मंत्री करते हैं) तथा उसके अन्य सदस्य सभी राज्यों के स्थानीय स्वशासन मंत्री होते हैं।

इसका कार्य स्थानीय स्वशासन से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करना; स्थानीय स्वशासन के विधायी मामलों से जुड़े सुझाव देना; स्थानीय इकाइयों के वित्तीय संरक्षण हेतु केन्द्र को सुझाव देना; तथा विभिन्न राज्यों में नगरीय स्वशासन की इकाइयों के कार्यों की विवेचना करना है। इसके अतिरिक्त केन्द्र तथा राज्य सरकारों के द्वारा नगरीय स्वशासन की इकाइयों के सशक्तिकरण हेतु समय-समय पर विभिन्न बैठकों, संगोष्ठियों तथा सेमिनारों का आयोजन भी किया जाता रहा है जैसे- द कान्फरेंसेस ऑफ ऑल इण्डिया कॉउन्सिल ऑफ मेयर्स; द मुनिसिपल कमिस्नर्स कान्फरेंस; कान्फरेंस ऑफ स्टेट मिनिस्टर्स ऑफ लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट इत्यादि।

1.4.2 नगरीय विकास मंत्रालय

सन् 1985 में स्थापित नगरीय विकास मंत्रालय नगरीय स्वशासन के क्षेत्र में एक मील का पत्थर साबित हुआ। शुरूआत में नगरीय शासन स्वास्थ्य मंत्रालय के अधीन रखा गया था। 1958 तक स्वास्थ्य मंत्रालय ही ग्रामीण व शहरी शासन की देखरेख करता था। सन् 1958 में इसे सामुदायिक विकास मंत्रालय के अधीन रख दिया गया। सन्1966 में नगरीय विकास को ''Works and Housing'' मंत्रालय के अधीन किया गया जो आगे चल कर ''Ministry of Works, Housing and Urban Development'' बन गया। 1967 में नगरीय शासन को पुनः स्वास्थ्य मंत्रालय के अधीन रखकर इसका नामकरण ''Ministry of Health, Family Planning, Works, Housing and Urban Development'' के रूप में कर दिया गया। 1973 में इसे ''Ministry of Works

and Housing'' के अधीन कर दिया गया और अंततः इस हेतु अलग से एक मंत्रालय 1973 में गठित किया गया।

परन्तु नगरीय स्वशासन की समस्याओं का अंत तब तक सम्भव नहीं था, जब तक कि इसे संवैधानिक मान्यता न प्राप्त हो। इस क्रम में सन् 1989 में संसद में नगरपालिका बिल प्रस्तुत किया गया जो कि लोक सभा में तो पारित हो गया परन्तु राज्य सभा में पारित न हो सका। इसके उपरान्त पनुः प्रयास कर सन् 1992 में 74वें संविधान संशोधन अधिनियम के रूप में यह पारित हो सका जिसने नगरीय स्वशासन को संवैधानिक मान्यता प्रदान कर दी।

अभ्यास प्रश्न-

1. ब्रिटिश शासनकाल में स्थानीय शासन का आरम्भ कब से माना जाता है?
2. भारत में नगरीय स्थानीय स्वशासन को कब संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ?
3. नगरीय विकास मंत्रालय की स्थापना कब हुई?
4. किस भारत शासन अधिनियम के तहत प्रांतीय स्वायत्तता की बात की गई?

1.5 सारांश

भारत में स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के विकास का इतिहास बहुत ही लम्बा रहा है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक इसके रूप में बहुत परिवर्तन आया है। परन्तु ब्रिटिश काल में स्थानीय स्वशासन की इकाइयों का विकास जिस रूप में हुआ उसने स्वतंत्र भारत के स्थानीय स्वशासन की नींव रखी और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात नगरीय स्थानीय स्वशासन अपने मूल रूप में विकसित होने से पूर्व कई उतार-चढ़ाव से गुजरा। विभिन्न समितियों के सिफारिशों, संगोष्ठियों और प्रयासों के आधार पर नगरीय स्थानीय स्वशासन की इकाइयों का विस्तार हुआ और अंततः इसे एक संवैधानिक रूप प्रदान किया जा सका।

1.6 शब्दावली

लोककल्याणकारी राज्य- जनता की भलाई करने वाली सरकार, समृद्ध- सम्पन्न, दोषारोपण- आरोप लगाना

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 1687, **2.** 1992, **3.** 1985, **4.** 1935

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रदीप सचदेवा, लोकल गवर्नमेन्ट इन इण्डिया, डोर्लिंग किंडरश्ली (इण्डिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2011
2. जयाल, एन0जी0 और प्रताप भानू मेहता, पॉलिटिक्स इन इण्डिया, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2010
3. प्रदीप सचदेवा, डाइनेमिक्स ऑफ मुनिशिपल गर्वनमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया, किताब महल, इलाहाबाद, 1991
4. बर्थवाल, सी0पी0, स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 2010
5. जोशी, आर0पी0 और अरूणा भारद्वाज, भारत में स्थानीय प्रशासन, शील सन्स, जयपुर, 1999

1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. खन्ना, आर0 एल0, मुनिसिपल गवर्नमेन्ट एण्ड एडमिनिस्टे"शन इन इण्डिया, मोहिन्द्रा कैपिटल पब्लिसर्श, चंड़ीगढ़, 1967
2. शर्मा, एस0के0 तथा वी0एन0 चावला, मुनिसिपल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डियाः सम रिफलेक्शन्स, इनटर्नेशनल बुक को0, जालंधर, 1975
3. कौशिक, एस0के0, लीडरशिप इन अर्बन गवर्नमेन्ट इन इण्डिया, किताब महल, इलाहाबाद, 1986
4. मुतालिब, एम0ए0 और एन0 उमापथि, अर्बन गवर्नमेन्ट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, रिजनल सेन्टर फॉर अर्बन एण्ड इन्वार्नमेन्टल स्टडीज, हैद्राबाद, 1981
5. चतुर्वेदी, टी0वी0, सिविक कन्सेसनेश, आई0आई0पी0ए0, नई दिल्ली, 1979

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश काल में स्थानीय स्वशासन के विकास पर प्रकाश डालिए।
2. स्वतंत्र भारत में स्थानीय स्वशासन के विकास का वर्णन कीजिए।
3. नगरीय स्वशासन के महत्व का वर्णन कीजिए।

इकाई- 2 नगरीय शासन

इकाई की संरचना

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 चौहतरवें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताएं

2.3 नगर पंचायत

2.4 नगर परिषद

2.5 नगर निगम

2.6 अन्य नगर निकाय

2.6.1 अधिसूचित क्षेत्र समिति

2.6.2 छावनी मण्डल

2.6.3 एकल उद्देश्यीय अभिकरण

2.7 चौहतरवें संविधान संशोधन अधिनियम की व्यवस्थाएं

2.8 सारांश

2.9 शब्दावली

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

भारत बड़ी ही तीव्र गति से आधुनिकीकरण और शहरीकरण की ओर बढ़ रहा है, जबकि स्वतंत्रता प्राप्ति के समय और कई दशकों तक भारत को गावों का देश कहा जाता था। आधुनिकीकरण ने भारत की तस्वीर ही बदल डाली है। जिन क्षेत्रों में पहले गाँव देखे जाते थे, वे भी आज शहरों में बदलते जा रहे हैं। देश की अधिकतम जनसंख्या गाँवों से शहरों की ओर पलायन कर रही है। गाँवों में मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और सुख-सुविधा के साधन भी दुर्लभ होते हैं। गाँवों में सबसे बड़ी समस्या मुद्रा और

रोजगार की होती है, क्योंकि ग्रामीण इलाकों में अनाज, दलहन, तेल आदि रोजमर्रा के जीवन में उपयोगी समझे जाने वाले संसाधन तो प्रचूर मात्रा में उपलब्ध होते है परन्तु ग्रामीण लोगों के पास पैसों की भारी कमी होती है और रोजगार के अवसर भी लगभग शून्य ही होते हैं। इन समस्याओं का समाधान शहरों में आकर ही सम्भव हो पाता है। अतः भारी संख्या में गाँव के लोगों का शहरों की ओर पलायन होता है। इस पलायन के कारण शहरों की जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होती रहती है और कई छोटे-छोटे ग्रामीण बाजार भी शहरों में तब्दील होने लगते हैं। ऐसे में शहरों पर बढ़ते दबाव और शहरों की बढ़ती संख्या को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि लोकतंत्र का प्रसार शहरों में भलीभँति हो सके, जिससे शहरों में वे मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध कराई जा सकें, जिनकी खोज में शहरों की तरफ गाँव के लोगों के द्वारा पलायन होता है। शहरों में इन मूलभूत सुविधाओं को सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को सशक्त किया जाए, जिससे स्थानीय समस्याओं का समाधान स्थानीय स्तर पर किया जाना सम्भव हो सके।

शहरी स्थानीय स्वशासन की इकाइयों की प्रकृति एवं उनका प्रकार ब्रिटिश शासन की धरोहर मानी जा सकती है। भारत में स्थानीय स्वशासन को संवैधानिक विकास का महत्वपूर्ण अंश भी माना जाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात स्थानीय स्वशासन को राज्य सूची के अंतर्गत रखा गया। अतः भारत के सभी राज्यों में शहरी स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं की संख्या एवं संगठन समान नहीं रही, यद्यपि इन निकायों में कुछ सामान्य विशेषताएं थीं। तृतीय पंचवर्षीय योजना में राज्य सरकारों से नगरों में स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं को विकसित करने हेतु वांछनीय स्त्रोत जुटाने में सहायता करने एवं अनुकूल परिस्थितियों के निर्माण की अपेक्षा की गई थी। शहरों में भूमि के मुल्यों पर नियंत्रण, शहरी विकास हेतु मास्टर प्लान, गृह निर्माण हेतु मानदण्ड निर्धारित करने का उत्तरदायित्व नगरीय स्थानीय संस्थाओं को सौंपा गया। नगरीय स्थानीय प्रशासन की प्रशासकीय कुशलता बढ़ाने हेतु सुझाव देने के लिए भारत सरकार द्वारा समय-समय पर विभिन्न समितियाँ गठित की गईं व उनके सुझावों से राज्य सरकारों को अवगत कराया गया।

लेकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया में शहरों के नागरिकों को अपने स्वयं के मामलों का प्रशासन संचालित करने के लिए स्वशासन के व्यापक अधिकार देने हेतु नगरीय संस्थाओं के अधिक सशक्त बनाने एवं संवैधानिक दर्जा देने के लिए भारतीय संविधान में 74वाँ संशोधन किया गया जो 01 जून 1993 से लागू हो गया है। 74वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारतीय संविधान में एक नया भाग 9 क 'नगरपालिका' जोड़ दिया गया है। इन संस्थाओं का उल्लेख 243 वें अनुच्छेद में है। 74वें संविधान संशोधन में तीन प्रकार के नगरीय निकायों के गठन

की व्यवस्था की गई- नगर पंचायत, नगर परिषद तथा नगर निगम। परन्तु इस अधिनियम में भी कई ऐसे प्रावधान हैं जो कि राज्यों हेतु छोड़ दिया गया है। राज्य उक्त के सम्बन्ध में अपनी सुविधा के अनुसार कुछ नियमों का निर्माण कर सकते हैं जैसे- महिलाओं के आरक्षण के सम्बन्ध में 74वें संविधान संशोधन में कुल सीटों की एक तिहाई सीटें महिलाओं हेतु आरक्षित रखने की बात की गई है, किन्तु कुछ राज्यों ने इससे आगे बढ़ते हुए महिलाओं को 50 प्रतिशत तक आरक्षण प्रदान किया है। अतः यह कहा जा सकता है कि 74वें संविधान संशोधन के प्रावधान एक प्रतिमान के रूप में स्थापित किए गए हैं जिनके आधार पर ही राज्यों के द्वारा नगरीय स्वशासन की इकाइयों का संचालन किया जाना है। इस इकाई में हम सर्वप्रथम 74वें संविधान संशोधन की विशेषताओं का वर्णन करेंगे। उसके उपरान्त नगरीय स्वशासन की उपरोक्त इकाइयों का अध्ययन करेंगे तथा 74वें संविधान संशोधन के अंतर्गत नगरीय स्वशासन की व्यवस्था को विस्तार से समझेंगे।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- 74वें संविधान संशोधन के मुख्य लक्षणों को जान सकेंगे।
- 74वें संविधान संशोधन के उपरान्त भारत में नगरीय शासन के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- 74वें संविधान संशोधन के उपरान्त नगरीय शासन में आए बदलाव को जान सकेंगे।

2.2 चौहतरवें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताएं

74वें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताओं को समझने के लिए इसे निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत रखा जा सकता है-

1. नगरपालिकाओं को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है- नगर पंचायत जो कि ग्रामीण से शहरी क्षेत्र की ओर संक्रमण कर रहे संक्रमाणकालीन क्षेत्र होते है; नगर परिषद् छोटे शहरी क्षेत्र होते है; तथा नगर निगम बड़े शहरी क्षेत्र होते हैं।
2. सदस्यों के निर्वाचन के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है। शहर की जनसंख्या के अनुपात में अनुसुचित जाति एवं जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित रखे जाते हैं। इनमें एक तिहाई स्थान अनुसूचित जाति एवं जनजाति की महिलाओं के लिए आरक्षित होते हैं तथा सम्पूर्ण सदस्यों का एक तिहाई स्थान भी

महिलाओं के लिए आरक्षित होते हैं। अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण की कोई व्यवस्था नहीं है, परन्तु यदि राज्य चाहे तो अन्य पिछड़ा-वर्ग के लिए आरक्षण का प्रावधान कर सकते हैं।

3. नगरपालिकाओं का कार्यकाल 05 वर्ष निर्धारित कर दिया गया है। कार्यकाल समाप्त होने के छः माह पूर्व ही नई नगरपालिका का चुनाव सम्पन्न कराए जाने की व्यवस्था है।
4. नगरपालिकाओं का चुनाव सम्पन्न कराने का उत्तरदायित्व राज्य निर्वाचन आयोग पर छोड़ा गया है।
5. नगरपालिका के अध्यक्ष पद पर अनुसुचित जाति, अनुसुचित जनजाति एवं महिलाओं का स्थान किस प्रकार आरक्षित रहेगा, इसका निश्चय राज्य सरकार द्वारा कानून बनाकर किया जाएगा।
6. संविधान संशोधन में 12वीं अनुसूची जोड़ दी गई है जिसमें नगरपालिकाओं द्वारा सम्पन्न किये जानेवाले विभिन्न प्रकार के कार्यों की सूची निश्चित कर दी गई है, जैसे- नगर योजना सहित शहरी योजना, आर्थिक एवं सामाजिक विकास के कार्यक्रम, सड़क एवं पुल, जल आपूर्ति, जनस्वास्थ्य इत्यादि।
7. अनुच्छेद- 243 म, में यह उपबंधित किया गया है कि अनुच्छेद- 243 झ, के अधीन गठित वित्त आयोग नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति का भी पुनर्विलोकन करेगा और अपनी सिफारिशें राज्यपाल को देगा।
8. जिला योजना के लिए समिति की स्थापना की व्यवस्था दी गई। इसके अनुसार प्रत्येक राज्ये में जिले के स्तर पर एक जिला योजना समिति का गठन किया जाएगा, जो जिले में पंचायतों और नगरपालिकाओं द्वारा बनाई गई योजनाओं को समेकित करेगी और पूरे जिले के लिए विकास योजना के लिए प्रारूप तैयार करेगी।
9. राज्य विधान-मण्डल विधि निर्माण द्वारा नगरपालिकाओं के लिए राज्य की संचित निधि में से सहायता अनुदान दे सकता है।
10. नगरपालिकाओं के निर्वाचन के मामले में न्यायालय के हस्तक्षेप पर रोक लगाई गई है।

2.3 नगर पंचायत

नगर पंचायत के सम्बन्ध में जानने के लिए आईये निम्नांकित बिन्दुओं का अध्ययन करते हैं-

1. **नगर पंचायत का गठन-** एक लाख तक जनसंख्या वाले संक्रमणकालीन क्षेत्र अर्थात जो न पूरी तरह ग्राम हैं और ना पूरी तरह शहर अपितु ग्रामीण क्षेत्र से नगरीय क्षेत्र बनने की प्रक्रिया में हैं, उनमें नगर पंचायत के गठन की व्यवस्था की गई है। यह पूर्व में प्रचलित कस्बा क्षेत्र समिति का ही रूप है। संक्रमण क्षेत्र का निर्धारण राज्यपाल द्वारा जनसंख्या के अतिरिक्त जनसंख्या के घनत्व, राजस्व, गैर-कृषि कार्यों में

नियोजन के प्रतिशत, आर्थिक महत्व इत्यादि के आधार पर किया जा सकता है। राजस्थान में ऐसे क्षेत्रों को नगरपालिका कहा जाता है तथा अध्यक्ष/ सभापति को नगरपालिका अध्यक्ष कहा जाता है।

2. **नगर पंचायत की संरचना-** 74वें संविधान संशोधन अधिनियम में व्यवस्था की गई है कि किसी नगरीय निकाय के सभापति का निर्वाचन राज्य विधान मण्डल द्वारा निर्धारित रीति के अनुसार किया जाता है। इस अधिनियम के अनुसार सभी स्थानों की पूर्ति प्रत्यक्ष निर्वाचन के द्वारा किया जाना है। प्रत्येक नगरपालिका क्षेत्र को इस हेतु विभिन्न वार्डों में विभक्त किया जाता है। राज्य सरकार यदि चाहे तो नगरीय प्रशासन का विशिष्ट ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों, उस क्षेत्र के लोकसभा, राज्य सभा, विधान सभा या विधान परिषद के सदस्यों को भी स्थान दे सकती है। अनुसुचित जाति व जनजातियों के लिए उस नगर निकाय क्षेत्र की जनसंख्या के अनुपात में स्थानों का आरक्षण किया गया है। कुल आरक्षित स्थानों में से एक तिहाई स्थान इन वर्गों की महिलाओं के लिए भी आरक्षित रखे गए हैं। इसी प्रकार नगर निकाय क्षेत्र के प्रत्यक्ष चुने जाने वाले स्थानों में से एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए, अनुसूचित जाति व जनजातियों की महिलाओं के आरक्षण सहित, आरक्षित किए गए हैं। सभी आरक्षित स्थानों को चक्रानुक्रम से नगर निकाय क्षेत्र में आरक्षित रखने की व्यवस्था की गई है। अधिनियम में यह भी व्यवस्था है कि राज्य सरकार कानून बनाकर नगर निकायों के अध्यक्ष/ सभापति के पद पर भी अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित कर सकती है। अन्य पिछड़े वर्गों के आरक्षण का प्रावधान करने का अधिकार भी राज्य सरकारों को ही दे दिया गया है।

   74वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा पूरे देश में नगर निकायों का कार्यकाल 05 वर्ष निर्धारित किया गया है। यदि इस अवधि से पूर्व किसी नगर निकाय को भंग किया जाये तो उसे पूर्व में सुनवाई का समुचित अवसर प्रदान किया जाना आवश्यक है। भंग किये जाने पर 06 माह की अवधि में पुनः चुनाव कराने आवश्यक होंगे। ऐसी स्थिति में नव-निर्वाचित नगर निकाय केवल शेष अवधि तक ही कार्य करेगा। यदि भंग किये जाने के समय शेष अवधि छः माह से कम है तो नवीन निर्वाचन करना आवश्यक नहीं होगा।

3. **नगर पंचायत की कार्य, शक्तियाँ व उत्तरदायित्व-** नगर पंचायत एक निगमित निकाय है। नगरीय निकायों को सौंपे जाने वाले कार्यों को 74वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान में एक नई अनुसूची 12वीं अनुसूची जोड़कर सूचीबद्ध किया गया है। इसके अतिरिक्त संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए किसी राज्य का विधान मण्डल विधि द्वारा नगर निकायों को ऐसी शक्तियाँ व प्राधिकार प्रदान

कर सकता है जो उनको स्वशासन की संस्था के रूप में आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार करना व ऐसे कार्यों का निष्पादन करना सम्मिलित है जो उन्हें सौंपे जायें। राज्य विधान-मण्डल द्वारा नगर निकायों को विधि द्वारा करों, शुल्कों, पथकरों और फीसों के उद्ग्रहण, संग्रह एवं विनियोग के लिए भी प्राधिकृत किया जा सकता है।

2.4 नगर परिषद

नगर परिषद के सम्बन्ध में विस्तार से जानने के लिए निम्नाकित बिन्दुओं का अध्ययन करते हैं-

1. **नगर परिषद का गठन-** 74वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा नगर परिषदों की स्थापना की व्यवस्था छोटे नगरों में की गई जो महानगर की श्रेणी में नहीं आते अर्थात् ये एक लाख से अधिक तथा 05 लाख तक की जनसंख्या वाले लघु शहरी क्षेत्र हैं।
2. **नगर परिषद की संरचना-** नगरपरिषदों के सभी स्थानों की पूर्ति प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा की जाती है, जिस हेतु समस्त नगर परिषद प्रादेशिक क्षेत्र को वार्डों में विभाजित किया जाता है। वार्डों के प्रतिनिधि को पार्षद कहते हैं। नगर परिषद के अध्यक्ष के निर्वाचन की विधि राज्य विधान मण्डलों की इच्छा पर आधारित होती है। नगर परिषद में भी नगर पंचायतों/नगरपालिकाओं के समान ही अनुसुचित जातियों, जनजातियों, महिलाओं एवं पिछड़े वर्गों के आरक्षण के प्रावधान किए गए हैं। नगर परिषद का कार्यकाल भी पांच वर्ष निर्धारित किया गया है। कार्यकाल सम्बन्धी अन्य प्रावधान भी नगर पंचायत अथवा पालिकाओं के समान ही हैं। कार्य, शक्तियों और उत्तरदायित्व की भी एक समान व्यवस्था है। नगर परिषद की संरचना में परिषद, अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष, अधिशासी अधिकारी एवं आयुक्त और समितियाँ आती हैं।
3. **नगर परिषद की कार्य, शक्तियाँ एवं उत्तरदायित्व-** नगर परिषदों को एक निगमित निकाय माना गया है अर्थात् इसे शाश्वत उत्तराधिकार प्राप्त होता है। यह सम्पत्ति का क्रय तथा विक्रय कर सकती है। इसकी एक सामान्य मोहर भी होती है। यह किसी के विरूद्ध वाद ला सकती है तथा इसके विरूद्ध भी वाद लाया जा सकता है। नगर परिषद पर राज्य सरकार का नियंत्रण और पर्यवेक्षण रहता है।

   नगर परिषदों के कार्य 12वीं अनुसूची में सूचीबद्ध कार्यों के क्षेत्राधिकार तक है। राज्य विधान मण्डल इन्हें ऐसी शक्तियाँ व उत्तरदायित्व सौंप सकता है, जो इन्हें स्वशासन की संस्थाओं के रूप में विकसित करे। राज्य विधानमण्डल इन्हें सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास के लिए योजनाएं तैयार करने एवं इस हेतु

कार्यों के सम्पादन हेतु भी निर्देशित कर सकता है। इन्हें फीसों, शुल्कों, पथकरों के उद्ग्रहण, संग्रह एवं विनियोग हेतु प्राधिकृत किया जा सकता है। इन पर राज्य सरकार का नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण भी रहता है।

2.5 नगर निगम

नगर निगम के सम्बन्ध में जानने के लिए आईये निम्नांकित बिन्दुओं का अध्ययन करते हैं-

1. **नगर निगम का गठन-** नगर निगम स्थानीय स्वशासन की शीर्षस्थ इकाई है, परन्तु नगरीय स्थानीय शासन का संगठन ग्रामीण स्थानीय शासन की भाँति सांगठनात्मक नहीं है। निगम अन्य स्थानीय निकायों की तुलना में सर्वाधिक सम्मानीय हैं तथा यह अन्य नगर निकायों की तुलना में अधिक स्वयत्ता का उपयोग भी करता है। 74वें संविधान संशोधन द्वारा 05 लाख से अधिक जनसंख्या वाले बृहत् शहरी क्षेत्रों में निगम की स्थापना की व्यवस्था की गई है। राज्यों में निगमों की स्थापना राज्य विधान मण्डल के अधिनियम द्वारा की जाती है। निगम का प्रमुख महापौर या मेयर कहलाता है। राज्य सरकार को नगर पंचायत तथा नगर परिषद की भाँति निगमों पर भी नियंत्रण व पर्यवेक्षण रखने का अधिकार होता है। राज्य विधान मण्डल के अधिनियम में निगम की संरचना, शक्तियों, विभिन्न अधिकारियों व विभागों के मध्य शक्तियों के वितरण व निगम के भौगोलिक सीमाओं के विवरण का उल्लेख रहता है।
2. **नगर निगम की संरचना-** 05 लाख से ऊपर जनसंख्या होते हुए भी किसी नगर में नगर निगम की स्थापना की जाये अथवा नहीं, यह सम्बन्धित राज्य के राज्यपाल द्वारा जनसंख्या के घनत्व, राजस्व, गैर-कृषि कार्यों में नियोजन के प्रतिशत, आर्थिक महत्व, इत्यादि के आधार पर, जैसा वे ठीक समझें, लोक अधिसूचना के द्वारा निर्देशित कर सकते हैं। किसी भी नगर निगम के संगठन में निम्नलिखित चार घटक होते हैं- परिषद या बोर्ड, मेयर तथा उपमेयर अथवा महापौर तथा उपमहापौर, निगम आयुक्त और समितियाँ। 74वें संविधान संशोधन द्वारा नगर निगमों का कार्यकाल पूरे देश में एक समान 05 वर्ष निर्धारित किया गया है। नगर निगमों में निर्वाचन की व्यवस्था तथा कार्यकाल सम्बंधी अन्य प्रावधानों की व्यवस्था अन्य नगरीय निकायों के समान ही 74वें संविधान संशोधन द्वारा रखी गई है।
3. **नगर निगम की कार्य, शक्तियाँ एवं उत्तरदायित्व-** नगर निगम एक कानूनी निकाय होता है। इसकी अपनी एक मोहर होती है। इसे शाश्वत उत्तराधिकार प्राप्त होता है। इसे सम्पत्ति क्रय एवं विक्रय का अधिकार होता है तथा यह किसी के विरूद्ध 'वाद' ला सकता है। नगर निगमों को वे ही कार्य सम्पन्न करने होते हैं जो राज्य विधान मण्डल द्वारा निगम निर्माण अधिनियम में उल्लेखित होते हैं। विभिन्न राज्यों

में निगमों के कार्यों, शक्तियों व स्वायत्तता में भिन्नता है, यद्यपि एक सामान्य आधार मानकर ही निगमों को कार्य सौंपे जाते हैं। इसके अतिरिक्त आर्थिक विकास एवं सामाजिक आय से सम्बन्धित योजनाओं के निर्माण एवं निष्पादन का कार्य भी राज्य सरकारों द्वारा निगमों को प्रदान किया जा सकता है। निगमों के कार्य, शक्तियां एवं सीमा क्षेत्र (भौगोलिक) तथा स्वायत्तता नगर पंचायतों व नगर परिषदों की तुलना में अधिक व्यापक होते हैं। 74वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा संवैधानिक दर्जा प्राप्त उपरोक्त तीन नगरीय निकायों- नगर पंचायत, नगर पालिका, नगर परिषद् एवं नगर निगम के अतिरिक्त भारत में तीन प्रकार के अन्य नगरीय निकाय भी हैं। परन्तु इन्हें संवैधानिक दर्जा प्राप्त नहीं है। ये निकाय हैं- अधिसूचित क्षेत्र समिति, छावनी मण्डल, एकल उद्देशीय अभिकरण।

2.6 अन्य नगर निकाय

आईये अन्य नगर निकायों के अन्तर्गत हम निम्नाकिंत अधिसूचित क्षेत्र समिति, छावनी मण्डल और एकल उद्देश्यीय अभिकरण के सम्बन्ध में अध्ययन करते हैं-

2.6.1 अधिसूचित क्षेत्र समिति

नवीन विकासशील शहरों अथवा पर्यटन स्थलों एवं सांस्कृतिक या ऐतिहासिक महत्व रखने वाले छोटे नगरों एवं कस्बों में, जहाँ राज्य सरकार यह अनुभव करती है कि वहाँ नगर पालिका स्थापित नहीं की जा सकती, वहाँ क्षेत्रीय समितियाँ स्थापित की जाती हैं। राज्य सरकार सरकारी गजट में अधिसूचना जारी कर इन समितियों का गठन कर सकती है। इसलिए इन्हें अधिसूचित क्षेत्र समिति कहते हैं। इन पर राज्य के नगरपालिका अधिनियम के केवल वे ही नियम लागू होते हैं, जिन्हें सरकारी गजट में अधिसूचित किया जाता है। सदस्यों की संख्या का निर्धारण भी राज्य सरकार द्वारा ही किया जाता है। इन समितियों के सदस्य प्रायः सरकार द्वारा ही मनोनीत होते हैं तथा इन सदस्यों में से ही राज्य सरकार द्वारा सभापति एवं उपसभापति की नियुक्ति करती है। उड़िसा में ऐसे क्षेत्रीय समितियों की संख्या सर्वाधिक है।

2.6.2 छावनी मण्डल

छावनी मण्डल केन्द्र सरकार द्वारा नियंत्रित संस्था होती है। इसका तात्पर्य यह है कि छावनी मण्डल के संचालन पर केन्द्र सरकार के सुरक्षा विभाग का नियंत्रण होता है। इसके संचालन में राज्य सरकार का कोई हस्तक्षेप नहीं होता है। भारत में छावनी मण्डल की व्यवस्था ब्रिटिश शासन के दौरान ही 'छावनी मण्डल अधिनियम 1924' के द्वारा

स्थापित हुआ था। इसके पश्चात सन् 1956 में इसे संशोधित किया गया। वर्तमान समय में भारत में लगभग 62 छावनी मंडल हैं।

संविधान की सातवीं अनुसूची में संघीय सूची की तीसरी प्रविष्टी में छावनी मण्डल के गठन, परिसीमन, शक्तियों तथा स्थानीय स्वशासन का प्रावधान है। छावनी मण्डल की स्थापना ऐसे स्थानों पर की जाती है, जहाँ सेना छावनी में रहती है। ऐसे स्थानों पर सेना की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु छावनी के आस-पास बाजार एवं असैनिक बस्तियाँ विकासित हो जाती हैं। अतः सैनिक छावनियों के निकट विकसित स्थानों पर स्थानीय प्रशासन को संचालित व नियंत्रित करने हेतु छावनी मण्डल स्थापित किए जाते हैं। अधिकतर छावनियाँ बड़े-बड़े नगरों के निकट होती हैं जैसे लखनऊ, आगरा, वाराणसी आदि में इस प्रकार की छावनियाँ देखी जा सकती हैं।

छावनी मण्डल में आधे सदस्य सेना के अधिकारी व आधे सदस्य असैनिक नागरिक होते हैं जो निर्वाचन के द्वारा सदस्य बनते हैं। छावनी मण्डल के सदस्यों की संख्या प्रायः 03 से 15 तक होती है। छावनी मंडल का अध्यक्ष/सभापति सैनिक छावनी का सर्वोच्च अधिकारी होता है तथा उपसभापति का निर्वाचन असैनिक नागरिकों में से किया जाता है। निर्वाचित असैनिक सदस्यों का कार्यकाल तीन वर्ष है जबकि सैनिक अधिकारियों का कार्यकाल उनके पद पर बने रहने तक रहता है।

2.6.3 एकल उद्देश्यीय अभिकरण

नगरीय प्रशासन में केवल किसी एक विशिष्ट उद्देश्य को पूरा करने के लिए बनाये जाने वाले संगठनों को एकल उद्देशीय अभिकरण कहते हैं। इन अभिकरणों को पदत्त शक्तियों की सीमा क्षेत्र तक ये अभिकरण स्वायत्त होते हैं। इनके आय के स्त्रोत भी पृथक होते हैं। इन अभिकरणों की स्थापना के पक्ष में तर्क दिया जाता है कि कुछ समस्याएं ऐसी होती हैं, जो नगरीकरण की प्रक्रिया के कारण तेज़ी से बढ़ रही हैं जैसे जलाशय, मलमूत्र निस्तारण, कचड़े या गंदगी की समस्याएं आदि। नगरपालिकायें व नगर निगम इस प्रकार की सेवाओं के संचालन हेतु आवश्यक प्रशासनिक एवं तकनीकी सुविधाएं जुटा सकने में समर्थ नहीं हो पाती, क्योंकि उनके पास विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ी समस्याओं की देख-रेख करनी होती है। ऐसे में एकल उद्देशीय अभिकरण महत्वपूर्ण हो जाते हैं। एकल उद्देशीय अभिकरण कई प्रकार के होते हैं जैसे- विकास प्राधिकरण, नगर विकास न्यास, आवासन मण्डल, बंदरगाह न्यास, इत्यादि।

1. **विकास प्राधिकरण-** विकास प्राधिकरण का गठन राज्य सरकार द्वारा अधिनियम के निर्माण के माध्यम से होता है। बड़े शहरों के विकास हेतु ऐसे प्राधिकरण बनाये जाते हैं जैसे दिल्ली विकास प्राधिकरण,

लखनऊ विकास प्राधिकरण, इत्यादि। इनका उद्देश्य क्षेत्र का समुचित, सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित विकास करना होता है। इस हेतु यह योजनाएं तैयार करता है तथा उनका निष्पादन करता है। विकास प्राधिकरण क्षेत्र के विकास हेतु अन्य प्राधिकरणों जैसे नगर परिषद या नगर निगम तथा आवासन मण्डल आदि के साथ भी भगीदारी करता है। इसका एक महत्वपूर्ण कार्य यह भी है कि यह क्षेत्र की विभिन्न विकास परियोजनाओं में समन्वयक की भूमिका का निर्वाह भी करता है। विकास प्राधिकरण के सभी सदस्य सरकार द्वारा ही मनोनीत होते हैं। प्रायः राज्य का विकास मंत्री या राज्यमंत्री इसका अध्यक्ष होता है। इसके अन्य सदस्य सामान्यतः सरकारी अधिकारी होते हैं।

2. **नगर विकास न्यास-** महानगरों में क्षेत्रों के विकास हेतु विकास प्राधिकरण बनाए जाते हैं। इसी तर्ज पर महानगरों की अपेक्षा छोटे नगरों में नगर विकास न्यास अथवा सुधार न्यास स्थापित किये जाते हैं। इनकी स्थापना राज्य के विधानसभा द्वारा की जाती है। यह निगमित निकाय होते हैं। जिसका तात्पर्य यह है कि इनकी अपनी मोहर होती है और इनके पास शाश्वत उत्तराधिकार एवं सम्पत्ति क्रय-विक्रय का अधिकार भी होता है। इनके कुछ सदस्य मनोनीत तो कुछ निर्वाचित भी हो सकते हैं। परन्तु मुख्यतः इसमें मनोनीत सदस्य ही होते हैं और सरकारी अधिकारियों की संख्या अधिक होती है। इनका कार्य सड़कों, पार्कों, खुले स्थानों, शौचालयों, बाजारों की व्यवस्था करना, जनता की रहन-सहन की दशा को सुधारना, भवन निर्माण सम्बन्धी नियमों को लागू करना आदि होते हैं। नगर विकास/सुधार न्यास अपने विकास सम्बन्धी कार्य पूरा करने के पश्चात उस क्षेत्र की देख-रेख करने हेतु नगर परिषदों/ निगमों को हस्तांतरित कर देता है।

3. **आवासन मण्डल-** आधुनिक काल में गावों से शहरों की ओर पलायन की प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती जा रही है। इसके कारण शहरों में जनसंख्या का दबाव भी निरन्तर बढ़ रहा है। अतः शहरवासियों को आवास सम्बन्धी अनेक कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ता है। जैसे- महंगे भूखण्डों व किरायों की ऊची दरों आदि के कारण झुग्गी-झोपड़ियों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। इस समस्या के समाधान हेतु सरकार के द्वारा बड़े शहरों में आवासन मण्डल स्थापित किए जाते हैं, जो नगरों में व्यवस्थित एवं पर्यावरण की दृष्टि से स्वच्छ मकानों का निर्माण कर पानी, बिजली, ड्रेनेज आदि की सुविधाओं से युक्त कॉलोनियों का निर्माण कर मकानों की नीलामी द्वारा विक्रय करते हैं, साथ ही किराया-क्रय पद्धति के द्वारा

उन लोगों को मकान देने की व्यवस्था करते हैं जो मकान की एकमुस्त राशि नहीं दे सकते। आवासन मण्डल के सदस्य भी सरकार द्वारा ही मनोनीत होते हैं।

4. **टाउनशिप-** टाउनशिप ऐसे क्षेत्र में स्थापित किए जाते हैं, जिनका विकास औद्योगिक नगर के रूप में होता है। जैसे- भिलाई, जमशेदपुर, बोकारो, सिन्दरी, तालचेर, आदि। ऐसे औद्योगिक नगरों में उन्हीं उद्योगों में कार्यरत कर्मचारी व अधिकारी निवास करते हैं तथा उनकी आवासीय बस्तियाँ बस जाती हैं। अतः इन स्थानों के स्थानीय प्रशासन के संचालन हेतु टाउनशिप का निर्माण किया जाता है। टाउनशिप उस क्षेत्र में पानी, बिजली, शिक्षा, चिकित्सा, मनोरंजन, बाजार आदि की व्यवस्था करता है। सम्बन्धित उद्योगों के द्वारा ही इस हेतु वित्तीय व्यवस्था किया जाता है। ये टाउनशिप सरकार से भी अनुदान प्राप्त करते हैं। टाउनशिप का अध्यक्ष उद्योगों द्वारा मनोनीत होता है। अधिकांश सदस्य भी उद्योगों द्वारा ही मनोनीत होते हैं। कुछ निर्वाचित व कुछ सरकार द्वारा मनोनीत सदस्य भी होते हैं। इन क्षेत्रों के नियंत्रण व पर्यवेक्षण हेतु सरकार द्वारा प्रशासक की नियुक्ति की जाती है।
5. **बंदरगाह न्यास-** बंदरगाह न्यास की स्थापना समुद्र के किनारे उन स्थानों पर की जाती है जहाँ बंदरगाह बने हुए हैं। वहाँ रह रहे नागरिकों की सुविधा हेतु स्थानीय स्वशासन की संस्था के रूप में बंदरगाह न्यास की स्थापना की जाती है जैसे- विशाखापट्नम पोर्ट ट्रस्ट, कोचीन पोर्ट ट्रस्ट, आदि। पोर्ट ट्रस्ट अथवा बंदरगाह न्यास का कार्य बंदरगाहों पर साफ-सफाई की व्यवस्था, समान उतारने-चढ़ाने की व्यवस्था, गोदाम की व्यवस्था सुनिश्चित करना तथा यात्रियों को सुविधा प्रदान करना होता है। पोर्ट ट्रस्ट का अध्यक्ष अथवा सभापति सरकार द्वारा मनोनीत सरकारी अधिकरी होता है। अन्य सदस्यों में से कुछ सरकार द्वारा मनोनीत तथा कुछ व्यापारियों द्वारा निर्वाचित होते हैं।

2.7 चौहतरवें संविधान संशोधन अधिनियम की व्यवस्थाएं

चौहतरवें संविधान संशोधन अधिनियम की निम्नांकित व्यवस्थाऐं हैं। आईये विस्तार से इनका अध्ययन करते हैं।

1. **सदस्य एवं पीठासीन अधिकारी-** नगर स्थानीय इकाइयों में तीन प्रकार के सदस्य होते हैं- निर्वाचित, मनोनीत तथा पदेन। नगर स्थानीय निकायों में मनोनीत अथवा पदेन सदस्य के रूप में प्रतिनिधित्व प्राप्त करने वाले सदस्यों के अतिरिक्त अन्य सभी सदस्य स्थानीय निकाय के निर्वाचन क्षेत्रों, जिन्हें वार्ड कहा जाता है, से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने जाते हैं।

मनोनीत सदस्य वे सदस्य होते हैं जिन्हें राज्य विधान-मण्डल, विधि द्वारा, प्रतिनिधित्व प्रदान करती है। ऐसे व्यक्तियों को मनोनीत किया जाता है जिन्हें नगरपालिका प्रशासन में विशेष ज्ञान अथवा अनुभव प्राप्त हो। ऐसे सदस्यों को स्थानीय निकायों की चर्चाओं में भाग लेने का अधिकार तो होता है, परन्तु मत देने का कोई अधिकार नहीं होता।

राज्य विधान मण्डल, विधि निर्माण द्वारा, निम्न प्रकार के व्यक्तियों को पदेन प्रतिनिधित्व प्रदान कर सकता है- लोक सभा और विधान सभा के सदस्यों को उन निकायों में, जिनकी सीमाओं में उनके चुनाव-क्षेत्र पूर्ण अथवा आंशिक रूप में पड़ते हों; राज्य सभा और विधान परिषद के सदस्यों को, उन स्थानीय निकायों में जिनकी सीमाओं में वे मतदाता के रूप में पंजीकृत हों; तथा ऐसी समितियों के पीठासीन अधिकारी, जिनका प्रावधान राज्य विधान-मण्डल ने किसी भी नगर क्षेत्र के लिये किया हो।

प्रत्येक नगर स्थानीय निकाय में पीठासीन अधिकारी की व्यवस्था होती है, परन्तु उनके निर्वाचन की विधि के सम्बन्ध में राज्य विधान-मडण्ल द्वारा निर्णय लिया जाता है।

2. **स्वतंत्र एवं निष्पक्ष निर्वाचन-** लोकतंत्र को तभी सफल बनाया जा सकता है जब निर्वाचन स्वतंत्र और निष्पक्ष हो। इसलिए नगर स्थानीय निकायों के स्वतंत्र एवं निष्पक्ष निर्वाचन हेतु राज्य निर्वाचन आयोग की स्थापना की व्यवस्था की गयी है। एक ही राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा ग्रामीण और नगरीय, दोनों स्थानीय निकायों का निर्वाचन सम्पन्न कराया जाता है।
3. **वार्डों की समितियाँ-** 74वें संविधान संशोधन में नगर स्थानीय निकायों में वार्डों की समितियों के गठन का निर्देश देखने को मलता है। ऐसी समितियाँ उन स्थानीय निकायों के क्षेत्रों में गठित की जाती हैं, जिनकी जनसंख्या तीन लाख अथवा उनसे अधिक हो। प्रत्येक वार्डों की समिति में नगर स्थानीय इकाई की सीमा के अंतर्गत अवस्थित एक या अधिक निर्वाचन वार्ड हो सकते हैं। प्रत्येक वार्डों की समिति का गठन, उसकी सीमाएं तथा उसके स्थानों को भरे जाने की विधि 74वें संशोधन में राज्य विधान मण्डल के निर्णय पर छोड़ दिया गया है। परन्तु यह संशोधन इतना अवश्य स्पष्ट करता है कि नगर स्थानीय निकाय का वह सदस्य, जो उन वार्डों की समिति के क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता हो, स्वतः ही उस वार्ड समिति का प्रतिनिधि हो जाएगा और उस वार्ड की समिति का पीठासीन अधिकारी भी होगा। जहाँ इस प्रकार के सदस्य दो या दो से अधिक होगें, वहाँ वार्डों की समिति उनमें से किसी एक को पीठासीन अधिकारी निर्वाचित करेगी।

उपरोक्त के अतिरिक्त राज्य विधान मण्डल किसी अथवा सभी नगर स्थानीय निकाय क्षेत्रों के लिए अन्य प्रकार की समितियों की स्थापना भी कर सकता है। इस प्रकार की समितियों के पीठासीन अधिकारी ही इस स्थानीय निकाय के पदेन सदस्य होते हैं, जिनके क्षेत्र में वो समितियाँ स्थित होती हैं।

4. **आरक्षण-** 73वें संशोधन के समान 74वाँ संविधान संशोधन में भी नगर स्थानीय निकायों में अनुसुचित जातियों, जनजातियों, पिछड़े वर्गों तथा महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है। तदानुसार, अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए प्रत्येक नगर स्थानीय निकाय में भी सीधे निर्वाचन से भरे जाने वाले कुल स्थानों में से उतने स्थान आरक्षित होंगे, जो अनुपात उस निकाय क्षेत्र में, उनकी जनसंख्या का कुल जनसंख्या से है। पिछड़े वर्गों के पक्ष में भी सीधे भरे जाने वाले स्थान में आरक्षण का प्रावधान किया गया है। परन्तु आरक्षण की विधि राज्य विधान मण्डलों पर छोड़ दी गई है, क्योंकि 74वें संशोधन के पारित होने के समय पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण पर उनकी नीति न बन सकी थी।

   जहाँ तक महिलाओं का प्रश्न है, पत्येक स्थानीय निकाय में सीधे भरे जाने वाले स्थनों में से एक तिहाई स्थान महिलाओं लिए आरक्षित कर दिए गए हैं। इसे कार्यरूप देने के लिए अनुसूचित जातियों के कुल आरक्षित स्थानों में से एक तिहाई, अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित स्थानों में से एक तिहाई, पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित स्थानों में से एक तिहाई तथा अनारक्षित स्थानों में से एक तिहाई क्रमशः उसी वर्ग के महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे, अर्थात अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़े-वर्ग तथा अनारक्षित।

   यह निश्चित करने के लिए कि वही वार्ड बार-बार होने वाली निर्वाचनों में एक ही वर्ग के लिए आरक्षित न हो जाए, 74वाँ संविधान संशोधन आरक्षण के सिद्धान्त को चक्रानुक्रम में कार्यान्वित करने का निर्देश देता है।

   सदस्यों के समान नगर स्थानीय निकायों के पीठासीन आधिकारियों के पदों में भी अनुसूचित जातियों, जनजातियों, पिछड़े वर्गों तथा महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है, परन्तु आरक्षण की विधि का निर्णय राज्य विधान मण्डल पर छोड़ दिया गया है।

5. **कार्यकाल-** 74वें संविधान संशोधन के अनुसार, प्रत्येक नगर स्थानीय निकाय का कार्यकाल 05 वर्ष निर्धारित कर दिया गया है। इस अवधि से अधिक इसका विस्तारण नहीं किया जा सकता। 05 वर्ष का कार्यकाल पूर्ण होने से पूर्व ही नए निर्वाचन कराना आवश्यक है। 05 वर्ष पूर्ण होने से पूर्व ही नगर स्थानीय

निकायों को विघटित किए जाने की व्यवस्था है। 74वाँ संविधान संशोधन विघटन के कारणों का उल्लेख नहीं करता, वरन् मात्र यह कहता है कि ''विघटन से पूर्व, नगरपालिका को सुनवाई का तर्कसंगत अवसर प्रदान किया जायेगा।'' यदि किसी स्थानीय निकाय को विघटित किया जाता है, तो विघटन की तिथि से 06 माह के अन्दर नये निर्वाचन सम्पन्न किए जाने चाहिए तथा नव-निर्वाचित निकाय पूर्व निकाय, जिसके विघटन के कारण नया निर्वाचन हुआ है, के अवशेष कार्यकाल का ही उपयोग कर सकेगा। परन्तु यदि पूर्ववर्ती निकाय का कार्यकाल 06 माह से कम बचा है, तो नव-निर्वाचित निकाय पूरे 05 वर्ष के कार्यकाल का उपभोग करेगा।

6. **अधिकार तथा दायित्व-** अब तक नगर स्थानीय निकाय अपने अधिकारों के लिए पूर्णतयः अपनी राज्य सरकारों पर ही निर्भर थे। परन्तु 74वें संविधान संशोधन ने पहली बार उनके अलग अधिकार-क्षेत्र की व्यस्था की है। इस अधिकार-क्षेत्र में उन्हें निम्नांकित दायित्व दिए गए हैं- आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की योजनाऐं बनाने का तथा उन कार्यों के सम्पादन और उन योजनाओं के कार्यान्वयन का जो उन्हें सौंपी जायें (बारहवीं अनंसूची में दिये कार्यों को सम्मिलित करते हुए)।

इनके अधिकार-क्षेत्र में जो मामले सौंपे गये हैं, उनका उल्लेख 12वीं अनुसूची में दिया गया है, जिसे कि 74वें संविधान संशोधन के माध्यम् से भारतीय संविधान में जोड़ा गया है। इस अनुसूची में निम्नलिखित 18 विषय हैं- नगर नियोजन, भूमि प्रयोग का नियमन तथा भवनों का निर्माण, आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए नियोजन, मार्ग तथा पुल का निर्माण, गृह, औद्योगिक तथा वाणिज्यिक कार्यों के लिए जलापूर्ति, जन स्वास्थ्य, स्वच्छता, मल-सफाई तथा ठोस अपशेष प्रबन्धन, अग्नि शमन सेवाऐं, नगर वानिकी, पर्यावरण की सुरक्षा तथा पारिस्थितिकी मामलों की प्रोन्नति, समाज के दुर्बल वर्गों के, जिसके अन्तगर्त अपंग एवम् मानसिक रूप से अविकसित सम्मिलित हैं, हितों की रक्षा, झुग्गी-झोपड़ियों का सुधार तथा उच्चीकरण, नगर गरीबी उन्मूलन, पार्क, बगीचे, खेल-कूद के मैदान, सुख-साधन, सुविधाएं, सांस्कृतिक, शैक्षिक तथा सौन्दर्यपरक आयामों की प्रन्नोति, दफन तथा कब्रिस्तान, दाह संस्कार तथा शमशान तथा विद्युत शव दाहगृह, कांजी हाऊस, पशुओं पर निर्दयता पर रोक, महत्वपूर्ण सांख्यिकी, जिसमें जन्म एवं मृत्यु का पंजीकरण सम्मिलित है, सार्वजनिक सुख-साधन, जिसके अंतर्गत मार्ग, प्रकाश, गाड़ी खड़ी करने का स्थान, बस स्टॉप तथा जन- सुविधाऐं भी सम्मिलित हैं और पशु-बध स्थलों तथा चर्म शोधनशालाओं का नियमन।

7. **वित्तीय स्रोत तथा वित्तीय नियंत्रण-** इन निकायों के वित्तीय आधार सुदृढ़ करने के उद्देश्य से 74वाँ संविधान संशोधन राज्य विधान-मण्डल को विधि-निर्माण करने की सत्ता प्रदान करता है ताकि-

   - नगर स्थानीय निकायों को करों, शुल्कों, मार्ग करों तथा फीस आरोपित करने की सत्ता प्राप्त हो सके।
   - नगर स्थानीय निकायों को राज्य सरकार द्वारा आरोपित तथा एकत्रित करों, शुल्कों, मार्ग करों, तथा फीस प्रदान की जा सके, तथा
   - राज्य के संचित कोष से, सहायक अनुदान देने की व्यवस्था की जा सके।

   राज्य वित्त आयोग को वित्तीय संसाधन संस्तुत करने का कार्य प्रदान कर दिया गया है। यह आयोग निम्न के बारे में सिद्धान्तों का निर्धारण करेगा- राज्य तथा नगर निकायों के मध्य राज्य सरकार द्वारा आरोपित करों, शुल्कों, मार्ग करों, तथा फीस से प्राप्त शुद्ध आय के वितरण की व्यवस्था तथा इस आय का विभिन्न स्तरों के स्थानीय निकायों के मध्य वितरण; उन करों, शुलकों, मार्ग करों तथा फीस का निर्धारण, जो कि नगर स्थानीय निकायों द्वारा आरोपित अथवा विनियोजित किये जा सकते हों; तथा राज्य के संचित कोष से स्थानीय निकायों को सहायक अनुदान देने की व्यवस्था।

   अधिक वित्तीय स्रोतों का अर्थ है कि इन पर कठोर वित्तीय नियंत्रण भी स्थापित किया जाए ताकि धन का दुरूपयोग न हो सके। अतः 74वाँ संशोधन राज्य विधान मण्डल को विधि द्वारा नगर स्थानीय निकायों के लेखों का अनुरक्षण, तथा इन लेखों के अंकेक्षण के बारे में प्रावधान बनाने का अधिकार प्रदान करता है।

8. **अपवाद-** 74वें संशोधन के प्रावधान भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 244 के अंतर्गत गठित अनुसूचित क्षेत्रों तथा जनजातीय क्षेत्रों तक लागू नहीं होंगें, जब तक कि संसद विशेष रूप से इसके प्रावधानों को इन क्षेत्रों पर लागू न कर दे। यह व्यवस्था इन क्षेत्रों में आवासित स्थानीय शासन की परम्परागत संरचना को बनाए रखने तथा उनकी रक्षा के लिए की गयी है, जिसे कि 74वें संविधान संशोधन के द्वारा छेड़ना उचित नहीं माना गया।

   74वाँ संशोधन की व्यवस्थाओं का प्रभाव दार्जिलिंग गोरखा पर्वतीय परिषद् के कार्यों तथा अधिकारों पर भी नहीं पड़ेगा, जिसका गठन पश्चिम बंगाल राज्य के दार्जिलिंग जनपद के पर्वतीय क्षेत्रों के लिए किया गया है।

9. **विकेन्द्रित नियोजनः जनपद स्तरीय एवं महानगर स्तरीय-** नगर स्थानीय शासन के पुनर्गठन के अतिरिक्त, 74वाँ संविधान संशोधन जनपद तथा महानगर स्तरों पर नियोजन का प्रावधान भी करता है। 74वाँ संशोधन जनपद स्तर पर जनपद नियोजन समिति के गठन की व्यवस्था करता है। इस समिति का गठन तथा स्थानों को भरने की प्रक्रिया राज्य विधान-मण्डल पर छोड़ दी गई है। परन्तु यह व्यवस्था की गई है कि जनपद नियोजन समिति के कुल स्थानों में 4/5 स्थान जिला पंचायत के सदस्यों तथा जनपद में नगर स्थानीय निकायों के सदस्यों से उस अनुपात में निर्वाचित होंगे, जो अनुपात जनपद में ग्रामीण क्षेत्रों तथा नगर क्षेत्रों की जनसंख्या में पाया जाता हो। प्रत्येक जनपद नियोजन समिति का एक अध्यक्ष होगा तथा उसके चयन की विधि राज्य विधान-मण्डल की इच्छा पर छोड़ दी गयी है।

राज्य विधान-मण्डल, विधि के द्वारा, जनपद नियोजन समिति द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यों को निर्धारित कर सकता है, तथापि 74वाँ संशोधन विशेष रूप से इस समिति को दो कार्य प्रदान करता है- जनपद में ग्रामीण तथा नगर स्थानीय निकायों द्वारा बनायी गयी योजनाओं को समेकित करना तथा सम्पूर्ण जनपद की विकास योजना का प्रारूप तैयार करना।

इस समिति को जनपद की विकास योजना का प्रारूप बनाते समय यह ध्यान रखना पड़ेगा कि ग्रामीण तथा नगर स्थानीय निकायों के मध्य समान हित के मामले, जिसके अंतर्गत स्थानिक नियोजन, जल तथा अन्य भोतिक तथा प्राकृतिक संसाधनों में हिस्सेदारी, आधारिक संरचना का विकास तथा पर्यावरणीय संरक्षण सम्मिलित हैं; उपलब्ध वित्तीय अथवा अन्य संसाधनों के प्रकार तथा उनकी मात्रा; तथा ऐसी संस्थाओं तथा संगठनों से परामर्श, जैसा कि राज्यपाल निर्धारित करें। एक बार जहाँ जनपद नियोजन समिति ने जनपद की विकास योजना का प्रारूप बना लिया, इसका अध्यक्ष इस योजना को राज्य सरकार के विचारार्थ अग्रसारित करेगा।

74वाँ संविधान संशोधन प्रत्येक महानगर नियोजन समिति की स्थापना का निर्देश देता है। इसका गठन तथा स्थानों को भरने की प्रक्रिया राज्य विधान-मण्डल के निर्णय पर छोड़ दिया गया है। तथापि 74वाँ संशोधन स्पष्ट रूप से यह निर्धारित करता है कि महानगर नियोजन समिति के कम से कम दो-तिहाई सदस्य महानगर क्षेत्र में अवस्थित नगर स्थानीय इकाइयों के निर्वाचित सदस्यों तथा ग्रामीण स्थानीय इकाइयों के अध्यक्षों से उस अनुपात में चुनें जायेंगे, जो अनुपात महानगर क्षेत्र में ग्रामीण और नगर स्थानीय निकायों की जनसंख्या के मध्य हो। इसके अतिरिक्त, राज्य विधान-मण्डल महानगर समिति में

केन्द्र तथा राज्य सरकार तथा साथ ही ऐसे संगठनों एवम् संस्थाओं के अधिकारियों के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करेगा, जैसा कि वह उचित समझे। महानगर नियेजन समिति का प्रमुख एक अध्यक्ष होगा, जिसके चयन की प्रक्रिया राज्य विधान मण्डल द्वारा निर्धारित किये जाने की व्यवस्था है।

महानगर नियोजन समिति को सम्पूर्ण महानगर क्षेत्र की विकास योजना का प्रारूप बनाने का दायित्व सौंपा गया है। नियोजन तथा समन्वयन के कार्यों का निर्धारण राज्य विधान मण्डल द्वारा किया जायेगा। विकास योजना का प्रारूप बनाते समय महानगर नियोजन समित को अग्रलिखित को ध्यान में रखना पड़ेगा- महानगर क्षेत्र ग्रामीण तथा नगर स्थानीय निकायों द्वारा बनायी गयी योजनायें; नगर तथा ग्रामीण स्थानीय निकायों के मध्य समान हित के मामले, जिसके अंतर्गत क्षेत्र का समन्वित स्थानिक नियोजन, आधारिक संरचना का समन्वित विकास तथा पर्यावरणीय संरक्षण सम्मिलित है; केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा निर्धारित किये गये कुल उद्देश्य एवम प्राथमिकताऐं; तथा महानगर क्षेत्रों में केन्द्र और राज्य सरमाकर के अभिकरणों द्वारा किये जाने वाले व्ययों की मात्रा तथा उनका स्वरूप तथा अन्य वित्तीय अथवा अन्य संसाधनों की उपलब्धता। महानगर नियोजन समिति से यह भी अपेक्षा किया जाता है कि वह राज्य के राज्यपाल द्वारा निर्धारित संस्थाओं और संगठनों से भी परामर्श करेगी।

महानगर नियोजन समिति द्वारा महानगर विकास योजना तैयार होने पर इसका अध्यक्ष इसे राज्य सरकार के विचारार्थ प्रेषित कर देगा।

अभ्यास प्रश्न-

1. 74वें संविधान संशोधन में किन तीन प्रकार के नगरीय निकायों के गठन की व्यवस्था की गई है?
2. संविधान की 12वीं अनुसूची में कितने विषय हैं?
3. नगरपालिकाओं के निर्वाचन के मामले में न्यायालय के हस्तक्षेप पर किस अनुच्छेद द्वारा रोक लगाई गई है?

2.8 सारांश

उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि नगरीय स्वशासन की इकाइयों का सही अर्थों में सशक्तिकरण तभी सम्भव हो सका है जब नगरीय स्वशासन को संवैधानिक मान्यता प्रदान करते हुए इसे संविधान में शामिल कर लिया गया। परन्तु संवैधानिक दर्जा प्राप्त होने मात्र से ही नगरीय स्वशासन की इकाइयों को पूर्णरूप से सशक्त की पाना सम्भव

नहीं हो सका है क्योंकि वर्तमान में भी इन इकाइयों को जिस स्वयत्तता की आवश्यकता है वह उन्हें प्राप्त नहीं हो सकी है। इसके लिए अभी और भी सुधारों की आवश्यकता है जिसका अध्ययन हम अगली इकाई में करेंगे।

आधुनिक समय में निरन्तर शहरों पर बढ़ते जनसंख्या के दबाव के कारण शहरों में मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आवश्यक संसाधनों की कमी है। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि इन निकायों को अधिक से अधिक स्वतंत्रता प्रादान की जाए तथा राज्यों के अनावश्यक हस्तक्षेप को कम किया जाए। परन्तु साथ ही यह भी आवश्यक हो जाता है कि इन निकायों पर आवश्यक दृष्टि बनाए रखी जाए, नहीं तो इनके भ्रष्ट हो जाने का खतरा भी बढ़ जाता है।

2.9 शब्दावली

पलायन- एक स्थान से अन्य स्थान को जाना, विकास प्राधिकरण- नगरों के विकास के लिए बनाए गये सरकारी विभाग, टाउनशिप- औद्योगिक नगर, जहाँ उद्योगों से जुड़े लोगों के लिए बसाया गया नगर, विघटन- समाप्त या अलग-अलग करना

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. नगर पंचायत, नगर परिषद् तथा नगर निगम, **2.** 18, **3.** अनुच्छेद- 243 (य छ)

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रदीप सचदेवा, लोकल गवर्नमेन्ट इन इण्डिया, डोर्लिंग किंडरश्ली (इण्डिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2011
2. जयाल, एन0जी0 और प्रताप भानू मेहता, पॉलिटिक्स इन इण्डिया, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2010
3. प्रदीप सचदेवा, डाइनेमिक्स ऑफ मुनिशिपल गर्वनमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया, किताब महल, इलाहाबाद, 1991
4. बर्थवाल, सी0पी0, स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 2010
5. जोशी, आर0पी0 और अरूणा भारद्वाज, भारत में स्थानीय प्रशासन, शील सन्स, जयपुर, 1999

2.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. खन्ना, आर0एल0, मुनिसिपल गवर्नमेन्ट एण्ड एडमिनिस्टे[a]शन इन इण्डिया, मोहिन्द्रा कैपिटल पब्लिसर्श, चंड़ीगढ़, 1967
2. शर्मा, एस0के0 तथा वी0एन0 चावला, मुनिसिपल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डियाः सम रिफलेक्शन्स, इनटर्नेशनल बुक को0, जालंधर, 1975
3. कौशिक, एस0के0, लीडरशिप इन अर्बन गवर्नमेन्ट इन इण्डिया, किताब महल, इलाहाबाद, 1986
4. मुतालिब, एम0ए0 और एन0 उमापथि, अर्बन गवर्नमेन्ट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, रिजनल सेन्टर फॉर अर्बन एण्ड इन्वार्नमेन्टल स्टडीज़, हायद्राबाद, 1981
5. चतुर्वेदी, टी0वी0, सिविक कन्सेसनेश, आई0आई0पी0ए0, नई दिल्ली, 1979

2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नगर निगम पर एक निबन्ध लिखिए।
2. नगर पंचायत की कार्य, शक्तियाँ एवं उत्तरदायित्व पर प्रकाश डालिए।
3. 74वें संविधान संशोधन की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

इकाई- 3 नगरीय शासन सम्बन्धी सुधार

इकाई की संरचना

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 नगरीय शासन सम्बन्धी समस्याएं

3.2.1 वित्तीय व्यवस्था एवं वित्तीय समस्या

3.2.2 राज्य के नियंत्रण की समस्या

3.2.3 नेतृत्व की समस्या

3.2.4 जन प्रतिनिधित्व तथा जन सहभागिता की समस्या

3.2.5 कार्मिक प्रशासन की समस्या

3.2.6 राजनीतिक दलों के हस्तक्षेप तथा राजनीतीकरण की समस्या

3.3 नगरीय शासन सम्बन्धी सुधार

3.3.1 वित्तीय सुधार

3.3.2 राज्य के नियंत्रण में सुधार

3.3.3 नेतृत्व में सुधार

3.3.4 जन प्रतिनिधित्व तथा जन सहभागिता की समस्या का समाधान

3.3.5 कार्मिक प्रशासन में सुधार

3.3.6 राजनीतिक दलों के हस्तक्षेप तथा राजनीतीकरण की समस्या का समाधान

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

इस इकाई में हम संवैधानिक प्रावधानों से इतर हट कर यह अध्ययन करने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार संवैधानिक मान्यता प्राप्त होने के उपरान्त भी नगरीय शासन के समक्ष कई प्रकार की चुनौतियाँ देखने को मिलती हैं। नगरीय शासन के व्यवहारिक क्रियान्वयन में इन संस्थाओं को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है जैसे- वित्तीय समस्याएं; राज्य के नियंत्रण की समस्याएं; नेतृत्व की समस्याएं; जन प्रतिनिधित्व की समस्याएं; कार्मिक प्रशासन सम्बन्धी समस्याएं इत्यादि। इन समस्याओं के सफल समाधान के अभाव में नगरीय शासन में सुधार लाना और इसके महत्व को बनाए रखना सम्भव नहीं है। इसलिए प्रत्येक समस्या के समाधान के लिए कुछ आवश्यक परिवर्तनों तथा सुधारों की आवश्यकता है, जिससे नगरीय शासन को स्वशासन की महत्वपूर्ण इकाई के रूप में स्थापित किया जा सके तथा लोकतंत्र की जड़ों को मजबूती प्रदान किया जा सके।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- नगरीय शासन सम्बन्धी समस्याओं को जान सकेंगे।
- नगरीय शासन की समस्याओं के समाधान हेतु आवश्यक सुधारों को जान सकेंगे।
- नगरीय शासन के सफल संचालन हेतु आवश्यक परिस्थितियों को समझ सकेंगे।

3.2 नगरीय शासन सम्बन्धी समस्याएं

इकाई के इस भाग में हम नगरीय स्थानीय शासन सम्बन्धी प्रमुख समस्याओं पर एक-एक कर के विचार करेंगे, जो कि निम्नलिखित हैं-

3.2.1 वित्तीय व्यवस्था तथा वित्तीय समस्याएं

वित्त किसी भी संस्था अथवा संगठन के सफल संचालन के लिए सबसे महत्वपूर्ण आधार माना जाता है, जिसके बिना संस्था को संचालन सम्भव ही नहीं हो सकता। नगरीय शासन में वित्त भी उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि किसी भी संस्था के लिए। यदि वित्तीय स्रोतों तथा वित्त का अभाव है, तो किसी भी व्यवस्था का संचालन अत्यंत कठिन है। इसी प्रकार स्थानीय संस्थाओं के संचालन के लिए सुदृढ़ वित्तीय व्यवस्था का होना आवश्यक हो जाता है। शहरों के विकास के साथ ही साथ नगरीय निकायों के दायित्वों में भी इजाफा हुआ है और इन दायित्वों का निर्वाह तब तक सम्भव नहीं जब तक वित्तीय व्यवस्था सुचारू रूप से कार्य न करे। इसलिए स्थानीय संसथाओं के

वित्तीय प्रबन्धन को महत्वपूर्ण माना गया है। वित्तीय व्यवस्था के अंतर्गत हम नगरपालिकाओं के आय के स्रोतों, इनके व्यय और इन पर राज्य सरकार के नियंत्रण के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे और साथ ही साथ जिन वित्तीय समस्याओं का सामना इन नगरीय स्थानीय निकायों को करना पड़ रहा है उनके विषय में भी जानेंगे।

1. **बजट-** प्रत्येक नगरपालिका के वार्षिक आय और व्यय से सम्बन्धित लेखा-जोखा को नगरपालिका बजट कहते हैं। बजट निर्माण की प्रक्रिया में आय के स्रोतों और व्यय पर विचार किया जाता है। बजट का उद्देश्य है कि आय और व्यय नियमों के अनुकूल किए जाएं। राज्य सरकारों के मतानुसार बजट की प्रक्रिया से राज्य इन स्थानीय निकायों पर अपनी निगरानी और अपना नियंत्रण बनाने में सक्षम होती है। यह बजट सामान्यतः कार्यपालिका के द्वारा निर्मित किया जाता है और परिषद् में अनुमोदन हेतु रखे जाने से पूर्व वित्तीय उप-समितियों के द्वारा इसकी जांच की जाती है। नगरपालिकाओं को यह जिम्मेदारी दी जाती है कि वे बजट तैयार कर इसे प्रत्येक वर्ष 25 फरवरी तक राज्य सरकार के समक्ष अनुमोदन हेतु प्रस्तुत करें। यदि व्यवहारिकता की बात करें, तो इस बजट का निस्तारण तृतीय श्रेणी कर्मचारियों के द्वारा ही कर दिया जाता है क्योंकि राज्य सरकार इसमें कोई विशेष रूचि नहीं दिखाती। केवल उस परिस्थिति में राज्य सरकार गंभीरता से बजट पर विचार करती है, जब किसी भारी अनियमितता की आशंका होती है। परन्तु राज्य सरकार बजट की प्रक्रिया में अपनी भूमिका को कम नहीं करना चाहती क्योंकि राज्य सरकारों का ऐसा मानना है कि इसके माध्यम से वे स्थानीय निकायों पर अपना नियंत्रण रख सकती हैं और उनकी जांच कर सकती हैं। हालांकि राज्य सरकारों की इस शिथिलता का यह परिणाम होता है कि नगरीय स्वशासन हेतु बजट की प्रक्रिया समय से पूर्ण नहीं हो पाती जिसके फलस्वरूप इन निकायों की स्थिति में कोई सुधार नहीं आ पाता।
2. **नगरपालिकाओं के आय के स्रोत-** नगरपालिकाओं के आय के स्रोतों को निम्न वर्गों में विभाजित कर समझा जा सकता है-
    - स्थानीय कर/करारोपण से प्राप्त आय- यह नगरपालिकाओं के आय का मुख्य साधन माना जाता है, क्योंकि आय का अधिकांश भाग करारोपण से ही प्राप्त होता है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित कर आते हैं- चुंगी कर, सम्पत्ति कर, व्यवसाय कर, मनोरंजन कर, प्रचार कर।
    - गैर-कर आय- नगरपालिकाओं के द्वारा करों के रोपण के अतिरिक्त आय का एक अन्य महत्वपूर्ण स्रोत है, जिसके अंतर्गत नगरपालिकाओं के द्वारा वसूले गए शुल्क इत्यादि आते हैं।

- सहायता अनुदान- नगरपालिकाओं के आय के स्रोतों में सहायता अनुदान भी अत्यंत ही महत्वपूर्ण है। नगरपालिकाओं के आय के स्रोत सीमित हैं और व्यय निरंतर बढ़ते ही जा रहे हैं। ऐसे में आय और व्यय के इस अन्तर को समाप्त करने के उद्देश्य से राज्य सरकार द्वारा जो धनराशि प्रदान की जाती है, उसे ही सहायता अनुदान कहते हैं। कई मामलों में राज्य सरकार नगरपालिकाओं से कुछ कार्य लेती हैं या उन्हें कोई कार्य सौंपती हैं, ऐसी स्थिति में यह राज्य सरकार का नैतिक दायित्व बन जाता है कि वह नगरपालिकाओं को सहायता अनुदान प्रदान करें जिससे उस कार्य का सम्पादन भली भाँति हो सके। स्थानीय शासन तथा राज्य सरकार के मध्य करों के बंटवारे, अनुदान के संदर्भ में तथा स्थानीय निकायों की वित्तीय स्थिति को मजबूत करने हेतु सुझाव देने के लिए राज्य वित आयोग का गठन किया गया है। 11वीं केन्द्रीय वित्त आयोग ने स्थानीय निकायों को आर्थिक रूप से सशक्त करने के लिए केन्द्र सरकार से अनुदान की सिफारिश की थी और उसके बाद अन्य केन्द्रीय वित्त आयोग भी ऐसी ही सिफारिशें करती रही हैं।

- ऋण- किसी आकस्मिकता की परिस्थिति में नगरपालिकाओं के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे राज्य सरकार से ऋण प्राप्त करें। यह ऋण की व्यवस्था केन्द्र के द्वारा निर्मित स्थानीय प्राधिकारी ऋण अधिनियम 1914 से संचालित होती है। परन्तु नगरपालिकाएं यह ऋण केवल निम्न परिस्थितियों में ही ले सकती हैं- आपातकालीन परिस्थिति, विकास कार्य हेतु, ऋण का भुगतान करने हेतु, सूखे की परिस्थिति में राहत कार्य करने हेतु, या किसी महामारी की परिस्थिति में। नगर निगम यह ऋण 60 वर्षों के लिए ले सकते हैं जबकि नगरपालिका समितियाँ इसे 30 वर्षों के लिए ही ले सकते हैं। परन्तु नगरपालिकाएं इस प्रकार के ऋण ले पाने में असमर्थ रहीं हैं, क्योंकि उनकी छवि लोगों की नज़र में अच्छी नहीं है।

3. **नगरपालिकाओं का व्यय तथा लेखा परीक्षण-** नगरपालिकाओं के कार्यों में निरन्तर वृद्धि देखी जा सकती है। शहरीकरण के परिणामस्वरूप शहरों पर बढ़ते दबाव के कारण नगरीय स्थानीय निकायों का कार्य बहुत बृहद हो गया है, जो कि इसके व्यय को बढ़ाता रहता है। मुख्य रूप से नगरपालिकाओं द्वारा किए जाने वाले कार्यों को निम्न बृहद वर्गों में विभाजित कर समझा जा सकता है- सुरक्षा, स्वास्थ्य,

कल्याण, शिक्षा, ऋण भुगतान, स्थानीय लोगों के मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति, विकास कार्य, मनोरंजन, आदि। व्यय की अपेक्षा इनके आय के स्रोत बहुत कम हैं।

स्थानीय निकायों का लेखा परीक्षण सामान्यतः स्थानीय निधि लेखा के परीक्षक के द्वारा किया जाता है। यह लेखा परीक्षण दो प्रकार के हो सकते हैं- पूर्व लेखा परीक्षा तथा उत्तर लेखा परीक्षा। पूर्व लेखा परीक्षा में किसी वर्ष के किसी एक निश्चित हिस्से में किए गए व्यय का आंकलन किया जाता है, यदि भारी अनियमितता पाई जाती है तो सरकार बृहद स्तर पर परीक्षण के लिए निर्देशित कर सकती है। उत्तर लेखा परीक्षा में किए गए परीक्षण का कोई विशेष महत्व नहीं होता, क्योंकि यह उस कार्य का परीक्षण है जिसे पूर्व में ही किया जा चुका है। यह लेखा परीक्षा कराने का अधिकार राज्य सरकार का होता है।

4. **वित्तीय समस्याएं-** इस प्रकार उपरोक्त का अध्ययन करके हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि किन कारणों से नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति में कोई सुधार नहीं हो पा रहा है-

- आय के स्रोतों का अन्यायपूर्ण वितरण- नगरपालिकाओं के कार्य अधिक हैं, जबकि आय के स्रोत सीमित है। अतः राज्य सरकार और नगरपालिकाओं के मध्य आय के स्रोतों का बंटवारा कार्यों के आधार पर किया जाना चाहिए।
- बजट निर्माण की गलत प्रक्रिया- सामान्यतः यह देखने को मिलता है कि नगरपालिकाओं के बजट का निर्माण किया जाता है तो उसमें व्यय आय से कहीं अधिक होता है जिससे कार्यों का संपादन कर पाना सम्भव नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त बजट को पारित करने में इतना समय लग जाता है कि कोई भी कार्य उचित ढ़ंग से समय से पूर्ण नहीं हो पाता और कई बार परियोजनाओं को बजट पारित होने से पूर्व ही प्रारम्भ कर दिया जाता है और बाद में इसके लिए पूंजी की कमी हो जाती है।
- नए कर लगाने की समस्या- नगरपालिकाओं को यह अधिकार दिए गए हैं कि वे कुछ नए कर लगा सकते हैं। परन्तु किन्हीं राजनीतिक दबावों के कारण नगरपालिकाओं को कोई भी नया कर लगाने में समस्याओं का सामना करना पड़ता है।
- अनुदान की गलत प्रक्रिया- जो अनुदान राज्य सरकारों के द्वारा दिए जाते हैं, वे अपर्याप्त होते हैं तथा इन अनुदानों के लिए राज्य सरकार बाध्य नहीं है। ऐसे में व्यवस्था का संचालन कर पाना कठिन हो जाता है।

- राज्य का कठोर रवैया- कई राज्यों में नगरपालिकाओं के कार्य राज्य सरकार द्वारा छीन लिए जाते हैं, जिससे एक तरफ तो नगरपालिकाओं की छवि धुमिल होती है और दूसरी ओर उनका महत्व भी कम हो जाता है।
- लेखा परीक्षण की गलत विधि- लेखा परीक्षण के नियमों का पालन राज्य सरकारों के द्वारा पूर्ण रूप से नहीं किया जाता, जिससे नगरपालिकाओं को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है।
- ऋण लेने की सीमा अपर्याप्त- ऋण लेने की सीमा बहुत कम है जो कि नगरपालिकाओं के लिए कोई भी कार्य करवाने के लिए कम पड़ जाता है। इस सीमा को और भी बढ़ाए जाने की आवश्यकता है।

3.2.2 राज्य के नियंत्रण की समस्या

नगरीय स्वशासन की इकाइयों पर राज्य का नियंत्रण भी एक समस्या के रूप में देखा जाता है, क्योंकि यह नियंत्रण कई बार इन संस्थाओं की स्वायत्ता को भी चोट पहुँचाती हैं। मुख्यतः राज्य के नियंत्रण को निम्न प्रकारों में विभाजित कर देखा जाता है-

1. **विधायी नियंत्रण-** संविधान द्वारा राज्य सरकारों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं हेतु कानून का निर्माण कर सकते हैं तथा उनके कार्य और शक्तियों का निश्चय कर सकते हैं। ऐसा इस लिए क्योंकि प्रत्येक राज्य में नगरीय शासन की संस्थाओं का निर्माण ही राज्य विधान मण्डल द्वारा होता है तथा यह अपनी सभी शक्तियाँ राज्य से ही प्राप्त करते हैं। यहाँ तक कि विधान मण्डल सरकार को इससे सम्बन्धित मामलों जैसे चुनाव, कार्मिक, लेखा, कर आदि में कानून निर्माण का अधिकार दे सकती है। राज्य विधान-मण्डल नगरपालिका अधिनियम में संशोधन भी कर सकती है तथा कुछ महत्वपूर्ण मामलों में अलग से कानून का निर्माण भी कर सकती है। राज्य विधान सभा में नगरपालिकाओं से सम्बन्धित विचार-विमर्श भी किया जा सकता है तथा उस पर सम्बन्धित मंत्री से प्रश्न भी पूछे जा सकते हैं। हालांकि राज्य का विधायी नियंत्रण कोई समस्या नहीं है बल्कि यह नगरपालिकाओं के सफल संचालन हेतु अत्यंत ही आवश्यक भी है, परन्तु नगरपालिकाओं के मुद्दों पर विचार-विमर्श करने के लिए समय का अभाव होता है। कई बार राजनीतिक पूर्वाग्रहों के कारण या राजनीतिक निहित हितों के कारण समस्याएं उत्पन्न होने लगती हैं, तब यह विधायी नियंत्रण नगरपालिकाओं के लिए एक समस्या बन जाती है।

2. **वित्तीय नियंत्रण-** जैसा कि पूर्व में ही बताया जा चुका है कि नगरपालिकाएं वित्तीय रूप से पूरी तरह राज्य सरकारों पर ही निर्भर होती हैं और उनकी दया पर आश्रित हैं, इस बिन्दु के अंतर्गत हम राज्य सरकार का नगरपालिकाओं पर वित्तीय नियंत्रण के तरीकों को देखेंगे। राज्य सरकार वित्तीय मामलों में इसलिए महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि नगरपालिकाओं को यह तो अधिकार है कि वे कोई कर लगाएं अथवा उसमें परिवर्तन करें अथवा उसे समाप्त करें, परन्तु वे ऐसा तभी कर सकती हैं जब इस हेतु राज्य सरकार द्वारा उन्हें अनुमोदन प्रदान कर दिया जाए। राज्य सरकार नगरपालिकाओं को यह भी निर्देशित कर सकती है कि किसी कर की दर क्या होगी, उसकी सीमा क्या होगी, किसे उस कर से मुक्त रखा जाएगा, इत्यादि।

   राज्य सरकार नगरपालिकाओं के व्यय को विनियमित भी कर सकती है तथा नगरपालिकाओं के बजट का प्रारूप भी राज्य सरकारों के द्वारा तय किया जाता है और इसका अनुमोदन भी राज्य सरकार के द्वारा ही होता है। इसी प्रकार लेखा परीक्षण का कार्य भी राज्य के द्वारा ही सम्पादित किया जाता है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि नगरपालिकाएं राज्य सरकार के पूर्ण वित्तीय नियंत्रण में कार्य करती हैं।

3. **प्रशासनिक नियंत्रण-** प्रशासनिक नियंत्रण एक ऐसा नियंत्रण है जिसके माध्यम से राज्य नगरपालिकाओं पर अपना पूर्णरूपेण नियंत्रण स्थापित कर लेता है। राज्य निम्नलिखित प्रकार से नगरपालिकाओं पर अपना प्रशासनिक नियंत्रण स्थापित करता है- नगरपालिकाओं द्वारा निर्मित कानूनों को अनुमोदन प्रदान करना, उन्हें निदेशित करना, सुझाव देना, कार्यक्रमों को अनुमादन देना, परीक्षण व निरीक्षण करना, उनसे रिर्पोट मांगना, कर लगाना, आदि।

   जहाँ तक कार्मिकों का प्रश्न है, राज्य सरकार का नगरपालिका कार्मिकों पर पूर्ण नियंत्रण है। एक सहायक से लेकर ऊपर के सभी पदों पर राज्य सरकार द्वारा ही नियुक्ति की जाती है। राज्य सरकार ही कार्मिकों की नियुक्ति, स्थानांतरण तथा पदोन्नति के नियम और तरीकों को तय करती है। परन्तु कार्मिकों का वेतन, भत्ता, पेंशन आदि का निर्धारण सम्बन्धित नगरपालिका के द्वारा किया जाता है। नगरपालिका केवल तृतीय तथा चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की नियुक्ति कर सकती है। इसी प्रकार नगरपालिका केवल उन्हीं कार्मिकों को पद से निकाल सकती है जिसकी नियुक्ति उसके द्वारा की गई है, अन्य कार्मिकों को निकालने का अधिकार राज्य सरकार को ही होता है। नगरपालिका केवल इस प्रकार की कार्यवाही की राज्य सरकार से सिफारिश कर सकती है।

नगर निगमों के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि नगर निगम का आयुक्त, जिसमें सभी कार्यकारी शक्तियाँ निहित होती हैं, राज्य सरकार के द्वारा ही नियुक्त किया जाता है। इसके सभी कर्मचारी राज्य सरकार द्वारा प्रस्तावित वेतन, भत्ते और अन्य सुविधा प्राप्त करते हैं, इसलिए यह कहा जा सकता है कि नगर निगमों पर राज्य सरकार का पूर्ण प्रशासनिक नियंत्रण होता है।

उपरोक्त के अतिरिक्त राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर निरीक्षण का कार्य भी किया जाता है। सरकार उनसे नियमित रिर्पोट भी मांग सकती है। सरकार उनसे किसी भी कार्य को सम्पादित करने हेतु निर्देशित भी कर सकती है। नगरपालिकाओं के विरूद्ध राज्य सरकार के पास अपील भी की जा सकती है। इन सबसे महत्वपूर्ण यह है कि राज्य सरकार को यह अधिकार है कि वह नगरपालिकाओं को भंग कर सकती है।

4. **न्यायिक नियंत्रण-** नगरपालिकाओं के द्वारा उनके अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन कर यदि नागरिकों के हितों की अनदेखी की जाती है तो ऐसे में उनपर न्यायिक नियंत्रण का होना आवश्यक हो जाता है। इसी प्रकार यदि राज्य सरकारें नगरपालिकाओं के अधिकार क्षेत्र में जा कर उनके अधिकारों का हनन करती हैं तो ऐसे में भी न्यायिक हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है। हालांकि न्यायालय स्वतः नगरपालिकाओं के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करती परन्तु यदि स्थानीय सरकार अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन करे या नागरिकों के हितों को चोट पहुँचाए तो ऐसे में न्यायालय को यह अधिकार है कि वह नगरपालिका अधिनियम की व्याख्या करे। नगरपालिकाओं से सम्बन्धित कई विवाद निरन्तर न्यायालय में पहुँचते रहते हैं, जिनका निपटारा नहीं हो पाता और मामले लम्बित रहते हैं। ऐसे में नगरपालिकाओं का संचालन सही तरीके से हो पाना सम्भव नहीं होता।

3.2.3 नेतृत्व की समस्या

कुशल नेतृत्व स्थानीय शासन में अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि इसका उद्देश्य स्थानीय समस्याओं का समाधान होता है तथा राज्य और केन्द्र सरकार की अपेक्षा इसका सीधा सम्पर्क जनता से होता है। परन्तु प्रायः यह देखा जाता रहा है कि स्थानीय शासन की इकाइयों में अधिकतम ऐसे लोग नेतृत्वकर्ता की भूमिका में होते हैं, जो या ता वृद्ध हों, या अशिक्षित हों, या उनमें स्थानीय शासन सम्बन्धी जानकारियों का अभाव होता है। ऐसे में स्थानीय संस्थाओं का महत्व कम हो जाता है।

स्वशासन की इन इकाइयों में आरक्षण की व्यवस्था के माध्यम से भी सामाजिक सशक्तिकरण का प्रयास किया गया है जिस हेतु अनुसुचित जातियों, जनजातियों तथा महिलाओं को आरक्षण प्रदान किया गया है। परन्तु प्रायः यह भी देखा जाता है कि इन जातियों, जनजातियों और महिलाओं का नेतृत्व प्रतीकात्मक बन कर रह जाता है और इनके पीछे समाज के प्रभुत्व सम्पन्न लोगों को नेतृत्व होता है। ऐसे में सामाजिक सशक्तिकरण का उद्देश्य भी अधूरा रह जाता है और सामाजिक सुधार असम्भव हो जाता है। इसके साथ ही इन स्थानीय निकायों में धन और शक्ति का महत्व भी बढ़ता ही जा रहा है। समाज के संभ्रांत लोगों के द्वारा पैसे और बल का प्रयोग कर इन संस्थाओं पर अपना कब्जा स्थापित कर लिया जाता है और ये प्रतिनिधि अपने निहित स्वार्थ की पूर्ती में लग जाते हैं जिससे स्थानीय स्वशासन का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता और यह समाज के कुछ गिने-चुने लोगों के हितपूर्ति का साधन मात्र बन कर रह जाता है।

उपरोक्त वर्णित नेतृत्व की समस्या के कुछ मूलभूत कारण हैं जैसे- नगरीय निकायों की अपेक्षा संसद व विधान सभा की सदस्यता का अधिक लुभावना होना जिसमें शक्ति के साथ ही साथ अपेक्षाकृत अधिक सम्मान भी है। नगरीय निकायों की शक्तियों में कमी भी एक महत्वपूर्ण कराण माना जा सकता है। इसके साथ ही राजनीतिक दलों की नकारात्मक भूमिका जिसके कारण स्थानीय निकायों के चुनाव में प्रभाव, भाई-भतीजावाद, पैसा, बल प्रयोग आदि निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं। राज्य का अत्यधिक नियंत्रण भी इस समस्या का एक कारण है, क्योंकि जो योग्य नेतृत्व होती है उसे सही तरीके से कार्य नहीं करने दिया जाता इसलिए कुशल नेतृत्व की कमी होती जा रही है। गरीबी और अशिक्षा इस समस्या का जड़ कहा जा सकता है। निरन्तर बढ़ती गरीबी के कारण व्यक्ति अपने दिन प्रतिदिन की आवश्यकताओं की पूर्ती के साधन एकत्र करने के लिए अधिक चिन्तित रहता है और शिक्षा के अभाव में लोग स्थानीय स्वशासन के महत्व को समझ नहीं पाते जिसके परिणामस्वरूप वे इन निकायों में कोई विशेष रूचि नहीं लेते।

3.2.4 जन प्रतिनिधित्व तथा जन सहभागिता की समस्या

आधुनिक काल में व्यक्ति एकांकी जीवन व्यतीत कर रहा है और उसे अपने आस-पास घटित होने वाली घटनाओं का भी कोई ज्ञान नहीं होता। प्रायः यह देखा गया है कि नागरिकों में इसी वजह से राजनीतिक उदासीनता का प्रसार भी हो रहा है और वे राजनीतिक घटनाओं से दूरी बनाए रखने पर विश्वास करते हैं। इसका प्रभाव स्थानीय शासन पर भी देखने को मिलता है। स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के समक्ष यह एक संकट बन कर उभर रहा है क्योंकि यदि स्थानीय लोग ही स्थानीय शासन में प्रतिभाग नहीं करेंगे तो इसका महत्व न के बराबर रह जाएगा।

इसके अतिरिक्त भारत में सांस्कृतिक, धार्मिक, भाषाई, जातीय और नस्ली भिन्नता देखने को मिलती है। यह आवश्यक नहीं कि किसी एक स्थान पर निवास करने वाले सभी लोग एक ही धर्म, भाषा, नस्ल, संस्कृति या जाति के ही हों। ऐसे में उस स्थान के लोगों के मध्य समूह की भावना नहीं आ पाती जिस कारण वे किसी भी सामूहिक कार्य के प्रति उदासीन रहते हैं।

कुशल नेतृत्व की कमी, नागरिकों के प्रति गलत व्यवहार, गरीबी, निरक्षरता अथवा शिक्षा का अभाव, राजनीतिक चेतना का अभाव और भ्रष्टाचार के कारण भी लोग इन स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के कार्यों में रूचि नहीं लेते तथा इनसे स्वयं को पृथक मानते हैं जिसके कारण इन संस्थाओं का महत्व निरन्तर घटता जा रहा है।

3.2.5 कार्मिक प्रशासन की समस्या

कार्मिक प्रशासन की समस्या भी नगरीय निकायों के समक्ष एक बहुत बड़ी समस्या है। नगरीय निकाय मुख्तः नौकरशाही के अधीन ही रह जाते हैं, क्योंकि इनमें कार्मिकों की नियुक्ति राज्य सरकार में कार्य कर रहे नौकरशाहों तथा राज्य सरकार द्वारा मनोनीत विशेषज्ञों के द्वारा की जाती है। कार्मिकों की नियुक्ति जनता से जुड़े लोगों के बीच में से नहीं किया जाता बल्कि राजनीतिक पहुँच और प्रभाव वाले लोगों को ही नियुक्त किया जाता है। ऐसे में इन कार्मिकों से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि ये स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को सशक्त बनाने में सफल हो सकेंगे। इसके अतिरिक्त इन कार्मिकों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था भी दुरूस्त नहीं है क्योंकि प्रशिक्षण के महत्व को ध्यान में रखते हुए कई राज्यों के द्वारा प्रशिक्षण केन्द्रों और संस्थाओं का निर्माण तो कर दिया गया, परन्तु इनके प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। प्रशिक्षण की कमी के कारण ये कार्मिक स्थानीय स्वशासन के कार्यों और दायित्वों को भी भली-भाँति नहीं समझ पाते, जिसके कारण स्थानीय निकाय अपने कार्यों का सम्पादन नहीं कर पाते। समय-समय पर भ्रष्टाचार के कई मामले भी प्रकाश में आए हैं, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्थानीय निकायों में कार्यरत कर्मचारियों में भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति बढ़ी है। अतः यह कहा जा सकता है कि कार्मिक प्रशासन सुदृढ़ किए बिना नगरीय निकायों को सुदृढ़ नहीं किया जा सकता, क्योंकि इन निकायों में कार्य कर रहे कार्मिकों पर ही दायित्वों के निर्वाह की जिम्मेदारी होती है। ये स्थानीय शासन के कार्यपालक के रूप में कार्य करते हैं। यदि कार्यपालिका ही सही से कार्य न करे तो सभी कानून और सभी कार्यक्रम केवल कागज़ी ही बन कर रह जाते हैं।

3.2.6 राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप तथा राजनीतीकरण की समस्या

सिद्वान्ततः नगरपालिका तथा नगरीय स्वशासन की इकाइयों में राजनीतिक दलों की भूमिका पर रोक है, क्योंकि राजनीतिक दलों का स्थानीय शासन में कोई भूमिका नहीं है। स्थानीय शासन का उद्देश्य स्थानीय समस्याओं का

स्थानीय समाधान करना है। परन्तु प्रायः यह देखा गया है कि स्थानीय शासन में राजनीतिक दलों की भूमिका स्पष्ट दिखाई देती है। राजनीतिक दल किसी व्यक्ति विशेष को अपने दल के प्रतिनिधि के रूप में न केवल सहयोग करते हैं परन्तु उनका प्रचार भी करते हैं। एक ही व्यक्ति किसी राजनीतिक दल के सांसद या विधायक के प्रत्याशी के रूप में भी खड़ा होता है और न जीत पाने पर वह स्थानीय शासन में चुने जाने हेतु प्रत्याशी बन जाता है। राजनीतिक दलों की भूमिका को स्थानीय शासन में इसलिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता, क्योंकि स्थानीय स्तर पर विचारधार का कोई महत्व नहीं होता। स्थानीय शासन के सदस्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे राजनीतिक विचारधाराओं को शासन में शामिल न करें बल्कि समस्याओं के समाधान पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। परन्तु राजनीतिक दलों के द्वारा अपना जनाधार तैयार करने के उद्देश्य से अनावश्यक रूप से स्थानीय निकायों के चुनाव में बढ़-चढ़कर भागीदारी करने के कई प्रमाण हैं। इससे स्थानीय शासन समस्याओं का समाधान नहीं, बल्कि राजनीतिक दलों की हार और जीत, को अपना मुख्य उद्देश्य मान लेती है, जिससे राज्य सरकार और स्थानीय शासन के मध्य सहयोग और सामंजस्य बिगड़ता है।

3.3 नगरीय शासन सम्बन्धी सुधार

नगरीय शासन के समक्ष चुनौतियों का अध्ययन करने के पश्चात अब हम नगरीय शासन में आवश्यक सुधारों की चर्चा करेंगे। जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि स्वशासन की इकाइयाँ लोकतंत्र की रीढ़ मानी जाती हैं। लोकतंत्र के सफल संचालन के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को सबल और सशक्त बनाया जाए। परन्तु यह स्वशासन की इकाइयाँ दिन-प्रतिदिन नई-नई चुनौतियों का सामना करती हैं और वर्तमान में इनकी दशा और भी दयनीय होती जा रहीं है जिनके कारणों को हमने इस इकाई के उपरोक्त बिन्दुओं में देखा। नगरीय निकायों के कार्य जैसे-जैसे बढ़ते जा रहे हैं, वैसे-वैसे इनके समक्ष नई चुनौतियाँ भी उभर रहीं है। अतः इकाई के इस भाग में हम नगरीय शासन सम्बन्धी सुधारों का अध्ययन करेंगे, जिससे इन्हें और भी सशक्त किया जा सके और इनकी दशा में सुधार लाया जा सके।

नगरीय शासन में आवश्यक सुधारों को हम निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते हैं-

3.3.1 वित्तीय सुधार

वित्तीय समस्याओं को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि वित्तीय मामलों में नगरीय शासन में क्रांतिकारी परिवर्तन और सुधार की आवश्यकता है। नगरीय शासन की इकाइयों के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती इनके आय से सम्बन्धित है। इन निकायों के आय के साधन बहुत की सीमित हैं जिनके कारण इनके व्यय को इनके आय के द्वारा

पूरा किया जाना सम्भव नहीं हो पाता। आवश्यकता इस बात की है कि इन निकायों के आय के स्रोतों में बढ़ोत्तरी की जाए जिससे यह निकाय अपने व्यय को पूरा कर सकें और राज्य सरकार पर इनकी निर्भरता को कम किया जा सके। आय में वृद्धि के लिए जिस प्रकार आय के स्रोतों में वृद्धि की आवश्यकता है, ठीक उसी प्रकार आय के स्रोतों के निर्धारण में भी नगरीय निकायों को राज्य सरकारों पर निर्भर रहना पड़ता है जिसके कारण यह निकाय स्वयं यह निश्चय नहीं कर पाते कि इन्हें कितने कर लगाने हैं और कर की दरें क्या होंगी। अतः आय में वृद्धि के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि इनके स्रोतों का निर्धारण करने हेतु इन निकायों को स्वतंत्र छोड़ दिया जाना चाहिए। प्रायः आकस्मिकता के समय या किसी अतिरिक्त कार्य को करने के लिए इन निकायों को राज्य सरकार द्वारा दिए गए वित्तीय सहायता/अनुदान पर भी निर्भर होना पड़ता है। परन्तु राज्य सरकार इन निकायों को वित्तीय अनुदान देने के लिए बाध्य नहीं है, जिससे कभी-कभी इन निकायों को अपने कार्यों को पूरा करने में भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त नगरीय निकायों का बजट भी पूर्णरूपेण राज्य सरकार की इच्छा और दया पर ही आधारित होता है। इनके बजट का प्रस्ताव जब तक राज्य सरकार द्वारा पारित नहीं किया जाता, तब तक इनका बजट तैयार नहीं होता, ऐसे में नियोजन से लेकर बजट तक इन निकायों को राज्य सरकारों पर निर्भर रहना पड़ता है जिसके कारण यह निकाय सफलतापूर्वक कार्य कर पाने में असमर्थ रहती हैं। अतः यह प्रयास किया जाना चाहिए कि वित्तीय मामलों में नगरीय निकायों को स्वायत्ता प्रदान की जाए और राज्य के नियंत्रण को कम करने का प्रयास किया जाए।

3.3.2 राज्य के नियंत्रण में सुधार

नगरीय शासन के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती स्वायत्ता की है। स्वयत्ता के अभाव में इन निकायों का विकास और कार्य दोनों ही बाधित होता है। संविधान में 74वें संशोधन के उपरान्त दी गई व्यवस्था में इन निकायों पर राज्य का पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर दिया गया है। नगरीय शासन पर राज्य का वित्तीय, प्रशासनिक, विधायी और न्यायिक नियंत्रण होता है। हालांकि केन्द्र के हस्तक्षेप से इन निकायों को पूणतः मुक्त कर दिया गया है, परन्तु कई ऐसे प्रावधान कर दिए गए हैं, जिससे इन निकायों की स्वयत्ता पूणतयः समाप्त हो गई है। यदि वित्तीय प्रबन्ध की बात करें तो जैसा की पूर्व में ही चर्चा की गई है कि नगरीय शासन को आय के स्रोत, व्यय, बजट तथा लेखा परीक्षण आदि के सन्दर्भ में राज्य सरकारों पर आश्रित कर दिया गया है। संविधान में दी गई व्यवस्था का उद्देश्य केवल इन निकायों को राज्य सरकार के अधीन रखना मात्र नहीं था, अपितुः राज्यों को अपनी परिस्थिति के अनुकूल व्यवस्था तैयार करने तथा स्थानीय निकायों में सुधार और सुशासन लाने हेतु आवश्यक स्वतंत्रता प्रदान करना भी था। परन्तु प्रायः

यह देखा गया है कि राज्य सरकारों ने इन स्थानीय निकायों को अपने हाथ की कटपुतली बना दिया और इन पर अपना पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर लिया।

वित्तीय नियंत्रण के विषय में प्रथम बिन्दु में चर्चा की जा चुकी है। जहाँ तक प्रशासनिक नियंत्रण का प्रश्न है, यह नगरीय निकायों के लिए एक बड़ी समस्या बनी हुई है। यह निकाय प्रशासनिक रूप से राज्य सरकारों पर ही निर्भर करते हैं। चाहे कार्मिकों की नियुक्ति का प्रश्न हो, या उनके स्थानांतरण और पदोन्नती का, ये निकाय राज्य सरकार पर ही आश्रित होते हैं। इन्हें प्रशासनिक स्वयत्ता दिए बिना इन निकायों को सशक्त नहीं किया जा सकता।

राज्य सरकार को यह अधिकार संविधान द्वारा प्रदत्त है कि राज्य की विधायिका कानून बना कर नगरीय शासन सम्बन्धी व्यवस्था का निर्माण कर सकते हैं। 74वाँ संविधान संशोधन नगरीय शासन हेतु केवल एक विस्तृत खाका तैयार करता है, परन्तु व्यवस्था निर्माण का पूर्ण अधिकार राज्य की विधायिका कों सौंप दिया गया है। कर निर्धारण, बजट निर्धारण, आरक्षण और अन्य किसी भी व्यवस्था हेतु कानून निर्माण का अधिकार राज्य की विधायिका को सौंपा गया है। मंशा यह थी कि राज्य स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर इन निकायों हेतु कानून का निर्माण करेगी और व्यवस्था बनाएगी। परन्तु विधायी नियंत्रण के कारण नगरीय शासन का बागडोर पूरी तरह राज्य सरकार के हाथों में आ गई और कई मामलों में इसका दुर्पियोग भी किया जाता है, विशेष रूप से तब जब कि राज्य में किसी ऐसे राजनीतिक दल की सरकार हो जो कि नगरीय शासन को चलाने वाले या उसका समर्थ करने वाले राजनीतिक दल का विरोधी हो।

न्यायिक नियंत्रण को सकारात्मक माना जाता है किन्तु न्यायिक प्रक्रिया में देरी के कारण नगरीय निकायों से जुड़े कई मामलों में अत्यंन्त ही विलम्ब होता है। अतः यह प्रयास किया जाना चाहिए कि न्यायालय में नगरीय निकायों से जुड़े मामलों के ससमय निस्तारण हेतु अलग से एक कोर्ट की व्यवस्था की जाए।

3.3.3 नेतृत्व में सुधार

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से लेकर वर्तमान तक भारत में केन्द्र व राज्य के स्तर पर तो सबल नेतृत्व देखने को मिलता है, परन्तु स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के समक्ष सबल और कुशल नेतृत्व का अभाव रहा है। स्थानीय शासन को संवैधानिक दर्जा प्राप्त किए अभी कुछ ही दशक बीते हैं परन्तु नेतृत्व के अभाव में इसका महत्व निरन्तर गिरता जा रहा है। नेतृत्व यदि सबल और कुशल नहीं है, तो इन निकायों का संचालन भी सफलतापूर्णक कर पाना सम्भव नहीं है। समस्या यह है कि इन निकायों में स्वायत्ता के अभाव के कारण लोगों द्वारा इसकी भूमिका पर विशेष ध्यान भी नहीं दिया जाता, जसके परिणामस्वरूप नेतृत्वकर्ता स्थानीय निकायों की अपेक्षा राज्य तथा केन्द्र की राजनीति

में प्रतिभाग करने में अधिक विश्वास रखते हैं। इस समस्या का समाधान तभी सम्भव हो सकता है, जब इन निकायों को स्वायत्ता प्रदान की जाए तथा युवा पीढ़ी में राजनीतिक चेतना का प्रसार किया जाए। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात युवा पीढ़ी के अधिकतम लोग राजनीति की शुरूआत स्थानीय स्तर से करते थे। परन्तु आज स्थानीय निकायों की दुर्दशा को देखते हुए लोग इससे बचने का प्रयास करते हैं। साथ ही यह भी आवश्यक है कि स्थानीय चुनावों में बाहुबलियों और अपराधियों की भूमिका को समाप्त कर दिया जाए जिससे सही अर्थों में जनता के प्रतिनिधियों का चुनाव सम्भव हो सके।

3.3.4 जन-प्रतिनिधित्व तथा जन-सहभागिता की समस्या का समाधान

वर्तमान भारतीय राजनीति में जातिवाद, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद, भ्रष्टाचार, अपराधीकरण, वर्ग विभेद जैसी समस्याएं आम हैं। यह समस्याएं स्थानीय स्तर पर और भी गंभीर रूप धारण कर लेती हैं। जैसे-जैसे हम केन्द्र की राजनीति से स्थानीय स्तर की राजनीति की ओर बढ़ते हैं समस्याएं और भी विकट होने लगती हैं। इन सभी समस्याओं का सबसे बुरा प्रभाव जन प्रतिनिधित्व और जन सहभागिता पर पड़ा है। इस प्रकार की समस्याओं के कारण आम जनता का राजनीति पर से विश्वास उठ चुका है। वे राजनीति में प्रतिभाग करने से भी डरने लगे हैं, जिसके कारण निरन्तर मतदान का प्रतिशत घटता जा रहा है और लोग राजनीति के प्रति उदासीन होते जा रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि राजनीति से इन समस्याओं का सफाया करना होगा, तभी हम जन सहभागिता को बढ़ाने में सक्षम हो सकते हैं।

इन समस्याओं के समाधान और राजनीति में सुधार हेतु सर्वप्रथम हमें जनता के मध्य चेतना का प्रसार करना होगा और उन्हें राजनीति में प्रतिभाग करने के महत्व को समझाना होगा तथा उन्हें इस बात का एहसास कराना होगा कि मतदान का आधार योग्यता को बनाया जाए न कि जाति, धर्म, क्षेत्र और बल को। राजनीति में बुरी ताकतों के प्रवेश को रोकने के लिए हमें कुछ न्यूनतम् शैक्षणिक आहर्यता का निर्धारण करना होगा जिससे केवल वही लोग राजनीति में प्रवेश कर सकें, जो समझदार हों और जिनमें नेतृत्व करने की क्षमता हो। इस प्रकार उपरोक्त सुधारों से हम जन प्रतिनिधित्व और जन-सहभागिता में सुधार ला सकते हैं।

3.3.5 कार्मिक प्रशासन में सुधार

जैसा कि इस इकाई के भाग 15.2 में दर्शाया जा चुका है कि स्थानीय निकायों के कार्मिक प्रशासन पर राज्य का ही पूर्ण नियंत्रण होता है। केवल तृतीय व चतुर्थ श्रेणी के कार्मिकों की नियुक्ति का अधिकार इन निकायों के पास होता है, शेष सभी कार्मिकों की नियुक्ति व मनोनयन राज्य सरकार के स्तर पर होता है। ऐसे में समस्या यह होती है कि ये

कार्मिक स्थानीय निकायों के प्रति उत्तरदायी न हो कर ये सीधे राज्य सरकार के प्रति उत्तरदायी होते हैं और इनके पास स्थानीय निकायों के संचालन के विषय में जानकारी का भी अभाव होता है जिससे स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के संचालन में बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अतः इस समस्या के समाधान हेतु यह व्यवस्था बनाई जानी चाहिए कि इन निकायों को अपने कार्मिकों की नियुक्ति का अधिकार सौंप देना चाहिए जिससे ये निकाय भली-भाँति अपने कार्यों का निष्पादन कर पाने में सक्षम हो सकें। राज्य सरकारों को स्थानीय शासन के लिए एक अलग से स्थानीय सेवाओं की स्थापना करनी चाहिए, ताकि इस सेवा में कार्यरत कार्मिकों की दक्षता एवं कार्यकुशलता में वृद्धि हो सकेगी, क्योंकि इसी सेवा में वे निरन्तर कार्य करेंगे जिससे उन्हें स्थानीय निकायों में कार्य करने की विशेषज्ञता भी प्राप्त होगी। इसके साथ ही उनके नियमित प्रशीक्षण की भी उचित व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे वे नवीन समस्याओं का समाधान कर पाने में सक्षम हो सकें। इन कार्मिकों पर राज्य सरकार नहीं बल्कि स्थानीय निकायों का ही पूर्ण नियंत्रण हो ना चाहिए तथा इन्हें स्थानीय निकायों के प्रति उत्तरदायी बनाया जाना चाहिए। इस प्रकार इन इकाइयों को सशक्त बनाया जा सकता है।

3.3.6 राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप तथा राजनीतीकरण की समस्या का समाधान

उपरोक्त सभी समस्याओं के साथ ही साथ स्थानीय निकायों और विशेष रूप से नगरीय निकायों में राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप भी एक बहुत बड़ी समस्या है। स्थानीय निकायों का निर्माण स्थानीय समस्याओं के समाधान के उद्देश्य से किया गया था जिसमें राजनीतिक दलों की कोई भूमिका नहीं होनी चाहिए। परन्तु प्रायः यह देखा गया है कि स्थानीय निकायों के चुनाव में प्रतिभाग करने वाले अधिकतम् नेता किसी न किसी राजनीतिक दल से जुड़े होते हैं, जिसके कारण स्थानीय स्तर पर भी राजनीति के वही दाँव-पेंच खेले जाने लगते हैं जैसा कि राज्य या केन्द्र की राजनीति में देखा जा सकता है। राजनीतिक दलों के अनावश्यक हस्तक्षेप के कारण 'समस्याओं का समाधान करना' परिधि में चला जाता है और 'सत्ता हासिल करना' केन्द्रीयता प्राप्त कर लेता है। यह भी किसी से छिपा नहीं है कि स्थानीय चुनावों में मार-काट और बड़े पैमाने पर राजनीतिक हत्याएं भी कर दी जाती हैं जिससे न केवल आम लोगों के मन में राजनीति के प्रति गलत धारणा विकसित होती है बल्कि लोगों का राजनीति पर से विश्वास भी खो जाता है। इस समस्या के समाधान के लिए यह सुधार अत्यंत आवश्यक है कि स्थानीय निकायों के चुनाव में राजनीतिक दलों की भूमिका को शून्य कर दिया जाए। परन्तु कई प्रयासों के बाद भी हमें इस प्रकार का अनावश्यक हस्तक्षेप देखने को मिलता है। अतः राज्य चुनाव आयोग को इस मामले को गंभीरता से संज्ञान लेते

हुए उन राजनीतिक दलों पर कड़ी कार्यवाही करनी चाहिए जो स्थानीय चुनावों में किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप करते हों।

अभ्यास प्रश्न-

1. नगरीय स्थानीय निकायों के आय का प्रमुख स्रोत क्या है?
2. नगरीय स्थानीय निकायों के नगर आयुक्त की नियुक्ति कौन करता है?
3. स्थानीय निकायों की वित्तीय स्थिति को मजबूत करने हेतु कौन सी संस्था सुझाव देती है?

3.4 सारांश

इस इकाई में यह दर्शाया गया कि किस प्रकार नगरीय स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हो जाने के उपरान्त भी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। कई ऐसी समस्याएं हैं जिनका समाधान किए बिना हम नगरीय स्वशासन की इकाइयों का सशक्त नहीं कर सकते। इन समस्याओं का केन्द्र-बिन्दु नगरीय स्वशासन के निकायों की स्वायत्ता है। जब तक संवैधानिक संशोधन अथवा राज्य सरकार द्वारा इस दिशा में सुधार नहीं किए जाएंगे, तब तक इन निकायों का सफलतापूर्वक संचालन सम्भव नहीं है। स्वायत्ता की बात की जाए तो स्वायत्ता के अंतर्गत वित्तीय, प्रशासनिक तथा विधायी स्वायत्ता महत्वपूर्ण हैं। परन्तु प्रश्न यह भी उठता है कि इन स्थानीय निकायों पर किस सीमा तक विश्वास किया जा सकता है? क्योंकि प्रायः इन निकायों में भ्रष्टाचार की शिकायतें मिलती हैं जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इन्हे पूर्ण रूप से राज्य के नियंत्रण से मुक्त करना उचित नहीं होगा। परन्तु यह भी प्रयास किया जाना चाहिए कि इन निकायों को राज्य सरकार के हाथों की कठपुतली न बना दिया जाए, जिससे कि इसका महत्व ही समाप्त हो जाए। अतः यह प्रयास होना चाहिए कि स्वायत्ता के साथ ही साथ इन पर राज्य का उचित नियंत्रण भी हो जो कि विशेष परिस्थिति में इनकी शक्तियों और अधिकारों पर अंकुश लगाने हेतु प्रयोग किया जाए। सामान्य परिस्थितियों में इन्हें स्वयं समस्यओं का समाधान करने के लिए छोड़ दिया जाए जिससे इनकी कार्यकुशलता को बढ़ावा मिलेगा और इन पर जनता का विश्वास भी सुदृढ़ हो सकेगा, क्योंकि अंततः इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि स्थानीय समस्याओं का समाधान स्थानीय स्तर पर ही किया जाना सम्भव है और यही लोकतंत्र की भावना भी है।

3.5 शब्दावली

सुदृण- सुधार या मजबुती, दायित्व- जिम्मेदारी, लेखा-जोखा- लिखित दस्तावेज, आपातकालीन परिस्थिति- संकट का समय, अनुमोदन- मान्यता या सहमति

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सम्पत्ति कर, **2.** राज्य सरकार, **3.** राज्य वित्त आयोग

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रदीप सचदेवा, लोकल गवर्नमेन्ट इन इण्डिया, डोर्लिंग किंडरश्ली (इण्डिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2011
2. जयाल, एन0जी0 और प्रताप भानू मेहता, पॉलिटिक्स इन इण्डिया, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2010
3. प्रदीप सचदेवा, डाइनेमिक्स ऑफ मुनिशिपल गर्वनमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया, किताब महल, इलाहाबाद, 1991
4. बर्थवाल,सी0पी0, स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 2010
5. जोशी, आर0पी0 और अरूणा भारद्वाज, भारत में स्थानीय प्रशासन, शील सन्स, जयपुर, 1999
6. भट्टाचार्य, मोहित, स्टेट कंट्रोल ओवर मुनिसिपल बॉडिज, इण्डियन जॉर्नल आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 22 (1976)

3.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. खन्ना, आर0 एल0, मुनिसिपल गवर्नमेन्ट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, मोहिन्द्रा कैपिटल पब्लिसर्श, चंड़ीगढ़, 1967
2. शर्मा, एस0के0 तथा वी0एन0 चावला, मुनिसिपल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डियाः सम रिफलेक्शन्स, इनटर्नेशनल बुक को0, जलंधर, 1975
3. कौशिक, एस0के0, लीडरशिप इन अर्बन गवर्नमेन्ट इन इण्डिया, किताब महल, इलाहाबाद, 1986
4. मुतालिब, एम0ए0 और एन0 उमापथि, अर्बन गवर्नमेन्ट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, रिजनल सेन्टर फॉर अर्बन एण्ड इन्वार्नमेन्टल स्टडीज, हायद्राबाद, 1981

5. चतुर्वेदी, टी0वी0, सिविक कन्सेसनेश, आई0आई0पी0ए0, नई दिल्ली, 1979

6. महेश्वरी, श्रीराम, लोकल गर्वनमेन्ट इन इण्डिया, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1984

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राज्य सरकार के नगरीय स्वशासन पर वित्तीय नियंत्रण पर प्रकाश डालिए।

2. नगरीय निकायों की स्वयत्ता के लिए सुझाव दीजिए।

3. नगरीय निकायों में नेतृत्व तथा जन सहभागिता की समस्याओं पर टिप्पणी कीजिए।

इकाई- 4 चौहतरवाँ संवैधानिक संशोधन एवं नगरीय शासन का आधुनिक परिप्रेक्ष्य

इकाई की संरचना

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 चौहतरवें संविधान संशोधन के उद्देश्य

4.3 चौहतरवें संविधान संशोधन की आवश्यकता

4.4 चौहतरवें संविधान संशोधन की विशेषताऐं

4.5 नगरीय शासन की रूपरेखा

4.6 नगरीय शासन का आधुनिक परिप्रेक्ष्य

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

सत्ता विकेन्द्रीकरण की दिशा में संविधान का 73वां और 74वां संविधान संशोधन एक महत्वपूर्ण और निर्णायक कदम है। 74वां संविधान संशोधन नगर निकायों में सत्ता विकेन्द्रीकरण का एक मजबूत आधार है। अतः इस अध्याय का उद्देश्य 74वें संविधान संशोधन की आवश्यकता और 74वें संविधान संशोधन में मौजूद उपबंधों और नियमों को स्पष्ट करना है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र के रूप में जाना जाता है। इस लोक तंत्र का सबसे रोचक महत्वपूर्ण पक्ष है सत्ता व शक्तियों का विकेन्द्रीकरण। अर्थात केन्द्र स्तर से लेकर स्थानीय स्तर पर गांव इकाई तक सत्ता व शक्ति का बंटवारा ही विकेन्द्रकरण कहलाता है।

बहुत समय पहले नीति निर्माताओं, वरिष्ठ अधिकारियों एवं कार्यक्रमों को चलाने वाले अधिकारियों तथा कार्यकर्त्ताओं द्वारा जनता के लिये योजनायें बनायी जाती थीं। इसलिए योजना को बनाने की प्रक्रिया पूर्व में उपर से नीचे की ओर थी। परन्तु यह प्रक्रिया जनता की जरूरतों को पूरी नहीं कर पाती थी, विकास गतिविधियों को चलाने

में लोगों की सहभागिता को प्रोत्साहित नहीं करती थी एवं लोगों को भी यह नहीं लगता था कि लागू की जा रही योजना अथवा कार्यक्रम उनका अपना है। इसलिए यह महसूस किया गया कि लोगों को कार्य योजनायें स्वयं बनानी चाहिए, क्योंकि उन्हें अपनी आवश्यकताओं का पता होता है कि किस प्रकार वे अपने जीवन स्तर में सुधार ला सकते हैं एवं वे अपने विकास में सहभागी बन सकते हैं। अतः यह महसूस किया गया कि लोगों के लिए योजना बनाने की प्रक्रिया अनिवार्य रूप से नीचे से उपर की ओर होनी चाहिये क्योंकि लोगों को अपनी ज़रूरतों की पहचान होती है जिससे वे योजनाओं को वरीयता क्रम निर्धारित करते हुए योजना बना सकते हैं। कार्यक्रम क्रियान्वित करने वाले कार्मिक जनता/समुदाय की योजनाओं को समेकित कर सकते हैं।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- चौहत्तरवें संविधान संशोधन की आवश्यकता एवं उसके महत्व के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- वर्तमान में नगरीय शासन का स्वरूप और उसके कार्य प्रणाली के सम्बन्ध में जान पायेंगे।

4.2 चौहतरवें संविधान संशोधन के उद्देश्य

चौहतरवें संविधान संशोधन के निम्नांकित उद्देश्य हैं-

1. देश में नगर संस्थाओं जैसे नगर निगम, नगर पालिका, नगर परिषद तथा नगर पंचायतों के अधिकारों में एकरूपता रहे।
2. नागरिक कार्यकलापों में जन प्रतिनिधियों का पूर्ण योगदान तथा राजनैतिक प्रक्रिया में निर्णय लेने का अधिकार रहे।
3. नियमित समयान्तराल में प्रादेशिक निर्वाचन आयोग के अधीन चुनाव हो सके व कोई भी निर्वाचित नगर प्रशासन छः माह से अधिक समयावधि तक भंग न रहे, जिससे कि विकास में जनप्रतिनिधियों का नीति निर्माण, नियोजन तथा क्रियान्वयन में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके।
4. समाज की कमजोर वर्गों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिये (संविधान संशोधन अधिनियम में प्राविधानित/निर्दिष्ट) प्रतिशतता के आधार पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति व महिलाओं को तथा राज्य (प्रादेशिक) विधान मण्डल के प्राविधानों के अन्तर्गत पिछड़े वर्गों को नगर प्रशासन में आरक्षण मिलें।

5. प्रत्येक प्रदेश में स्थानीय नगर निकायों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये एक राज्य (प्रादेशिक) वित्त आयोग का गठन हो जो राज्य सरकार व स्थानीय नगर निकायों के बीच वित्त हस्तान्तरण के सिद्वान्तों को परिभाषित करें। जिससे कि स्थानीय निकायों का वित्तीय आधार मजबूत बने।
6. सभी स्तरों पर पूर्ण पारदर्शिता रहे।

4.3 चौहतरवें संविधान संशोधन की आवश्यकता

पूर्व की नगरीय स्थानीय स्वशासन व्यवस्था लोकतन्त्र की मंशा के अनुरूप नहीं थी। सबसे पहली कमी इसमें यह थी कि इसका वित्तीय आधार कमजोर था। वित्तीय संसाधनों की कमी होने के कारण नगर निकायों के कार्य संचालन पर राज्य सरकार का ज्यादा से ज्यादा नियंत्रण था। जिसके कारण धीरे-धीरे नगर निकायों के द्वारा किये जाने वाले अपेक्षित कार्यों/या उन्हें सौंपे गये कार्यों में कमी होनी लगी। नगर निकायों के प्रतिनिधियों की बरखास्ती या नगर निकायों का कार्यकाल समाप्त होने पर भी समय पर चुनाव नहीं हो रहे थे। इन निकायों में कमजोर व उपेक्षित वर्गों (महिला, अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति)का प्रतिनिधित्व न के बराबर था। अतः इन कमियों को देखते हुए संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम में स्थानीय नगर निकायों की संरचना, गठन, शक्तियों, और कार्यों में अनेक परिवर्तन का प्रावधान किया गया।

4.4 चौहतरवें संविधान संशोधन की विशेषताऐं

74वें संविधान संशोधन विधेयक द्वारा संविधान में एक नया भाग- 9 क जोड़ा गया, जिसमें कुल 18 अनुच्छेद हैं और एक नयी अनुसूची 12वीं अनुसूची जोड़कर नगरीय क्षेत्र की स्थानीय संस्थाओं को संवैधानिक स्तर प्रदान किया गया।

1. 74वें संविधान संशोधन द्वारा नगर निकायों को संवैधानिक मान्यता और संवैधानिक स्तर प्रदान किया गया।
2. इस संविधान संशोधन द्वारा नगर निकायों की देश भर में त्री-स्तरीय व्यवस्था की गयी- नगर पंचायत, नगर परिषद और नगर निगम।
3. इस अधिनियम में प्रत्यक्ष चुनावों के द्वारा नगर निकायों के गठन की व्यवस्था की गयी है।
4. यह अधिनियम वार्ड समितियों के बठन की व्यवस्था करता है। जिसमें 03 लाख या अससे अधिक की जनसंख्या वाले नगर निकायों में एक या अधिक वार्डों के लिए वार्ड समितियों का गठन किया जायेगा।

5. इस अधिनियम के माध्यम से प्रत्येक नगर निकायों में अनुसूचित जाति व जनजातियों के लिए सीटों में आरक्षण की व्यवस्था की गयी है। प्रत्येक क्षेत्र में सीटों का यह आरक्षण उस नगर निकाय के क्षेत्र में इन वर्गों की जनसंख्या के अनुपात में होगा तथा आरक्षित की गयी सीटों पर बारी-बारी से आवर्तन किया जायेगा।
6. इस अधिनियम के द्वारा नगर निकायों का कार्यकाल 05 वर्ष का होगा। नगर निकायों का कार्यकाल उसकी पहली बैठक की तिथि से, यदि वह निर्धारित तिथि से पूर्व भंग नहीं कर दी जाती है, तो 05 वर्ष निर्धारित की गयी है। यदि निर्धारित तिथि से पूर्व नगर निकाय को भंग किया जाता है तो 06 माह के भीतर उसके चुनाव कराये जाने होंगे।

4.5 नगरीय शासन की रुपरेखा

नगरीकरण विश्व भर में तेजी से और तीसरी दुनिया में और भी तेजी से अपना पांव पसार रहा है। नगरीकरण ग्रामीण से नगरीय जीवन में रूपान्तरण की प्रक्रिया है, जब एक समाज कृषिपरक अर्थव्यवस्था से औद्योगिक अर्थव्यवस्था को अपनाता है तथा एक छोटे समरूप समाज से एक विशाल विविधतापूर्ण समाज में परिणत होता है। सरल शब्दों में नगरीकरण को एक सामाजिक-आर्थिक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके द्वारा एक क्षेत्र की अधिकांश जनसंख्या नगरों तथा कस्बों में संकेन्द्रित हो जाती है। भारत में नगरीय क्षेत्रों की जनसंख्या, ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में दोगुनी गति से बढ़ रही है। नगरों में जनसंख्या के इस बढ़ते दबाव के कारण अधिक सेवाओं, सुविधाओं व जीवन यापन के लिए बेहतर वातावरण की आवश्यकता पड़ रही है।

शहरी क्षेत्रों में अवस्थापना तथा मूलभूत नागरिक सुविधाओं पर अपेक्षाकृत अधिक दबाव होने के कारण कालान्तर से ही शहरों के सुनियोजित विकास की आवश्यकता का अनुभव किया जाता रहा है। इसी क्रम में नगरीय क्षेत्रों को नगरीय स्थानीय निकाय के एक स्वतंत्र इकाई के रूप में अंगीकार किया गया है। विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया विगत दो दशकों में विश्व के विभिन्न हिस्सों की विशिष्टता रही है, चाहे वह केंद्रीय/पूर्वी यूरोप एवं लैटिन अमेरिकी देशों के मामले में स्थानीय स्तरों की ओर से आवाजों के परिणामस्वरूप या अफ्रीका तथा दक्षिण एशिया विशेषकर केन्या, युगांडा एवं भारत के मामलों में राष्ट्रीय सुधार तथा पुनर्निमार्ण की प्रक्रिया की प्रतिक्रिया में हो; या दाता एजेंसियों की ओर से बढ़े हुए दबाव के कारण हो। एक अन्य महत्वपूर्ण कारक वैश्वीकरण है जो स्थानीय शासन के नए आयामों को उजागर कर रहा है, जिसमें अपने सम्बन्धित क्षेत्रों में शहर लोगों सामानों तथा सूचनाओं के वैश्विक प्रवाह के लिए नोडल बिंदु बन रहे हैं। इस कारकों के प्रकाश में आर्थिक तथा सामाजिक मुद्दों को

सुलझाने के लिए नगर की सरकारों में महत्वपूर्ण स्तर उभर रहे हैं (या सम्भवतः उभर रहे हैं)। भारत में 'शहरी स्थानीय शासन' का अर्थ शहरी क्षेत्र के लोगों द्वारा चुने प्रतिनिधियों से बनी सरकार से है। शहरी स्थानीय शासन का अधिकार क्षेत्र उन निर्दिष्ट शहरी क्षेत्रों तक सीमित है, जिसे राज्य सरकार द्वारा इस उद्देश्य के लिए निर्धारित किया गया है । भारत में विभिन्न प्रकार के शहरी स्थानीय शासन हैं- नगरपालिका परिषद्, नगरपालिका, अधिसूचित क्षेत्र समिति, शहरी क्षेत्र समिति, छावनी बोर्ड, शहरी क्षेत्र समिति, पत्तन न्यास और विशेष उद्देश्य के लिए गठित एजेंसी। 22 दिसम्बर, 1992 को लोकसभा द्वारा तथा 23 दिसम्बर, 1992 को राज्यसभा द्वारा पारित और 20 अप्रैल, 1993 को राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत एवं 1 जून, 1993 से प्रवर्तित 74वें संविधान संशोधन द्वारा स्थानीय नगरीय शासन के सम्बन्ध में संविधान में भाग- 9- क नये अनुच्छेदों (243 त से 243 य छ तक) एवं 12वीं अनुसूची जोड़कर संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है।

भारत की तरह बड़ी आबादी एवं क्षेत्रीय विभिन्नता वाले विशाल देश में लोकतंत्र को सार्थक एवं कल्याणोन्मुख बनाने के लिए विकेन्द्रीकरण अन्तर्निहित अनिवार्यता है। नगरीय निकाय ऐसी संस्थाऐं हैं, जिनकी निश्चित सेवाएं एवं नियामक कार्य हैं। नगरीय स्थानीय निकायों के क्षेत्र में निवास करने वाली जनसंख्या को मूलभूत नागरिक सुविधाएं यथा- स्वच्छ पेयजलापूर्ति, सड़कें/गलियां, जल निकासी, सफाई व्यवस्था, कूड़ा निस्तारण, सीवरेज व्यवस्था, मार्ग प्रकाश, पार्क, स्वच्छ पर्यावरण, आदि उपलब्ध कराया जाना, इन शहरी स्थानीय निकायों का कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व है। स्थानीय शासन संस्थाओं का स्वरुप एक उद्देशीय न होकर सामान्य उद्देशीय होता है। यह बहुआयामी संस्थान है जो कई प्रकार के कार्यों को करता है। जैसे- स्थास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, सफाई, जल आपूर्ति आदि। इन जिम्मेदारियों को पूर्ण करने के लिए इन्हे विविध कार्य आबंटित किये गए हैं। नगरीय निकाय संस्थाओं को 18 विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है।

समाज कल्याण तथा आर्थिक विकास के उद्देश्य से गठित लोकतांत्रिक ढ़ाँचे से लोगों की कई प्रकार की आशाएं होती हैं। बढ़ती आशाएं प्रशासन में लोगों की भागीदारी के लिए यथार्थवादी एवं प्रभावशाली नीतियों की मांग करती हैं। राजनैतिक स्वतंत्रता तथा नीतिगत उद्-घोषणाओं से उठी चुनौतियों और आकांक्षाओं के लिए अंतर्मन से किए जाने वाले प्रयासों की आवश्यकता है।

4.6 नगरीय शासन का आधुनिक परिप्रेक्ष्य

लार्ड ब्राइस ने कहा है कि "स्थानीय स्वशासन प्रजातंत्र के लिए प्रशिक्षण की आधारशिला है जिसके अभाव में प्रजातंत्र की सफलता की आशा नहीं की जा सकती।" जनतंत्र का आधार, राजनीतिक एवं नागरिक प्रशिक्षण,

उदार दृष्टिकोण एवं नागरिक गुणों का विकास, प्रशासनिक कार्यकुशलता, केन्द्र एवं राज्य शासन के कार्यभार में कमी, सरकारी व्ययों में मितव्ययिता,केन्द्रीकरण के दोषों से मुक्ति ,विकास योजनाओं की सफलता में सहायक, भष्टाचार की कम सम्भावना, विभिन्नताओं का पोषक आदि ऐसे महत्वपूर्ण कारण हैं जो स्थानीय स्वशासन के महत्व को इंगित करते हैं। नगर विकास जैसे मुद्दों पर सरकार, निकाय, गैर-सरकारी संगठन एवं नागरिकों के परस्पर समन्वयन व सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता है। आधुनिक युग को नागरिकों की उभरती हुई जन आकांक्षाओं का युग माना जाता है। वर्तमान समय में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के सहज परिणाम स्वरुप शासन सम्बन्धी कार्यों का अत्यधिक विस्तार हुआ है, जिसे प्रशासन सकारात्मक रूप दे सकता है।

भारत में 'टॉप हेवी कैरेक्टर' क्षेत्र ने असमानता तथा पर्यावरण से जुड़ी समस्याओं तथा भारतीय शहरीकरण के विकास को प्रोत्साहित किया गया है। आर्थिक दृष्टि से शहरीकरण का तृतीयक क्षेत्र से गहरा सम्बन्ध है। 'ट्रिकल-डाउन' पद्धति से शहरीकरण तथा सम्बन्धित अवसंरचना तथा सेवाओं के लाभों को फैलाने में सफलता नहीं मिली है। इसके कारण शहरी क्षेत्रीय असमानता अपेक्षाकृत अधिक तीव्रता से बढ़ी है। हाल की शहरीकरण पद्धति परिवहन-कॉरिडोर आधारित शहरीकरण को बढावा देता है। इस प्रकार संतुलित क्षेत्रीय विकास को बढावा देने के लिए शहरी केंद्रों का चार-सतही क्रम प्रस्तावित किया गया है।

नगरीकरण विकास प्रक्रिया का ही एक अंग है। ग्रामीण क्षेत्रों जनसंख्या का नगरीय क्षेत्रों में परिवर्तन आर्थिक विकास की दृढ़ कसौटी है। पिछड़े हुए स्थिर समाज में नगरीकरण की प्रक्रिया वस्तुतः धीमी होती है, क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के लिए रोजगार उपलब्ध कराने में नगर सक्षम नहीं होते। किन्तु फिर भी ग्रामीण जनसंख्या का शहरों की तरफ तेजी से पलायन रोज़गार पाने के उद्देश्य से ही होती है और इस स्थिति में यह पलायन तब और तेज हो जाता है जब पूँजी गहन उद्योगों की बजाय श्रम गहन उद्योगों पर बल दिया जाता है। इसके विपरीत नगरीकरण की गति धीमी तब होती है जब कुल जलसंश्या के अनुपात में नगरीय जनसंख्या बहुत ही उच्च स्तर पर पहुँच जाती है। यह स्थिति अभी कुल मिलाकर 30 देशों में आई है, जो विकसित औद्योगिक देश कहलाते हैं। बढ़ते शहरीकारण का परिणाम देश के असंतुलित विकास के रूप में सामने आ रहा है। बढ़ते शहरीकरण के साथ तीसरी समस्या ग्रामीण इलाकों में कार्यशील आबादी में आ रही कमी और खेती-बाड़ी की उपेक्षा के रूप में पैदा हुई है।

नगरीय क्षेत्रों में स्थानीय नगरीय निकायों की स्थापना से यह अपेक्षा की गयी कि स्थानीय स्वशासन के लिये स्थापित ये संवैधानिक संस्थान स्थानीय स्तर पर आर्थिक विकास को बढ़ाते हुये सामाजिक न्याय को भी लाने की

जिम्मेदारी निभायेंगे। स्थानीय नगरीय निकायों की स्थापना के बाद से ही इनकी क्षमताओं के विकास का मुद्दा निरंतर एक चुनौती के रूप में सामने खड़ा है। क्षमता विकास के इस प्रश्न को मानवीय संसाधनों के साथ ही साथ संस्थागत स्तर पर भी देखने और समझने की जरूरत है। वास्तव में क्षमताओं के अभाव के कारण ही स्थानीय नगरीय निकायों में कार्य, कार्यकर्ता और कोष का सही तरीके से हस्तानांतरण नहीं किया जा सका है। स्थानीय नगरीय निकायों जैसी संवैधानिक संस्थाओं के जन्म लेने के बाद वयस्क हो जाने के बाद भी इनकी क्षमता कैसे बढ़ायी जाय, इसका चिन्तन केन्द्र या राज्य सरकारों के द्वारा ही किया जा रहा है। स्थानीय स्वशासन की ईकाइयॉ खुद भी अपने आप को सशक्त बनाने की बहुत इच्छुक नजर नहीं आती हैं।

देश की आबादी के दो रुझान स्पष्ट हैं। पहला यह कि शहरों की आबादी बढ़ रही है और दूसरा यह कि युवाओं की आबादी बढ़ रही है। दूसरे रुझान का सम्बन्ध भी शहरीकरण से ही है, क्योंकि युवा को अंतत: शहरों की ओर ही आना है। आजादी के बाद लगातार शहरीकरण बढ़ रहा है। गांवों से आबादी का बड़े पैमाने पर पलायन हो रहा है। 1991 की जनगणना के वक्त यह 27 प्रतिशत था तो 2001 में 29 प्रतिशत हो गया था। जो भी देश अमीर हैं, विकसित हैं, वहाँ शहरी आबादी का प्रतिशत 70-90 प्रतिशत तक है। देश के आर्थिक विकास में शहरों का योगदान भी ज्यादा होता है। पश्चिम की तुलना में हमारे यहाँ आज भी शहरी आबादी 30-35 प्रतिशत ही है। हमें वह बहुत ज्यादा इसलिए दिखाई पड़ती है, क्योंकि हमारे यहाँ शहरीकरण तो हो गया, लेकिन उस अनुपात में सुविधाएं नहीं बढ़ीं, आधारभूत संरचना का विकास नहीं हुआ। बिजली-पानी, स्वच्छता, परिवहन और सड़कों की उचित व्यवस्था नहीं है। वैश्वीकरण के साथ शहरीकरण तो बढ़ना ही है, साथ ही गांवों से आबादी का पलायन भी बढ़ना ही है। यह रफ्तार और बढ़ेगी। इसलिए सबसे बड़ी समस्या यह है कि आने वाले समय में हमारी सरकार को बुनियादी संरचना खड़ी करनी होगी, जनता को मूलभूत सुविधाएं देनी होंगी। चूँकि शहरीकरण का सबसे ज्यादा लाभ निजी क्षेत्र को मिलेगा, इसलिए उसकी भूमिका भी महत्त्वपूर्ण होगी। यदि बुनियादी सुविधाओं के मोर्चे पर हम कामयाब हो गए तो हम सतत आबादी विकास को प्राप्त कर लेंगे। 1901 से 2001 की अवधि में यहाँ कुल शहरों की संख्या 1827 से बढ़कर 5161 (वर्ष 2001 में) हो गई। शहर तो बढ़े परन्तु यह बात भी साफ तौर पर उभरकर आती है भारत में छोटे शहरों से ज्यादा बड़े शहरों का विकास हुआ है। वर्ष 1901 में एक लाख की जनसंख्या वाले केवल 24 शहर थे जो वर्ष 2001 में बढ़कर 393 हो गये जबकि 5 से 10 हजार की जनसंख्या वाले शहरों की संख्या 744 से बढ़कर महज 888 हो पाई। यानी संसाधन और विकास बड़े नगरों के आसपास केन्द्रित हुआ। बड़े शहरों में रहने वाली जनसंख्या का प्रतिशत 26 से बढ़कर अब 68 हो गया है और छोटे शहरों में आबादी का

अनुपात कम हुआ है। शहरीकरण का यह परिदृश्य बताता है कि कहीं न कहीं गांवों की बदहाली ने इसके लिये उर्वरक का काम किया है। वर्ष 1921 में भारत में 685665 गाँव थे और गांधी जी कहते थे कि हमारा देश 07 लाख गणराज्यों का देश है और वर्ष 2001 की जनगणना बताती है कि अब महज 593731 गाँव ही देश में आबाद हैं। कहां गये ये 92 हजार गाँव मतलब यह है 28 गाँवों की कीमत पर एक शहर खड़ा हुआ। मौजूदा दशक में ही 7863 गाँव शहरों की सीमा में शामिल कर दिए गए। आज भारत के शहरों में लगभग 34 करोड़ लोग रहते हैं और यह संख्या अगले 20 वर्षों में बढ़कर 59 करोड़ हो जायेगी। आज शहरी जीवन के 2 घंटे हर रोज ट्रैफिक के नाम होते हैं। वर्तमान स्थिति में भारत में एक किलोमीटर सड़क पर 170 वाहनों का घनत्व है, जो सड़कों पर जाम की स्थिति बनाता है। अगले 20 वर्षों में जाम का समय दो गुना हो जाने वाला है, क्योंकि निजी परिवहन साधनों को भारत में ज्यादा विस्तार दिया गया। जिससे सार्वजनिक परिवहन सेवायें बेहद कमजोर हो गई। आज 70 प्रतिशत शहरी परिवहन निजी साधनों से होता है जिसे आधा करने की जरूरत है। कार्बन उत्सर्जन, दुर्घटनायें और तनाव भी यातायात की अव्यवस्था के बड़े परिणाम है। इस तथ्य को महज नकारात्मक कहकर हमें नकारना नहीं चाहिए कि देश-समाज ज्वालामुखी सरीखे विस्फोट की सम्भावना के मुहाने पर आ बैठा है। भारत के चार राज्यों (बिहार, उत्तरप्रदेश, पश्चिम बंगाल और उत्तराखण्ड) के 36 शहर हर रोज डेढ़ अरब लीटर अपशिष्ट मैला पानी बिना उपचार के गंगा के बेसिन में छोड़ते हैं। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण मण्डल की शहरों में पानी की स्थिति पर जारी ताजा रिपोर्ट के मुताबिक भारत के 908 शहर हर रोज 3.80 अरब लीटर मैला पानी पैदा करते हैं और इसमें से 2.80 अरब लीटर मैला अपशिष्ट बिना उपचार के शेष गंदा पानी खुले मैदानों और नदियों (जैसे गंगा, नर्मदा, शिप्रा, चंबल आदि) में मिलने के लिये छोड़ दिया जाता है। 113 शहरों द्वारा गंगा और उसकी सहायक नदियों के क्षेत्र में हर रोज डेढ़ अरब लीटर अपशिष्ट गंदा पानी छोड़ा जाता है। ऐसे में बेतरतीब ढंगी शहरों का यह देश किसी भी ऐसी महामारी के चपेट में आ सकता है, जिसके लिये हम खुद जिम्मेदार होंगे। हम उस स्थिति में कभी नहीं आ सकेंगे जब शहरों द्वारा पैदा किये गये अरबों टन कचरे का उपचार करके उसे ठिकाने लगा सकें। प्रोफेसर सुरेश तेंदुलकर समिति की रिपोर्ट के मुताबिक 25.7 प्रतिशत शहरी गरीबी की रेखा के नीचे हैं। ये एक व्यक्ति पर 19 रूपये प्रतिदिन से भी कम खर्च करके जीवनयापन करते हैं। आज जबकि शहरों में अपनी छत का सुख हासिल करना बुनियादी जरूरत है, इन परिवारों के लिए आवास का आधार मिलना एक दूर का ख्वाब है। यही कमी सड़क और रेल यातायात के मामले में भी जमकर बढ़ने वाली है। आवास व्यवस्था के बारे में उभरकर आये निष्कर्ष और

ज्यादा गंभीर हैं। आज जरूरत 3 करोड़ घरों की है पर केवल 50 लाख घर ही बन पायेंगे। यह अन्तर 2030 के शहरों में खूब बढ़ने वाला है। तब 5 करोड़ घर चाहिये होंगे और बन पायेंगे केवल 1.20 करोड़।

'दक्षिण-पूर्व एशिया' की कुल आबादी का 34 प्रतिशत भाग शहरी है। यह आबादी तेजी से बढ़ रही है और उसका बहुत गहरा दबाव सभी सेवाओं पर पड़ रहा है। इनमें परिवहन-व्यवस्था, जलापूर्ति, स्वच्छता और बिजली प्रमुख हैं। यू.एन. हैबिटैट के अनुसार, दक्षिण-एशिया में 40 प्रतिशत से अधिक आबादी मलिन बस्तियों में रहती है। अक्सर मजदूर कार्यस्थल के आस-पास या मलिन बस्ती के बीच में रहते हैं, उदाहरण के लिए सड़कों के किनारे या भवन-निर्माण स्थल के पास। सुरक्षित पेयजल तथा स्वच्छता-सेवाओं के उपलब्ध न हो पाने तथा आस-पास के परिवहन, कारखानों और औद्योगिक परिसरों से पैदा होने वाले प्रदूषण मजदूरों के स्वास्थ्य पर बुरा असर डालते हैं। इसका प्रतिकूल असर पड़ता है आधारभूत पर्यावरण-सम्बन्धी सेवाओं-जैसे स्वच्छ हवा, जल और मिटटी पर। ठोस कचरे के खराब प्रबन्धन से रिसाव के कारण भू-जल और सतह जल विषाक्त हो रहा है और कचरे को अनियन्त्रित तरीके से जलाए जाने के कारण वायु प्रदूषण बढ़ रहा है। ठोस कचरे की प्रोसेसिंग और निपटान की अवैज्ञानिक पद्धतियों के कारण पर्यावरण के जोखिम बढ़ रहे हैं।

शहरी ढाँचे से सम्बन्धित उच्च अधिकार प्राप्त विशेषज्ञ समिति के अनुमानों के अनुसार भारत के शहरी पर्यावरण सरोकारों के प्रबन्धन में वित्त व्यवस्था अभी भी एक बड़ी बांधा है। किन्तु, उम्मीद बनी हुई है। अनेक रचनात्मक स्थितियाँ भी सामने आई है, जैसे ठोस कचरे और स्वच्छता सुविधाओं के बेहतर प्रबन्धन में निजी क्षेत्र की भागीदारी इसका एक उदाहरण है।

शहरीकरण विकास एक सूचक होते हुए भी कई तरह की समस्याओं का जन्मदाता है। शहरी विकास को सही रास्ते पर लाने के लिए अमीरों और गरीबों के बीच जो टकराव की स्थिति है, उसकी जगह सहयोग को प्रतिस्थापित करना होगा। संपन्न वर्ग अनेक स्थानों पर झुग्गी-झोंपड़ियों और गंदी बस्तियों में रहने वाल लोगों के प्रति सहानुभूति और संवेदना से हीन हो जाते हैं। किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि नगरों का अधिकांश निर्माण कार्य इन्हीं वर्गो के परिश्रम एवं त्याग से हुआ है। निर्धन वर्ग के इस आन्दोलन को संपन्न वर्ग के लोगों को स्वीकार करना चाहिए। परिणामतः परस्पर सहयोग की जो भावना उत्पन्न होगी, उससे नगरों का जो विकास होगा वह संतुलित तथा उचित होगा। शहरीकरण को लेकर सरकार का नजरिया यह है कि इस पर राजनीति करने के बजाय इसे मौके के रूप में देखा जाना चाहिए। उसके मुताबिक शहरों में गरीबी दूर करने की ताकत होती है और हमें इस ताकत को और आगे बढ़ाना चाहिए ताकि आर्थिक समृद्धि का स्वत: प्रसार हो। सुख-सुविधाओं की मौजूदगी के चलते शहर सदा से

मनुष्य के आकर्षण के केन्द्र रहे हैं। आज की तारीख में तो ये विकास के इंजन बन चुके हैं। दरअसल, ग्रामीण क्षेत्रों के मुकाबले शहरों में लोगों की ज्यादा आमदनी और वस्तुओं का अधिक उपभोग जहाँ 'पुल फैक्टर' का काम करता है वहीं गांवों की गरीबी-बेरोजगारी 'पुश फैक्टर' का। ये दोनों मिल कर शहरों में भीड़ बढ़ा रहे हैं। चूंकि शहरों में लोगों की आमदनी ज्यादा होती है इसलिए वस्तुओं और सेवाओं की खपत बढ़ती है जिसका नतीजा अंतत: कम्पनियों की अधिक कमाई और देश के जीडीपी की तेज रफ्तार के रूप में सामने आता है। आंकड़ों के मुताबिक भारत के सौ सबसे बड़े शहरों में देश की महज सोलह फीसद आबादी निवास करती है, लेकिन राष्ट्रीय आय में इन शहरों का हिस्सा 43 प्रतिशत है। इसीलिए कई विशेषज्ञ देश में शहरीकरण को रफ्तार देने की वकालत करते रहते हैं। वे चीन का हवाला देते हैं जहाँ की आधी आबादी शहरों में रहती है, जबकि भारत में यह अनुपात महज एक-तिहाई है। उनका तर्क है कि यदि भारत को मांग आधारित विकास दर को बढ़ावा देना है तो उसे तेज शहरीकरण की नीति अपनानी चाहिए। भले ही शहरों को विकास का 'ड्राइवर' माना जाता हो लेकिन शहरीकरण के स्तर की दृष्टि से भारतीय शहर नकारात्मक तस्वीर पेश करते हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में नगरीय शासन की अवसंरचना का विकास अत्यावश्यक है ,साथ हीं कर्मचारियों की संख्या में बढ़ोत्तरी समय की मांग है। विशेषज्ञ सुविधाओं की आवश्यकता, कुशल प्रबन्धन, नवीन तकनीक के साथ सुविधाओं का विकास, कुशल कर्मचारियों की व्यवस्था एवं कारगर वित्तीय प्रबन्ध न आदि ऐसे आवश्यक तथ्य है जो नगरीय शासन को बदलते परिदृश्य में कारगर सिद्ध कर सकते हैं । नगरों में जनसंख्या के इस बढ़ते दबाव के कारण अधिक सेवाओं, सुविधाओं व जीवन यापन के लिए बेहतर वातावरण की आवश्यकता पड़ रही है।

अभ्यास प्रश्न-

1. नगर निकायों का कार्यकाल कितने वर्षों का होता है?
2. नगर निकायों के आय के स्रोत नहीं हैं?
3. किस संविधान संशोधन के तहत् नगर प्रशासन को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है?
4. कितनी जनसंख्या पर नगर निगम का गठन होता है?
5. कितनी जनसंख्या पर नगर पंचायतों का गठन होता है?

4.7 सारांश

विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था किसी न किसी रूप में प्राचीन काल से ही भारत में विद्यमान थी। राजा/महाराजाओं के समय भी सभा, परिषद, समितियां सूबे आदि के माध्यम से शासन चलाया जाता था। लोगों को उनकी जरुरतें पूरी

करने के लिए निर्णयों में हमेशा महत्वपूर्ण सहभागी माना जाता था। लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता गया लोगों की शासन व लोक विकास में भागेदारी से अलग कर दिया गया तथा उनके अपने हित व विकास के लिए बनाई जाने वाले कार्यक्रम, नीतियों पर केन्द्र सरकार या राज्य सरकार का नियंत्रण बनता गया। 1992 में सरकार के 74वें संविधान संशोधन के माध्यम से पुनः नगरीय क्षेत्रों में स्थानीय लोगों को निर्णय लेने के स्तर पर सक्रिय व प्रभावशाली सहभागिता बनाने का प्रयास किया गया है। संविधान का 74वां संशोधन में नगर निकायों- नगर पलिका, नगर निगम और नगर पंचायतों में शहरी लोगों की भागीदारी बढ़ाने में मदद की है। इस संशोधन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अब शहरों, नगरों, मोहल्लों की भलाई उनके हित व विकास सम्बन्धी मुद्दों पर निर्णय लेने का अधिकार केवल सरकार के हाथ में नहीं है। अब नगरों व शहर के ऐसे लोग जो शहरी मुद्दों की स्पष्ट सोच रखते हैं व नगरों, कस्बों व उनमें निवास करने वाले लोगों की नागरिक सुविधाओं के प्रति संवेदनशील है, निर्णय लेने की स्थिति में आगे आ गये हैं। महिलाओं व पिछड़े वर्गों के लिए विशेष आरक्षण व्यवस्था ने हमेशा से पीछे रहे व हाशिये पर खड़े लोगों को भी बराबरी पर खड़े होने व निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करने का अवसर दिया है। 74वें संशोधन ने सरकार (लोगों का शासन) के माध्यम से आम लोगों की सहभागिता स्थानीय स्वशासन में सुनिश्चित की है। हर प्रकार के महत्वपूर्ण निर्णयों में स्थानीय लोगों को सम्मिलित करने से निणर्य प्रक्रिया प्रभावी, पारदर्शी व समुदाय के प्रति संवेदनशील हो जाती है।

नगरीय शासन, आधुनिक समय भी अब विकेन्द्रीकरण की स्थिति को और अधिक मजबुत बना रहा है। नगरीय शासन के लिए वर्तमान समय में नगरों में बढते जनसंख्या के दबाव को व्यवस्थित करना और नगरीय लोगों की आम जरूरतों का सुचारू संचालन एक चुनौती है। बिजली, पीने का साफ पानी, कुड़ा निस्तारण, बरसात के पानी का निस्तारण, सड़कें ये सभी व्यवस्थित रखना है। वर्तमान सरकार के 'स्मार्ट सीटी' प्रोजेक्ट भी नगरों की दशा व दिशा बदल सकते हैं।

4.8 शब्दावली

महत्ता- महत्व/उपयोगी, अपव्यय- फिजुल खर्ची, पारदर्शिता- इमानदारी/ जिसके आर-पार देखा जा सके

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. पांच साल, **2.** चंदे की धनराशि, **3.** 74वां संविधान संशोधन, **4.** एक लाख, **5.** 50 हजार

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हार्क नगरीय स्वशासन प्रशिक्षण मार्गदार्शिका।
2. गिरवर सिंह, 2004 , भारत में पंचायती राज, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
3. आश नारायण राय, जनवरी, 2010, पंचायतों का गणतंत्र, आजकल, नयी दिल्ली।
4. चन्द्रा पटनी, 2006, ग्रामीण स्थानीय प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।

4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारत में पंचायती राज, के0के0 शर्मा।
2. बर्थवाल,सी0पी0, स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 2010
3. जोशी, आर0पी0 और अरूणा भारद्वाज, भारत में स्थानीय प्रशासन, शील सन्स, जयपुर, 1999

4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्थानीय स्वशासन और नगरीय संस्थाओं के विकास में 74वें संविधान संशोधन का क्या योगदान है? स्पष्ट करें।
2. आधुनिक समय में नगरीय प्रशासन की जिम्मेदारियों पर एक लेख लिखें।

इकाई- 5 नगर निगम

इकाई की संरचना

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 नगर निगम का ऐतिहासिक विकास

5.3 विभिन्न राज्यों में नगर निगम

5.4 नगर निगम की स्थापना

5.5 नगर निगमों का संगठन

5.6 नगर निगम के कार्य

5.6.1 अनिवार्य कार्य

5.6.2 ऐच्छिक कार्य

5.7 नगर निगम के आय के साधन

5.8 नगर निगम पर नियन्त्रण

5.9 सारांश

5.10 शब्दावली

5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.14 निबन्धात्मक प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

भारत में ग्रामीण स्वशासन की भाँति ही नगरीय स्वशासन भी अत्यन्त प्राचीन काल से देखने को मिलता है। चन्द्रगुत मौर्य के दरबार में विद्यमान यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र की नगरीय व्यवस्था का उल्लेख किया है। मुगलकाल में भी नगरीय प्रशासन का उल्लेख मिलता है। किन्तु नगरीय शासन की आवश्यकता ब्रिटिश काल में प्रबल रूप से महसूस की गयी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में ही उद्योगों एवं व्यापार के कारण नगरो

का तेजी के साथ विकास हुआ। जिसका स्वाभाविक परिणाम नगरीय समस्याओं के रूप में प्रकट हुआ। इन समस्याओं का तात्कालिक समाधान करने की धारणा ने स्थानीय नगरीय शासन के विचार को जन्म दिया।

इसलिए ब्रिटिश शासन काल में ही नगरीय शासन की स्थापना को मूर्तता प्रदान की गई। जिसकी सर्वप्रथम अभिव्यक्ति 1687 ई0 में मद्रास कार्पोरेशन के रूप में देखने को मिलती है। जिससे प्रेरित होकर 1720 में कलकत्ता तथा 1793 ई0 में बम्बई में भी ऐसे ही कार्पोरेशनों की स्थापना की गयी। इन कार्पोरेशनों में भारतीयों के सदस्य होने की भी व्यवस्था थी। यद्यपि इन कार्पोरेशनों की शक्तियां अत्यन्त सीमित थी। ये कुछ कर भी लगा सकते थे जिससे एकत्र कोष को इनके कार्यक्षेत्र के विकास पर खर्च किया जाता था। ब्रिटिश शासन काल में नगरीय संस्थाओं के विकास पर ग्रामीण संस्थाओं के विकास की अपेक्षा ज्यादा ध्यान दिया गया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात नगरीय प्रशासन के प्रति उपेक्षात्मक दृष्टिकोण देखने को मिलता है। यही कारण है कि स्वतन्त्रता के उपरान्त जहाँ ग्रामीण प्रशासन को सुदृढ़ करने के लिए व्यापक प्रयास किये गये वहीं नगरीय प्रशासन वहीं का वहीं रह गया जहाँ यह स्वतन्त्रता के पूर्व था। 1992 स्वातन्त्रोत्त भारत में नगरीय प्रशासन को मजबूत करने के लिए इसे 74वें संविधान संसोधन 1992 के द्वारा संवैधानिक दर्जा दे दिया गया है। अतः अब इससे विमुख होना भारतीय जनमानस व सरकारों के लिए प्रतिगामी कदम सिद्ध होगा।

इस इकाई का सम्बन्ध नगर निगम (नगर महापालिका) से है। यह नगरीय प्रशासन की सर्वोच्च संस्था है। इसमें नगर निगम की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ-साथ स्वतन्त्रता पश्चात नगर निगम के स्थिति का विवेचन किया गया है। 74वें संविधान संसोधन के उपरान्त नगर निगमों की संरचना, अधिकार व शक्तियां, वित्तीय स्थिति, सरकार के साथ सम्बन्ध तथा महानगरों के विकास में इनकी भूमिका का विस्तृत अवलोकन करने का प्रयास किया गया है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- नगर निगम की उत्पत्ति व विकास को समझ सकेंगे।
- नगर निगम के स्थापना के उद्देश्य व सिद्धान्त को जान सकेंगे।
- नगर निगम के वित्तीय स्थिति व कार्य प्रणाली को समझ सकेगें।
- महानगरों के विकास में नगर निगम की भूमिका का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

5.2 नगर निगम का ऐतिहासिक विकास

भारत में नगर प्रशासन का अस्तित्व तथा विकास अत्यन्त प्राचीन समय से है। हड़प्पा एवं मोहन-जोदड़ों की खुदाई में सुव्यवस्थित शहरों के भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं। कौटिल्य ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अर्थशास्त्र' में पाटलिपुत्र नगर तथा वहाँ के प्रशासन का विस्तृत वर्णन किया है। उन्होने लिखा है कि नगर का प्रधान उस समय नगराध्यक्ष अथवा 'नागरिक' कहलाता था। नगराध्यक्ष के अधीन गोप तथा स्थानीय हुआ करते थे। मेगस्थनीज ने भी अपनी पुस्तक 'इण्डिका' में लिखा है कि मौर्य शासकों के द्वारा अपनी राजधानी पाटलिपुत्र के लिए सुव्यवस्थित नगर प्रशासन की व्यवस्था की गयी थी। जिसका कार्यक्षेत्र नगर में कानून व्यवस्था, बाजारों का नियन्त्रण, अपराधों तथा बुराईयों का उन्मूलन, वार्डों के अनुसार, लोगों का पंजीकरण तथा गुप्तचर की व्यवस्था आदि तक विस्तृत था। इस प्रकार प्राचीन काल में नगर संस्थाऐं सुनिश्चित कार्यों के साथ कार्यरत थी। मुगल शासनकाल में शासकों के द्वारा स्थानीय स्वायत्त शासन प्रणाली में अपने हितों के संरक्षण और लाभ को ध्यान में रखकर अनेक परिवर्तन किये। इस परिवर्तित स्थानीय स्वायत्त शासन के प्रारूप का वर्णन एक लेखक के शब्दों में इस प्रकार किया जा सकता है कि ''उस काल में भी देश में स्थानीय शासन विद्यमान था। नगर का प्रशासन एक अधिकारी के सुपुर्द होता था, जो कोतवाल कहलाता था, दण्ड व्यवस्था, पुलिस तथा वित्तीय मामलों में उसकी सत्ता सर्वोपरि होती थी। इसके अतिरिक्त वह अनेक परिसंघ विषयक कार्यों का भी सम्पादन करता था।''

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आगमन के पश्चात कई कारणों से शहरी क्षेत्रों के लिए नगरीय शासन के बारे में सोचा गया। इसके लिए सर्वप्रथम 1687 ई0 में मद्रास में नगर निगम (कार्पोरेशन) की स्थापना की गयी। इसमें भारतीयों के सदस्य होने की भी व्यवस्था थी। नगर निगम में एक निगमाध्यक्ष (महापौर, निगमपति) एक नगर वृद्ध (एल्डरमैन) तथा एक नगर प्रतिनिधि सम्मिलित होते थे। उन्हें कुछ कर लगाने का अधिकार दे दिया गया था। जिन्हें वे एक नगर भवन (टाउन हाल), एक कारागार व एक स्कूल का भवन बनाने में तथा ऐसी अन्य सजावट की वस्तुओं व भवनों के निर्माण में जो निगम व उसके निवासियों की प्रतिष्ठा, हित, शोभा, सुरक्षा व प्रतिरक्षा के अनुरूप हो तथा नगर निगम के अधिकारियों व स्कूल अध्यापक के वेतन के लिए खर्च कर सकते थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का विश्वास था कि ''यदि लोगों को स्वयं अपने ऊपर कर लगाने दिया जाय तो वे सार्वजनिक कल्याण के लिए पांच शिलिंग स्वेच्छा से दे देगें, किन्तु यदि हम अपनी निरंकुश शक्ति के द्वारा कर वसूल करे तो वे छः पैंस भी नहीं देना चाहेगें।'' किन्तु लोगों ने करारोपण का यथा सामर्थ्य प्रतिरोध किया।

1793 ई0 के अधिकार पत्र अधिनियम (चार्टर एक्ट) के द्वारा मद्रास, बम्बई तथा कलकत्ता के तीन महाप्रान्तीय नगरों में नगर महापालिकाओं अर्थात् कार्पोरेशन की स्थापना की गयी। इन महापालिकाओं को सफाई इत्यादि का प्रबन्ध करने, पुलिस व्यवस्था तथा सड़कों के रखरखाव, शराब इत्यादि के बिक्री लाइसेन्सों को देने तथा नाम मात्र के टैक्स लगाने का अधिकार प्रदान कर दिया गया। 1842 ई0 में बंगाल अधिनियम पारित हुआ जिसके अनुसार बंगाल के जनपदीय नगरों (जिला नगरों) में भी नगर प्रशासन का विस्तार कर दिया गया। उक्त अधिनियम द्वारा व्यवस्था की गयी कि यदि किसी नगर के दो तिहाई मकान मालिक प्रार्थना करें तो सफाई के लिए एक नगर समिति की स्थापना कर दी जायेगी। यह अधिनियम निरर्थक साबित हुआ, क्योंकि इसकी व्यवस्था ऐच्छिक थी। इसके साथ ही साथ प्रत्यक्ष करारोपण के कारण इसका सर्वत्र प्रतिरोध किया गया। नगरीय शासन के विस्तार के दृष्टि से 1850 ई0 में सम्पूर्ण देश के लिए एक अधिनियम पारित किया गया। जिसके द्वारा पूर्व की संविधियों के विपरीत अप्रत्यक्ष करारोपण का प्रावधान किया गया, जिसके लिए लोग स्मरणातीत काल से अभ्यस्त हो चुके थे। इस अधिनियम के अनुसार ही उत्तर प्रदेश के प्रमुख नगरों, बम्बई तथा अन्य प्रमुख नगरों में नगरपालिकाओं की स्थापना की गई। इस अधिनियम के लागू होने पर सरकार को नगरपालिकाओं के लिए आवश्यकतानुसार न्यायधीशों तथा कमिश्नरों की नियुक्ति करने का भी अधिकार दे दिया गया।

1863 ई0 में राजकीय सैनिक स्वास्थ्य आयोग ने अन्य चीजों के साथ-साथ भारतीय नगरों की गन्दी स्थिति के सम्बन्ध में चिन्ता व्यक्त किया। फलस्वरूप देश के विभिन्न भागों में नगर प्रशासन का विस्तार करने के लिए अनेक अधिनियम पारित किये गये। अब तक नगरीय स्थानीय शासन की स्थापना के लिए ऐच्छिकता के सिद्धान्त का अनुसरण किया गया था। जिसका परित्याग करते हुए प्रान्तीय सरकारों को नगर समितियां बनाने का अधिकार दे दिया गया। इन समितियों का प्रमुख कार्य सफाई, प्रकाश तथा पानी की व्यवस्था करना था। 1870 ई0 में लार्ड मेयो का सुप्रसिद्ध विकेन्द्रीकरण प्रस्ताव पारित हुआ। जिसमें स्थानीय स्वायत्त शासन को सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया था। इस प्रस्ताव की भाषा थी कि ''यदि इस प्रस्ताव को पूर्ण अर्थ में और पूरी निष्ठा के साथ कार्यान्वित किया जाय तो इससे स्वशासन का विकास करने, म्यूनिसिपल संस्थाओं को सशक्त बनाने और भारतीय तथा यूरोपीय लोगों को प्रशासनिक मामलों के साथ पहले से कही अधिक सीमा तक सम्बद्ध करने का अवसर मिलेगा।'' आगे चलकर इसी सिद्धान्त के आधार पर ''जनप्रतिनिधि स्थानीय कार्यों की जिम्मेदारी को स्वयं ग्रहण करें'' की धारणा का उदय हुआ। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नगरीय प्रशासन के क्षेत्र को सर्वाधिक उपयुक्त माना गया।

1882 ई0 में लार्ड रिपन के द्वारा स्थानीय स्वायत्त शासन को दृढ़ता प्रदान करने के लिए एक प्रस्ताव पारित किया गया। जिसका प्रमुख उद्देश्य इन संस्थाओं में निर्वाचित या गैर-सरकारी प्रतिनिधियों को महत्वपूर्ण स्थिति प्रदान करते हुए इन पर सरकारी नियन्त्रण को सीमित करना था। इस प्रस्ताव को स्वायत्त शासन के मैग्नाकर्टा की संज्ञा प्रदान की जाती है।1909 ई0 में स्थापित राजकीय विकेन्द्रीकरण आयोग भी नगरीय संस्थाओं के विकास की दिशा में एक मजबूत पहल थी। किन्तु स्वतन्त्रता पूर्व नगर निगमों के स्थापना की दिशा में किये गये प्रयास नगण्य प्रतीत होते हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भी ऐसा प्रतीत होता है कि नगरीय प्रशासन की अपेक्षा ग्रामीण प्रशासन को सुदृढ़ करने पर ही ज्यादा ध्यान दिया गया। यही कारण है कि ग्रामीण स्थानीय शासन के क्षेत्र में हुए नाटकीय परिवर्तनों की तुलना में नगरीय प्रशासन के विकास की गति इतनी धीमी रही कि वह नगण्य प्रतीत होती है। नगरीय स्थानीय शासन की ओर ध्यान तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत दिया गया। नगरीय शासन के महत्व को स्वीकार करते हुए इसमें कहा गया कि ''आयोजन के अगले दौर में यथासम्भव अधिकाधिक नगरों एवं कस्बों को आयोजन की व्यवस्था में अवयवी ढंग से सम्मिलित किया जाय, प्रत्येक राज्य अपने साधनों को जुटाये और नगरों के निवासियों के लिए पहले से अच्छे जीवन की परिस्थितियों का निर्माण करें।'' इस योजना में यह स्वीकार किया गया कि नगरीय क्षेत्र तीव्र गति से बढ़ रहें है। ऐसे में इन क्षेत्रों की समस्याएं विकराल रूप ले रही हैं जिसका समाधान केवल राज्य की सरकारों के लिए सम्भव नहीं रहा बल्कि इसके लिए नगर प्रशासन और सामान्य जनता में आपसी सहयोग आवश्यक है। योजना में भविष्य के लिए उचित दिशा प्राप्त करने के लिए निम्न कार्य योजना बनायी गयी-

1. सार्वजनिक अभिग्रहण और उचित वित्तीय नीतियों के द्वारा नगरीय भूमि के मूल्य का नियन्त्रण।
2. भूमि के प्रयोग के लिए सरकार आयोजन और महायोजना का निर्माण।
3. नगरों में उनकी आवश्यक तओं के अनुसार निवास तथा अन्य सुविधाओं के लिए मानक तैयार करना।
4. नगरीय प्रशासन को सशक्त बनाना ताकि वह विकास सम्बन्धी अन्य दायित्वों को पूरा कर सके।

केन्द्रीय सरकार ने समय-समय पर नगरीय स्थानीय शासन के सम्बन्ध में प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए निम्नलिखित समितियों का गठन किया गया है- स्थानीय वित्त जांच समिति 1951, नगर प्रशासन के कर्मचारियों के प्रशिक्षण के सम्बन्ध में समिति 1963, नगरीय स्थानीय निकायों के वित्तीय साधनों के वृद्धि के सम्बन्ध में मन्त्रियों की समिति 1963, ग्रामीण-नगरीय सम्बन्धों के विषय में समिति और नगर-प्रशासन समितियों की सेवा की शर्तों से सम्बन्धित समिति।

इसी प्रकार महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, पंजाब और गुजरात की सरकारों ने नगरीय स्वायत्त शासन के कार्य प्रणाली की जाँच और उनके सुधार के लिए समय-समय पर भिन्न-भिन्न समितियों का गठन किया गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद नगर निगमों की संख्या अप्रत्याशित रूप से बढ़ी। यह इसी से स्पष्ट है कि 1947 ई0 में इनकी संख्या जहाँ मात्र तीन थी, वहीं 1969 ई0 में इनकी संख्या बढ़कर तीस हो गयी। नगरीय शासन के पुनर्गठन के लिए प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के शासन काल में 65वां संविधान संसोधन विधेयक लोक सभा में प्रस्तुत किया गया। इस विधेयक का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि नगर निकायों को स्थानीय शासन के इकाई के रूप में प्रभावशाली ढंग से कार्य करने हेतु शक्तियां प्रदान की जानी चाहिए। इस अधिनियम द्वारा नगरीय संस्थाओं के तीन वर्ग बनाये गये। प्रथम एक हजार से बीस हजार शहरी आबादी वाली नगर पंचायतें, द्वितीय बीस हजार से तीस हजार शहरी आबादी वाली नगरपालिका और तृतीय तीस हजार से कम शहरी आबादी वाले नगर निगम। इनके निर्माण की घोषणा करने का अधिकार राज्यपाल को प्रदान किया गया था। इसमें अनुसूचित जाति, जनजाति तथा महिलाओं के लिए सीटों का आरक्षण का भी प्रावधान किया गया था। नगर निकायों का कार्यकाल पांच वर्ष निश्चित किया गया तथा इससे पूर्व विघटन स्थिति में छः माह के भीतर चुनाव बाध्यकारी था। निर्वाचनों का अधीक्षण निर्देशन और नियन्त्रण भारतीय निर्वाचन आयोग द्वारा किया जाना था। वित्त आयोग का कार्यक्षेत्र बढ़ाकर नगर निकायों की वित्तीय समीक्षा करने तक कर दिया गया। इन निकायों के वित्तीय स्थिति को सुधारने पर भी प्रबल जोर दिया गया था। यद्यपि इस विधेयक को लोकसभा के द्वारा तो पारित कर दिया गया लेकिन राज्य सभा में कांग्रेस का बहुमत न होने के कारण यह विधेयक पारित नहीं हो सका। नगरीय स्थानीय स्वशासन की दिशा में सबसे ठोस पहल 1991 ई0 में पी0बी0 नरसिंह राव के प्रधानमन्त्री बनने के बाद हुई। इन संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान करने के उद्देश्य से 73वां संविधान संसोधन विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत किया गया। जिसे दिसम्बर 1992 में लोकसभा और राज्य सभा दोनों के द्वारा पारित कर दिया गया। 20 अप्रैल 1993 ई0 को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त कर यह विधेयक 74वें संविधान संसोधन 1993 ई0 के रूप में जाना गया। इस संसोधन द्वारा संविधान में अध्याय 09 (क) नाम से एक नया अध्याय जोड़ दिया गया। जिसका सम्बन्ध शहरी प्रशासन से है। इस अधिनियम द्वारा शहरी प्रशासन के सर्वोच्च संस्था के रूप में नगर निगम की स्थापना की गई है।

5.3 विभिन्न राज्यों में नगर निगम

स्थापना के आधार पर भारतीय नगर महापालिकाओं को दो श्रेणियों विभाजित किया जा सकता है- स्वतन्त्रता पूर्व स्थापित नगर महापालिकाएं और स्वतन्त्र भारत में स्थापित नगर महापालिकाएं।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा सर्वप्रथम 1687ई0 में मद्रास में कार्पोरेशन की स्थापना की गयी। जिसमें भारतीयों को भी सदस्य बनाने की व्यवस्था की गयी थी। यद्यपि इनको अधिकार बहुत कम दिया गया था। ये सीमित मात्रा में कर भी लगा सकते थे। बाद में चलकर 1720 ई0 में कलकत्ता और 1793ई0 में बम्बई में भी इसी तरह के कार्पोरेशन की स्थापना की गयी। चूंकि स्वतन्त्रता से पूर्व स्थापित इन नगर निगमों की स्थापना एक विशेष विधान के अन्तर्गत की गयी थी। इसलिए इनको भंग नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उस विधान में इनको भंग करने का कोई प्रावधान नहीं है। स्वतन्त्रता से पूर्व स्थापित इन नगर-निगमों के स्वरूप में भी बदलती हुई परिस्थितियों का अनुरूप संसोधन व परिवर्तन होता रहा है। 1938ई0 में नियुक्त स्थानीय शासन समिति का सुझाव था कि जिन नगर पालिकाओं की जनसंख्या एक लाख पचास हजार अथवा उससे अधिक हो तथा वार्षिक आय 15 लाख से कम न हो उन्हें नगर निगमों में परिवर्तित कर दिया जाय। यद्यपि वर्तमान समय में ये कसौटियां अत्यन्त हास्यास्पद प्रतीत होती हैं। इस प्रकार यह देखने को मिलता है कि पन्द्रह अगस्त 1947 ई0 में स्वतन्त्रता प्राप्त होने तक भारत में केवल तीन नगर निगम संस्थाएं (मद्रास, कलकत्ता और बम्बई) ही स्थापित हो सकी थी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद नगर निगम की स्थापना राज्य विधान मण्डल द्वारा पारित विशेष संविधि के अन्तर्गत की जाती है। इस प्रकार की विधि किसी एक निगम विशेष या राज्य के सभी निगमों के लिए बनायी जा सकती है। इसलिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद क्रमश: विभिन्न राज्यों के द्वारा अधिनियम बनाकर नगर निगमों की स्थापना का प्रयास किया गया। मध्य प्रदेश में मध्यप्रदेश नगर निगम अधिनियम 1956, केरल में 1956 ई0 में, उत्तर प्रदेश में उत्तर प्रदेश नगर निगम अधिनियम 1959, आसाम में 1960 ई0 में, कर्नाटक में 1964 ई0 में, महाराष्ट्र में महापालिका अधिनियम 1965, उड़ीसा और आन्ध्र प्रदेश में 1965 ई0 में अधिनियम बनाकर नगर निगमों की स्थापना की गयी। जिसके कारण नगर निगमों की संख्या क्रमश: बढ़ती जा रही है। 1947 ई0 में यह तीन, 1975 ई0 में 34, 1986 ई0 में 68 तथा 1992 ई0 तक यह संख्या 73 तक पहुँच गयी थी। 74वें संविधान संसोधन के उपरान्त प्रायः सभी राज्यों में नगर निगम की अर्हताए पूरे करने वाले नगरों में इनकी स्थापना की जा चुकी है। दिल्ली में नगर निगम की स्थापना संघीय संसद के द्वारा की गयी है। इसलिए नगर निगम संस्था के रूप में वह अधिक सम्माननीय और अन्य नगर निकायों की तुलना में अधिक स्वायत्ता का उपयोग करता है।

5.4 नगर निगम की स्थापना

नगर निगम सर्वोच्च नगरीय निकाय है। नगरीय शासन की इस पद्धति की उत्पत्ति उन बड़े नगरों के लिए हुई है जहाँ कि नागरिक समस्याएं अधिक जटिल हो जाती हैं। नगरीय समस्याओं का समाधान करने के लिए ही राज्य संविधि

बनाकर नगर निगमों की स्थापना करते है। डॉ0 एस0आर0 माहेश्वरी ने लिखा है कि भारत में नगरीय स्थानीय शासन का संगठन ग्रामीण स्थानीय शासन की भाँति सोपानात्मक नहीं है नगर निगम अन्य नगरीय संस्थाओं की तुलना में अधिक स्वायत्तता का उपयोग करने के कारण निश्चित रूप से अधिक सम्माननीय हैं। राज्य विधानमण्डल के विधि द्वारा स्थापित होने के कारण ही इनके निर्माण के लिए कठोर कसौटियों का निर्धारण किया जाता है। 1966ई0 में ग्रामीण-नगरीय सम्बन्ध समिति ने सुझाव दिया कि स्थानीय शासन की निगम पद्धति को उन्हीं नगरों में स्थापित किया जाना चाहिए, जिनकी जनसंख्या 05 लाख तथा वार्षिक आय एक करोड़ से कम न हो। यद्यपि जनसंख्या और आय आधारित यह कसौटी अपेक्षाकृत अधिक कठिन है। इसलिए नगर निगमों की स्थापना की एक मात्र कसौटी इसको नहीं माना जा सकता है। मोटे तौर पर यह माना जाता है कि किसी नगर में नगर निगम स्थापित करने के लिए निम्नलिखित शर्तो का पूरा होना आवश्यक है-

1. क्षेत्र घना बसा हो।
2. नगरपालिका के वर्तमान विकास के साथ-साथ भावी विकास की गुंजाइश हो।
3. वर्तमान वित्तीय विकास के साथ-साथ भविष्य में भी विकास सम्भावित हो।
4. जनता में बढ़े हुए कर को वहन करने की इच्छा और क्षमता हो।
5. लोकमत निगम निर्माण के पक्ष में हो।

वस्तुतः ये सार्वभौमिक सिद्धान्त नहीं हैं बल्कि यह तो पूर्णरूपेण राज्य की इच्छा पर निर्भर होता है कि वह किस नगर में नगर की स्थापना करे। प्रायः राज्य सरकार उसी नगर को नगर निगम का दर्जा प्रदान करती है जो अत्यन्त बड़ा हो और साथ ही साथ वहाँ जनमत भी नगर निगम की निरन्तर मांग कर रहा हो। जनसंख्या और राजस्व की कसौटी तो वास्तव में समय सापेक्ष होती है। इसलिए समय के साथ-साथ उसकी सार्थकता जाती रहती है। जैसे 1938ई0 में स्थानीय शासन समिति ने सुझाव दिया था कि जिस नगरपालिका की जनसंख्या 01 लाख 50 हजार या उससे अधिक तथा वार्षिक आय 15 लाख से अधिक हो उन्हे नगर निगम बना दिया जाना चाहिए। वर्तमान समय में यह कसौटी हास्यास्पद होने के साथ-साथ अस्वीकार्य भी है। राज्यों में नगर निगमों की स्थापना राज्य विधानमण्डल द्वारा कानून बनाकर किया जाता है तो केन्द्र शासित प्रदेशों में इनकी स्थापना संसदीय अधिनियमों के आधार पर होता है। इसलिए इनका अस्तित्व एवं अधिकार भी राज्य एवं केन्द्र की इच्छा पर निर्भर होता है।

5.5 नगर निगमों का संगठन

भारतीय महानगरों में स्थापित नगर निगमों के चार प्रमुख घटक होते हैं। जिनका उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है- 1. परिषद, 2. निगमाध्यक्ष या महापौर, 3. समितियां, 4. नगरपाल या नगर आयुक्त।

1. **परिषद-** परिषद नगर निगम का विधायी अंग होता है। इसलिए इसे स्थानीय विधान सभा की संज्ञा दी जाती है। परिषद के सदस्य दो तरह के होते हैं। प्रथम कुछ सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से जनता के द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है, जिन्हें सभासद या पार्षद के नाम से सम्बोधित किया जाता है। द्वितीय कुछ सदस्यों का चुनाव सभासदों के द्वारा किया जाता है। इस चुनाव का उद्देश्य परिषद में बयोवृद्ध या अनुभवी व्यक्तियों, महिलाओं या अन्य तबके लोगों को लाना होता है, इसलिए इनको 'एल्डरमैन' कहा जाता है। इस प्रकार परिषद के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जनता के द्वारा ही किया जाता है। इसलिए यह जनता के इच्छा को मुखरित करती है, जो अन्ततः नगर विधि का रूप धारण कर लेती है। परिषद के आकार के सम्बन्ध में कोई सार्वभौमिक सिद्धान्त नहीं बनाया गया है, जिसका परिणाम है कि पष्चिम बंगाल के चन्द्रनगर नगर निगम में मात्र 22 सदस्य होते है तो बम्बई नगर निगम के सदस्यों की संख्या 131 होती है।
2. **निगमाध्यक्ष या महापौर-** नगर निगम के अध्यक्ष को निगमाध्यक्ष, महापौर, निगमपाल, निगमपति आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। नगर निगम अध्यक्ष नगर का प्रथम नागरिक कहलाता है। इस दृष्टि से उसका पद अत्यन्त सम्मान एवं प्रतिष्ठा से परिपूर्ण होता है। महापौर के चुनाव के सम्बन्ध में राष्ट्रीय स्तर पर एकरूपता का अभाव है, इसलिए जहाँ कई राज्यों में आज भी नगर निगम के अध्यक्ष का चुनाव सभासदों के द्वारा किया जाता है तो वहीं उत्तर प्रदेश में इनका चुनाव प्रत्यक्ष रूप से जनता के द्वारा पांच वर्ष के लिए किया जाता है। अध्यक्ष के रूप में वह नगर निगम के परिषद के द्वारा लिये जाने वाले निर्णयों को क्रियान्वित करने के लिए नगर आयुक्त को प्रेषित करता है। नगर के नेता के रूप में वह नगरीय प्रशासन तथा राज्य सरकार के बीच कड़ी के रूप में भी कार्य करता है। नगरीय समस्याओं से राज्य सरकार को अवगत कराने तथा राज्य सरकार के द्वारा नगर के विकास के लिए दिये जाने वाले आदेश व निर्देश को वह क्रियान्वित कराता है। निगमाध्यक्ष अध्यक्ष के रूप में परिषद के कार्यालय पर प्रशासनिक नियन्त्रण रखता है। इस दृष्टि से उसे कई प्रदेशों में नगर निगम के सभी अभिलेखों की जांच करने का

अधिकार दिया गया है। वह नगर के नागरिक प्रशासन के सम्बन्ध में नगरपाल से जानकारी मांग सकता है।

3. **समितियां-** परिषद, नगर निगम का सबसे शक्तिशाली घटक है। जिसके समस्त कार्य समितियों द्वारा किये जाते हैं। नगर के परिषद की बैठके प्रायः महीने में एक या दो बार होती है। अतः उसके लिए अपने सभी कार्यों को भली-भाँति सम्पन्न करना दुष्कर है। इसलिए लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के अनुरूप परिषद द्वारा अपने सदस्यों की समितियां बना दी जाती है जो उनके कार्यों को सुचारु रूप में संचालित करने में प्रभावी भूमिका का निर्वहन करती है। परिषद द्वारा नियुक्त समितियों को दो श्रेणियों में रखा जाता है- सांविधिक और गैर-सांविधिक। सांविधिक समितियों का आशय उन समितियों से लगाया जाता है, जिनका निर्माण उसी संविधि के द्वारा की गयी हो जिसके द्वारा नगर निगम की स्थापना की गयी है। जबकि गैर-संविधिक समितियां उन समितियों को कहा जाता है जिनका निर्माण समय-समय पर परिषद के द्वारा बनाये गये उपनियमों के अधीन किया जाता है। इन समितियों में सबसे महत्वपूर्ण कार्यकारिणी समिति होती है, जो नगर निगम के कार्यों को सम्पन्न करने हेतु आदेश देती है। इसके अलावा शहर की व्यवस्था को सुव्यवस्थित करने के लिए विकास, शिक्षा, जन स्वास्थ्य, प्रकाश व्यवस्था, जल, साफ-सफाई, लेखा-जोखा, नगर नियोजन आदि से सम्बन्धित समितियां भी गठित की जाती हैं। इन समितियों की सदस्य संख्या सीमित होने के कारण आवश्यकतानुसार इनकी बैठक किसी भी समय आसानी से बुलायी जा सकती है।

4. **नगरपाल या नगर आयुक्त-** प्रत्येक नगर निगम में निगम की स्वीकृति से राज्य सरकार द्वारा एक मुख्य अधिकारी की नियुक्ति की जाती है जो नगर निगम का मुख्य कार्यकारी अधिकारी होता है। वह भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठ सदस्य होता है जिसके वेतन का भुगतान नगर निगम के कोष से किया जाता है। नगर आयुक्त के द्वारा ही निगम के समस्त प्रशासनिक कृत्यों का सम्पादन किया जाता है तथा वह नगर निगम का आवश्यक मार्गदर्शन व नियन्त्रण भी करता है। निगम आयुक्त का कार्य विविधतापूर्ण होता है। वह अधिनियम द्वारा निश्चित कर्तव्यों का पालन करता है। वह सभी नगरीय विवरणों का अभिरक्षक होता है। वही नगर निगम बजट को तैयार कर परिषद के समक्ष उसकी स्वीकृति के लिए रखता है। प्रशासनिक-तन्त्र का प्रमुख होने के नाते वह सभी सरकारी कार्यों के सरल सम्पादन के लिए उनको विभिन्न विभागों में बांटता है। इस प्रकार वह नगर निगम का सबसे महत्वपूर्ण और अत्यन्त शक्तिशाली पदाधिकारी होता है।

नगर आयुक्त की सहायता के लिए नगर निगम में सहायक नगर अधिकारी, उपनगर अधिकारी, नगर अभियन्ता तथा स्वास्थ्य अधिकारी आदि प्रमुख हैं। नगर आयुक्त को परिषद तथा उसकी समितियों की बैठकों में भाग लेने, परिषद में किसी मुद्दे पर विचार-विमर्श करने का भी अधिकार होता है लेकिन परिषद या उसकी समितियों के निर्णय के लिए मतदान में भाग लेने का अधिकार उसे नहीं होता है।

5.6 नगर निगम के कार्य

नगर निगम के कार्यों के सम्बन्ध में भी राष्ट्रीय स्तर पर एकरूपता का अभाव देखने को मिलता है। यह इसी से स्पष्ट है कि जहाँ कुछ राज्यों के नगर निगम स्थापित करने वाली संविधियों में उनके कार्यों का विवरण संक्षिप्त रूप में दिया गया है तो वही कुछ राज्यों में नगर निगम को स्थापित करने वाली संविधियों में इनका उल्लेख अत्यन्त विस्तार पूर्वक किया गया है। इसके अतिरिक्त नगर निगम के कार्यों को दो श्रेणियों में विभक्त किया गया है- अनिवार्य कार्य और ऐच्छिक कार्य। इनकी सूची में इस हद तक असमानता है कि किसी राज्य में जो कार्य अनिवार्य कार्य की श्रेणी में है तो दूसरे राज्य में वही कार्य ऐच्छिक कार्य की श्रेणी में हैं। उदाहरण स्वरूप पषु चिकित्सालयों की स्थापना और अनुरक्षण मध्य प्रदेश में अनिवार्य कार्यों की सूची में है तो दिल्ली में यह ऐच्छिक कार्यों की सूची के अन्तर्गत है। सामान्यतः सभी राज्यों में नगर निगमों के द्वारा निम्नलिखित प्रमुख कार्यों को सम्पन्न किया जाता है-

5.6.1 अनिवार्य कार्य

अनिवार्य कार्य वे कार्य है जिनको करना नगर निगम के लिए आवश्यक माना जाता है। अनिवार्य कार्यों में प्रमुख रूप से निम्नलिखित कार्यों को सम्मिलित किया जाता है-

1. शुद्ध जल की व्यवस्था तथा जल संदाय का निर्माण व अनुरक्षण।
2. बिजली और सड़कों पर प्रकाश का प्रबन्ध करना।
3. यातायात सेवाओं के विकास में योगदान करना।
4. सार्वजनिक स्थलों गलियों में सफाई एवं प्रकाश की व्यवस्था करना।
5. गन्दगी तथा कूड़ा-करकट की सफाई व उसको हटाना।
6. जल निकास के लिए नालियों, नालों, सार्वजनिक शौचालयों, मूत्रालयों, आदि का निर्माण, उसकी देखरेख तथा उनकी सफाई।
7. खतरनाक इमारतों तथा स्थानों का अधिग्रहण व उनको गिराने का प्रबन्ध करना।

8. सार्वजनिक मार्गों, गलियों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों में उत्पन्न रूकावटों तथा उन पर बने निर्माणों को हटाना।
9. अस्पतालों तथा प्रसूति एवं शिशु कल्याण केन्द्रों का निर्माण तथा अनुरक्षण।
10. खतरनाक बीमारियों की रोकथाम व नियन्त्रण के उपाय।
11. टीकाकरण तथा सुइयों आदि की व्यवस्था।
12. जन्म तथा मृत्यु का पंजीकरण कर उसका लेखा-जोखा रखना।
13. श्मशान घाटों का प्रबन्ध एवं उसका नियमन।
14. प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था।
15. अग्निशमन हेतु दमकल की व्यवस्था।
16. निगम प्रशासन से सम्बन्धित वार्षिक विवरण, आय-व्यय व नक्षों का प्रकाशन।
17. भोजन सामग्री, भोजनालयों का नियन्त्रण तथा उसका प्रबन्ध।
18. बूचड़खानों, कब्रिस्तानों व हाट बाजार हेतु स्थान सुरक्षित करना।

5.6.2 ऐच्छिक कार्य

ऐच्छिक कार्य वे कार्य है जिनको करना या न करना नगर निगमों की वित्तीय स्थिति और उनकी इच्छा पर निर्भर करता है। नगर निगम के प्रमुख ऐच्छिक कार्य निम्नांकित है-

1. सार्वजनिक पार्कों, उद्यानों, पुस्तकालयों, संग्रहालयों, नाट्यशालाओं, अखाड़ों तथा क्रीड़ा स्थलों का निर्माण।
2. नागरिकों के सांस्कृतिक विकास हेतु कला-केन्द्र, पिक्चर गैलरी आदि की स्थापना करना।
3. सड़कों के किनारे तथा अन्य स्थानों पर वृक्षारोपण व उनकी देखभाल।
4. वृद्ध अपाहिज तथा असहायों की सहायता करना।
5. अवारा कुत्तों, सूअरों तथा अन्य खतरनाथ जानवरों को समाप्त करना अथवा बन्दीकरण।
6. भवनों तथा भूमि का सर्वेक्षण।
7. शहर क्षेत्र में मेलों तथा प्रदर्शनियों का संगठन एवं व्यवस्था।
8. विशिष्ट अतिथियों का स्वागत तथा अभिनन्दन करना।
9. विवाहों का पंजीकरण।

10. सार्वजनिक भवनों का निर्माण।

5.7 नगर निगम के आय के साधन

नगर निगम अपने दायित्वों का निर्वहन उचित तरीके से कर सके इसके लिए उसके पास पर्याप्त वित्तीय संसाधनों का होना अनिवार्य है। इस लिए निगमों के निर्माण हेतु बनायी गयी संविधि में इनके आय के स्रोतों का भी जिक्र कर दिया जाता है। वर्तमान में नगर निगम के आय के प्रमुख स्रोतो को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है- कर, अनुदान तथा अन्य स्रोत।

1. **कर-** नगर निगमों के आय का सबसे प्रमुख स्रोत उसके द्वारा लगाया जाने वाला कर ही होता है। अनुमानतः नगर निगमों के कुल आय का 2/5 से 3/4 भाग करों से प्राप्त होता है। नगर निगम द्वारा प्रमुख रूप से निम्नलिखित कर लगाये जा सकते हैं- भवन कर, जल कर(वाटर टैक्स), समाचार पत्रों के अतिरक्त अन्य विज्ञापनों पर कर, सम्पत्ति कर, वाहनों तथा पशुओं पर कर, थियेटर पर कर, व्यवसाय कर, मनोरंजन कर, बिजली के उपभोग तथा बिक्री पर कर, शिक्षा कर तथा नगरीय क्षेत्र के अधिक विकास और सुधार के कारण जमीन की बढ़ी हुई कीमतों पर उन्नति कर।

   नगर निगम द्वारा आरोपित करों के विरूद्ध अपील की जा सकती है। जिसकी सुनवायी स्वयं नगर निगम द्वारा की जाती है। किसी विधिक त्रुटि की स्थिति में यह अपील सिविल कोर्ट या हाइकोर्ट में भी की जा सकती है।

2. **अनुदान-** भारत में नगर निगम को वित्तीय सुदृढ़ता प्रदान करने के उद्देश्य से समय-समय पर केन्द्रीय व राज्य सरकारों द्वारा अनुदान दिये जाते रहते हैं। नगर निगमों के आय का एक प्रमुख स्रोत सरकारों से प्राप्त होने वाला ये अनुदान भी है।
3. **अन्य स्रोत-** उपर्युक्त स्रोतों के अतिरिक्त अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाने के लिए नगर निगम एक तरफ नगरीय क्षेत्र में किये जाने वाले विभिन्न कार्यों का लाइसेंश देने हेतु शुल्क वसूल करता है तो दूसरी तरफ वह अपने वित्तीय साधनों से लाभकारी उद्यमों को भी संचालित करता है। इस दृष्टि से वह मुर्गीपालन, सिनेमा, थियेटर व अन्य दूसरे कार्यों को करता है।

5.8 नगर निगम पर नियन्त्रण

नगरीय शासन (नगर निगम) की स्थापना राज्य संविधि के अधीन की जाती है। इसलिए राज्य सरकार नगर निगमों पर यथेष्ठ नियन्त्रण भी रखती है। राज्य सरकार समय-समय पर नगर निगमों को आवश्यक कार्य करने हेतु आदेश व निर्देश देती है। जिन कार्यों को करने में अतिरिक्त व्यय की सम्भावना होती है उसके लिए राज्य सरकार की पुष्टि आवश्यक होती है। नगर निगम अपने कार्यों की वार्षिक रिपोर्ट भी शासन को भेजता रहता है जिसका मूल्यांकन सरकार के द्वारा किया जाता है। नगर निगम द्वारा अपने नियत कर्तव्यों का संपादन न करने या लापरवाही की स्थिति में राज्य सरकार को निगमाध्यक्ष, समितियों, परिषद या नगरपाल को विघटित या पदच्युत करने का अधिकार भी होता है। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर राज्य सरकार इनके निर्धारित कर्तव्यो का पालन निर्धारित व्यक्ति या कर्मचारी के माध्यम से पूरा करा सकती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. भारत में सर्वप्रथम कार्पोरेशन(निगम) की स्थापना किस नगर में और कब की गयी थी?
2. क्या लार्ड मेयो के प्रस्ताव के आधार पर ही ''जनप्रतिनिधि स्थानीय कार्यों की जिम्मेदारी को स्वयं ग्रहण करें'' की धारणा का विकास हुआ?
3. नगरीय स्वायत्त शासन के लिए 65वां संविधान संसोधन विधेयक किस प्रधानमन्त्री के शासन काल में लाया गया था?
4. 74वां संविधान संसोधन विधेयक कब लागू हुआ?
5. क्या नगर निगम सर्वोच्च नगरीय निकाय है?
6. नगर निगम के चार प्रमुख घटक कौन-कौन है?
7. नगर निगम के प्रमुख को कहा जाता है?
8. नगर निगम के आय का सबसे प्रमुख स्रोत क्या है?

5.9 सारांश

भारत में नगरीय शासन का प्रचलन भी अत्यन्त प्राचीन काल से देखने को मिलता है। नगर निगमों के विकास की दषा में सबसे ठोस पहल 1687ई0 में मद्रास में कार्पोरेशन की स्थापना कर की गयी। नगरों को सुव्यवस्थित रखने के उद्देश्य से समय-समय पर नगर निगमों की स्थिति को सुधारने के लिए प्रयास किये जाते रहे। इसलिए 1793 में अधिकार पत्र अधिनियम (चार्टर एक्ट) पारित कर तीन महत्वपूर्ण नगरों मद्रास, बम्बई और कलकत्ता में नगर

निगम (कार्पोरेशन) की स्थापना की गई। जिनको साफ-सफाई के साथ-साथ पुलिस प्रशासन, सड़कों का रखरखाव तथा शराब आदि के लाइसेंस देने का अधिकार दिया गया था। 1863 में राजकीय सैनिक स्वास्थ्य आयेाग ने नगरों की गन्दी स्थिति पर चिन्ता व्यक्त किया, जिसे दृष्टिगत रखकर देश के विभिन्न भागों में अधिनियम बनाकर प्रान्तीय सरकारों को नगर समितियों की स्थापना का अधिकार दिया गया। जिनका प्रमुख कार्य नगरों की सफाई, प्रकाश व पानी की व्यवस्था करना था। 1882ई0 का लार्ड रिपन का प्रस्ताव तथा 1909 में स्थापित राजकीय विकेन्द्रीकरण आयोग भी नगरीय संस्थाओं के विकास का महत्वपूर्ण प्रयास था।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद नगरीय प्रशासन की अपेक्षा ग्रामीण प्रशासन को सुदृढ़ करने पर ही विशेष बल दिया गया। नगरीय प्रशासन की ओर सर्वप्रथम तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ध्यान दिया गया। इस सम्बन्ध में कहा गया कि प्रत्येक राज्य अपने साधनों की व्यवस्था कर नगरों के निवासियों के जीवन की दशाओं को बेहतर बनाये। सबसे ठोस पहल राजीव गाँधी के प्रधानमन्त्रित्व काल में 65वें संविधान के रूप में की गयी लेकिन यह लोक सभा द्वारा पारित होने के बाद कुछ असहमतियों के कारण राज्य सभा में अस्वीकृत हो गया। इसलिए पुनः पी0बी0 नरसिंह राव के प्रधानमन्त्रित्व काल में 65वें संविधान संसोधन के विवादास्पद मुद्दों को परिवर्तित कर 74वां संविधान संसोधन विधेयक संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया गया और 20 अप्रैल 1993 को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त कर यह विधेयक नगरीय प्रशासन का आधार बना।

5.10 शब्दावली

नगर- जहाँ शिक्षित व सभ्य लोग निवास करें, कार्पोरेशन(निगम)- शासकीय अधिनियम से अध्यासित समिति, भग्नावशेष- किसी प्राचीन व्यवस्था के समापन के बाद बचा उसका शेष रूप, पंजीकरण- रजिस्टर में दर्ज करना, परिसंघ- किसी खास उद्देश्य के लिए बनाया गया संगठन, पंचवर्षीय योजना- केन्द्र सरकार द्वारा विकास के लिए पांच वर्ष के निमित सुनियोजित योजना, संविधि- राज्य के कानून द्वारा, निकाय- स्थानीय स्वशासन का संगठन

5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. मद्रास में सन् 1687 ई0 में, **2.** हाँ, **3.** राजीव गाँधी, **4.** 1993ई0, **5.** हाँ, **6.** परिषद, महापौर, समितियां व नगर आयुक्त, **7.** महापौर, **8.** कर

5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 ए0पी0 अवस्थी, भारतीय राज व्यवस्था, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा।

2. डॉ0 बी0एल0 फाड़िया, भारत में लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

3. एम0पी0 त्यागी एवं आर0के0 रस्तोगी, स्थानीय स्वशासन, संजीव प्रकाशन मेरठ।

4. एस0आर0 माहेश्वरी, भारत में स्थानीय स्वशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

5.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डॉ0 ए0पी0 अवस्थी, भारतीय राज व्यवस्था, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, आगरा।

2. डॉ0 बी0एल0 फाड़िया, भारत में लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

3. एम0पी0 त्यागी एवं आर0के0 रस्तोगी, स्थानीय स्वशासन, संजीव प्रकाशन मेरठ।

4. एस0आर0 माहेश्वरी, भारत में स्थानीय स्वशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

5.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नगर निगम के विकास पर एक लेख लिखें।
2. नगर निगम की संरचना एवं कार्यों का उल्लेख करें।
3. नगरीय प्रशासन में नगर निगम की भूमिका को स्पष्ट करें।

इकाई- 6 नगरपालिका

इकाई की संरचना

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 नगर पालिका का ऐतिहासिक विकास

6.3 नगरपालिकाओं की स्थापना का आधार

6.4 नगरपालिका का संगठन

6.5 नगरपालिका के अधिकार एवं कार्य

6.5.1 अनिवार्य कार्य

6.5.2 ऐच्छिक कार्य

6.6 नगरपालिका के आय के साधन

6.7 नगरपालिका पर नियन्त्रण

6.8 सारांश

6.9 शब्दावली

6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

6.13 निबन्धात्मक प्रश्न

6.0 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाई में आपने देखा कि नगरों की सबसे बड़ी इकाई नगर निगम है जिसकी स्थापना कुछ बड़े आकार व जनसंख्या वाले नगरों में ही की जाती है। यद्यपि भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसकी 75 से 80 प्रतिशत जनसंख्या आज भी मूल रूप से गांवों में निवास करती है। सामाजिक जीवन की बढ़ती हुई जटिलताएं व आर्थिक आवश्यकताओं ने व्यक्ति के कार्य प्रणाली को अप्रत्याशित रूप से प्रभावित किया है। जिसके परिणामस्वरूप लोग शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य आदि आवश्यक ताओं को दृष्टिगत रख गांवों से कस्बों या शहरों

की तरफ पलायन कर रहे हैं। परिणामस्वरूप जहाँ नगर, महानगरों में तब्दील हो रहें है, वहीं कस्बे नगर का रूप ग्रहण करते जा रहे हैं।

गांवों से कस्बों या नगरों की तरफ पलयान निश्चित रूप से इन क्षेत्रों की समस्याओं को बढ़ा रहा है। इसलिए स्वतन्त्रता पूर्व ही अपेक्षाकृत छोटे नगरों में नगरपालिकाओं की स्थापना की जाने लगी थी। विभिन्न प्रान्तों के द्वारा अपने नगरीय नागरिकों की समस्याओं को दृष्टिगत रखकर नगरों में नगरपालिकाओं की स्थापना करने के साथ-साथ वहाँ के साफ-सफाई, यातायात, शिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली, पानी आदि समस्याओं के समाधान का दायित्व उन्हें सौंप दिया है। जिसके कारण निश्चित रूप से नगरीय जीवन की परिस्थितियों में सुधार हुआ है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद बढ़ते हुए औद्योगीकरण एवं भौतिक आवश्यकताओं ने मानव जीवन को प्रभावित किया। लोगों ने रोजी व रोजगार के लिए ऐसे क्षेत्रों में जाना प्रारम्भ किया, जहाँ विभिन्न किस्म के कल-कारखाने स्थापित थे। जिससे ऐसे क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व तेजी के साथ बढ़ा। परिणामस्वरूप आवश्यक संसाधनों की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता घटने के साथ-साथ इन क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, सफाई, बिजली, शुद्ध पानी आदि जैसी समस्याएं बढ़ने लगी। स्थानीय स्तर पर ही इन समस्याओं को सुलझाने के उद्देश्य से राज्यों ने अधिनियम बनाकर नगरपालिकाओं की स्थापना को व्यवहारिकता प्रदान किया।

इस इकाई में नगरीय प्रशासन के नगरपालिका निकाय का विस्तृत उल्लेख करने का प्रयास किया गया। यह जनसंख्या, आकार और अन्य मानकों के दृष्टि से द्वितीय श्रेणी के नगरों में स्थापित की जाती है। इसमें नगरपालिका के प्राचीन स्वरूप के साथ-साथ उसकी संरचना, अधिकार एवं कार्य, आय के साधन तथा नागरिकों के प्रति उसका दृष्टिकोण एवं सरकारों के नियन्त्रण का व्यापक उल्लेख किया गया है।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपारान्त आप-

- नगर पालिका के ऐतिहासिक विकास को जान सकेंगे।
- नगरीय प्रशासन में उसकी स्थिति को समझ सकेंगे।
- नगरीय समस्याओं के समाधान में इसकी भूमिका को समझ सकेंगे।
- नगर पालिकाओं की संरचना व कार्यप्रणाली को जान सकेंगे।

6.2 नगर पालिका का ऐतिहासिक विकास

भारत में नगर प्रशासन का स्वरूप अत्यन्त प्राचीनतम् है। मौर्यकाल में ग्रामीण शासन व्यवस्था के साथ-साथ नगरीय प्रशासन की व्यवस्था भी सन्तोषजनक थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार नगर का सबसे बड़ा पदाधिकारी नागरिक कहलाता था, जो नगर का प्रशासन करता था। मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र नगर (आधुनिक पटना) के विस्तृत अध्ययन के पश्चात जो विवरण दिया है, उससे विदित होता है कि वह एक प्रकार की म्यूनिसिपल व्यवस्था ही थी। जिसकी तुलना वर्तमान म्यूनिसिपल की कार्य प्रणाली से की जा सकती है। मध्यकाल में मुस्लिम शासन की स्थापना के साथ ही स्थानीय शासन के स्वरूप में परिवर्तन कर दिया गया है। जिसका वर्णन करते हुए एक लेखक ने लिखा है कि इस काल में भी देश में स्थानीय शासन विद्यमान था। नगर का प्रशासन एक अधिकारी को सुपुर्द होता था, जो कोतवाल कहलाता था। दण्ड व्यवस्था, पुलिस तथा वित्तीय मामलों में उसकी सत्ता सर्वोपरि थी।

सन् 1842 में पहला नगरपालिका अधिनियम केवल बंगाल के लिए पारित किया गया। जिसके अनुसार बंगाल के जनपदीय नगरों (जिला नगरों) में भी नगर प्रशासन का विस्तार कर दिया गया लेकिन इसका तीव्र विरोध प्रारम्भ हो गया। जिसे देखते हुए इसे समाप्त कर सन् 1850 में दूसरा नगरपालिका अधिनियम पारित किया गया। जिसे ऐच्छिक रूप से किसी भी नगर में लागू किया जा सकता था। इस अधिनियम द्वारा नगरपालिकाओं को चुंगी-कर वसूलने का अधिकार दे दिया गया। इसी अधिनियम के अनुसार उत्तर प्रदेश, बम्बई तथा अन्य प्रमुख नगरों में नगरपालिकाओं की स्थापना की गयी। इसमें नगरपालिकाओं द्वारा नागरिकों को अधिक सुविधाएं और सुरक्षा प्रदान करते हेतु आवश्यकतानुसार न्यायधीशों और कमिश्नरों की नियुक्ति का प्रावधान था। यह अधिनियम सम्पूर्ण ब्रिटिश इण्डिया में लागू किया गया था। 1857 ई0 के जन विप्लव के कारण भारत का शासन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों से निकलकर ब्रिटिश सम्राट के हाथों में आ गया। इसी बीच रेल तथा सड़कों का निर्माण एवं विस्तार ग्रामीण उद्योगों के बजाय शहरों में निर्मित होने वाली वस्तुओं के उपयोग एवं सुरक्षा तथा व्यापार हेतु शहरों एवं कस्बों का विकास तेजी से होने लगा। जिसके कारण लोग इन विकासोन्मुख स्थानों पर बसने के लिए बरबस ही आकृष्ट हुए। इसलिए नगरीय शासन को सुव्यवस्थित करने की दिशा में प्रयास तेज हो गया। इसलिए 1861 ई0 में 'टाऊन इम्प्रूवमेंट एक्ट' पारित किया गया। इसके साथ-साथ 1861 ई0 में उत्तर पश्चिमी प्रान्तों 1864 ई0 में बंगाल प्रान्त, 1865 ई0 में मद्रास तथा 1867 ई0 में पंजाब में नगर पालिका अधिनियम पारित किये गये। इन

एक्टों द्वारा लगभग सभी प्रान्तों के प्रमुख नगरों में स्वायत्त शासन संस्थाओं की स्थापना करके नगरीय स्थानीय शासन का विकास किया गया।

1870 में लार्ड मेयो ने अपने विकेन्द्रीकरण प्रस्ताव में इस बात पर बल दिया कि भारतीयों को प्रशासनिक कार्यों में अधिकतम् सहभागिता देने के दृष्टि से नगरीय स्थानीय प्रशासन की इकाईयों का विकास किया जाय। इस प्रस्ताव में कहा गया था कि ''यदि इस प्रस्ताव को पूर्ण अर्थ में और पूरी निष्ठा के साथ कार्यान्वित किया जाय तो इससे स्वशासन का विकास करने, म्यूनिसिपल संस्थाओं को सशक्त बनाने और भारतीय तथा यूरोपीय लोगों को प्रशासनिक मामलों के साथ पहले से कही अधिक सीमा तक सम्बद्ध करने का अवसर मिलेगा।'' सन् 1881ई0 के अन्त तक ब्रिटिश इण्डिया के विभिन्न प्रान्तों में नगरपालिकाओं की स्थिति निम्न प्रकार थी-

प्रान्त का नाम	**कुल नगरपालिका सदस्य**	**पूर्ण अथवा अर्द्ध निर्वाचित सदस्य**	**नियुक्त सदस्य**
अवध प्रदेश(उत्तर प्रदेश)	107	75	32
पंजाब	197	05	192
मध्य प्रदेश	61	61	135
बंगाल	138	03	- -
मद्रास	47	12	35
बम्बई	162	19	143

उपर्युक्त आकड़ों से स्पष्ट है कि लार्ड मेयो के प्रस्ताव के अनुरूप सत्ता का विकेन्द्रिकर कर नगरपालिकाओं में कुछ हद तक निर्वाचित सदस्यों को प्रवेश दिया गया। लार्ड मेयो के प्रस्ताव को सुदृढ़ता प्रदान करने का कार्य 1882 ई0 में लार्ड रिपन के द्वारा किया गया। लार्ड रिपन के प्रस्ताव की प्रमुख संस्तुतियां निम्नलिखित थी-

1. ब्रिटिश इण्डिया के समस्त समृद्ध नगरों में स्थानीय संस्थाओं की स्थापना की जाये। इनका अधिकार क्षेत्र सीमित रखा जाय ताकि इन स्वायत्त संस्थाओं में भाग लेने वाले सदस्य स्थानीय समस्याओं का गहन अध्ययन कर सकें।
2. इन संस्थाओं में गैर सरकारी सदस्यों की संख्या 2/3 तथा सरकारी सदस्यों की संख्या 1/3 कर दी जाये। गैर- सरकारी सदस्यों के निर्वाचन की व्यवस्था की जाय।

3. इन निकायों के गैर सरकारी सदस्यों को प्रान्तीय सरकार द्वारा स्वीकृत किया जाना आवश्यक कर दिया गया।

लार्ड रिपन का प्रस्ताव नगरीय स्वशासन के इकाईयों के गठन का आधार बना। इसलिए कुछ विद्वानों ने लार्ड रिपन के प्रस्ताव को नगरीय स्थानीय स्वशासन के मैग्नाकार्टा की संज्ञा दी है।

भारत में नगरीय शासन (नगरपालिका) की स्थापना के दृष्टि से 'राजकीय विकेन्द्रीकरण आयोग' एक महत्वपूर्ण पड़ाव है। जिसकी स्थापना सन् 1907 ई0 में की गयी और जिसने अपनी रिपोर्ट 1909 ई0 में प्रस्तुत की। इसकी प्रमुख संस्तुतियों का संक्षेप में वर्णन निम्न प्रकार किया जा सकता है-

- नगरीय क्षेत्रों में नगरपालिकाओं का निर्माण किया जाय जिसका अध्यक्ष गैर-सरकारी और निर्वाचित व्यक्ति हो उसके अधिकारों में भी वृद्धि कर दी जाय।
- नगरपालिका के सदस्यों का निर्वाचन नगर पालिका के कर दाताओं के द्वारा किया जाना चाहिए।
- नगरपालिकाओं को इतनी शक्ति अवश्य प्रदान की जाय जिससे वे कर निर्धारित कर न्यूनतम धनराशि अपने कोष में इकट्ठा कर अपने बजट का निर्धारण कर सकें।
- बड़े नगरों में नगरपालिका को एक पूर्णकालिक नामित अधिकारी की सेवाऐं उपलब्ध करायी जाय, जिससे वह स्थानीय कर्मचारियों पर नियन्त्रण रखते हुए उनसे अपने दायित्वों का निर्वहन करा सके।
- नगरपालिकाओं के ऋण लेने पर सरकार का नियन्त्रण बना रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त नगरपालिका की सम्पत्ति पट्टे पर देने या बेचने के पूर्व उस पर सरकार की स्वीकृति अवश्य ली जानी चाहिए।
- प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व नगरपालिका का हो और यदि वह चाहे और उसके पास संसाधन हो तो वह उच्च प्राथमिक व माध्यमिक विद्यालयों पर भी खर्च कर सके।

इस काल में नगरपालिकाओं के आय के साधन लगभग दो गुने हो गये फिर भी उनकी स्थिति में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं हुआ। 1918 ई0 में भारत सरकार ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें प्रमुख रूप से निम्नलिखित प्रावधान किये गये थे-

- समस्त स्वायत्तशासी संस्थाओं में निर्वाचित सदस्यो की संख्या 3/4 होनी चाहिए तथा अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए इस वर्ग के सदस्यों को नामित किया जाना चाहिए।

- निर्वाचन तथा मताधिकार को व्यापक बनाया जाना चाहिए। नगरपालिका का अध्यक्ष सामान्यतः गैर-सरकारी तथा निर्वाचित व्यक्ति को ही बनाया जाय और यदि ऐसा न हो तो बहुमत गैर-सरकारी सदस्यों का ही होना चाहिए।
- बड़े नगरों में नगरपालिकाओं के प्रशासन का संचालन हेतु प्रशासनिक अधिकारी बोर्ड गठित किया जाय, जिसकी स्वीकृति राज्य सरकार द्वारा की जाय।
- नगरपालिकाओं को अपने कार्य क्षेत्र के भीतर कर लगाने तथा अपने वेतनभोगी कर्मचारियों पर नियन्त्रण रखने का व्यापक अधिकार दिया जाय।

सन् 1921 ई0 में सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत में मताधिकार को व्यापक बनाने का प्रयास किया गया। अब नगरपालिकाओं के मतदान में उन सभी लोगों का भाग लेने का अधिकार दिया गया जो नगरपालिका को कर देते थे या विधान परिषद के चुनाव में मतदाता थे या नगरपालिका सीमा या उससे दो मील के अन्दर निवास करते थे। 1924 में एक अधिनियम बनाकर भारतीय महिलाओं को भी नगरपालिका का सदस्य चुने जाने का अधिकार दिया गया।

भारत के अधिकांश प्रान्तों के नगरों में स्वतन्त्रता पूर्व ही अधिनियम बनाकर नगरपालिकाओं की स्थापना कर दी गयी थी। जैसे- बम्बई जिला नगरपालिका अधिनियम 1901, पंजाब नगरपालिका अधिनियम 1911, संयुक्त प्रान्त नगरपालिका अधिनियम 1916, मद्रास जिला नगरपालिका अधिनियम 1920, बिहार एवं उड़ीसा नगरपालिका अधिनियम 1922, बम्बई म्यूनिसिपल बोर्ड अधिनियम 1925, बंगाल नगरपालिका अधिनियम 1932 आदि।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी नगरीय शासन के प्रति उपेक्षात्मक रवैया ही देखने को मिलता है। यद्यपि 1956 ई0 में राज्यों के पुनर्गठन के तत्काल बाद कई राज्यों में नगरपालिका अधिनियम बनाये गये, क्योंकि राज्यों के पुनर्गठन के बाद एक ही अधिनियम द्वारा कई राज्यो या एक ही राज्य कई अधिनियमों के आधार पर नगरपालिकाओं का संचालन कर रहे थे, जबकि अलग-अलग राज्यों की परिस्थितियां भिन्न-भिन्न थी। तृतीय पंचवर्षीय योजना में नगरीय प्रशासन को महत्वपूर्ण मानते हुए नगरों और कस्बों के नागरिकों के जीवन स्तर को बेहतर बनाने के लिए साधन जुटाने पर बल दिया गया। बढ़ते हुए औद्योगीकरण व व्यवसायीकरण ने नगरों की जनसंख्या को अप्रत्याशित रूप से बढ़ा दिया है। जिसके कारण इन क्षेत्रों की समस्याएं विकराल रूप धारण कर रही है। जिनका उन्मूलन जनता और स्थानीय संस्थाओं के सहयोग से ही सम्भव है। 1971 ई0 तक भारत में नगरपालिकाओं की संख्या बढ़कर लगभग 1493 हो गयी थी। नगरीय स्वशासन की दिशा में एक ठोस पहल प्रधानमन्त्री राजीव गांधी

के शासन काल में 65वें संविधान संसोधन अधिनियम के रूप में की गयी थी लेकिन विपक्षी दलों के विरोध के कारण यह राज्य सभा में पारित नहीं हो सका जबकि लोक सभा ने इसे बहुमत से पारित कर दिया था। 65वें संविधान संसोधन की विसंगतियों को दूर करते हुए प्रधानमन्त्री नरसिंह राव के शासन काल में 74वां संविधान संसोधन विधेयक संसद में पेश किया गया जो संसद के दोनों सदनों के बहुमत से पारित हो गया और राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त कर इस अधिनियम ने नगरीय संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया। अतः अब इनकी उपेक्षा करना सरकारों के लिए सम्भव नहीं रह गया है। बढ़ते हुए औद्योगीकरण एवं नगरीकरण का ही परिणाम है कि नगरपालिकाओं की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। इसका अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि सन् 1971 में इनकी संख्या 1493 थी जो बढ़कर सन् 1990 में 1770 हो गयी।

6.3 नगरपालिकाओं की स्थापना का आधार

वर्तमान नगरों एवं शहरों में नगरपालिका स्थानीय स्वशासन की अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली संस्था है। जिसकी स्थापना विभिन्न नगरों में नगरवासियों की बढ़ती हुई समस्याओं का निदान कर उनको जीवन के अनुकुल परिस्थितियां उपलब्ध करना होता है। किसी क्षेत्र विशेष में व्यवसाय तथा अन्य सुविधाओं के कारण जब लोग वहाँ बसने लगते है तो स्वाभाविक रूप से नागरिक समस्याओं की उत्पत्ति होती है। नगरपालिकाओं की स्थापना के लिए किसी शहर में कुछ न्यूनतम जनसंख्या का होना आवश्यक है, किन्तु प्रश्न यह उठता है कि वह न्यूनतम जनसंख्या क्या हो? इस सम्बन्ध में अलग-अलग राज्यों में उनकी स्थितियों व परिस्थितियों के अनुसार अलग-अलग मानक निर्धारित किया गया है। कुछ राज्यों में नगरपालिकाओं की स्थापना के लिए आवश्यक न्यूनतम जनसंख्या निम्न प्रकार है-

राज्य	**जनसंख्या**
उत्तर प्रदेश	20000
बिहार	5000
बंगाल	20000
मद्रास	20000
गुजरात	30000
आन्ध्र प्रदेश	25000

पंजाब व हरियाण	10000
महाराष्ट्र	10000
उड़ीसा	5000

किसी भी नगरीय क्षेत्र में नगरपालिका की स्थापना के लिए एक आवश्यक शर्त यह भी है कि वहाँ की जनता इसके लिए साधन जुटाने के योग्य तथा इच्छुक हो। वस्तुतः कुछ राज्यों में नगरपालिकाओं की स्थापना के लिए जनसंख्या और वार्षिक आय दोनों ही मानक निर्धारित किये गये है। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश में नगरपालिका की स्थापना के लिए जनसंख्या कम से कम 20 हजार तथा वार्षिक आय 40 हजार आवश्यक मानी गयी है। आय सम्बन्धी मानक उस स्थिति में ज्यादा महत्वपूर्ण बन जाता है, जबकि किसी कम जनसंख्या वाले क्षेत्र में नगरपालिका स्थापित करने की अनुज्ञा दे दी जाती है। इस प्रकार यह देखने को मिलता है कि किसी नगर को नगरपालिका का दर्जा प्रदान करने लिए आय सम्बन्धी मानक का प्राथमिक महत्व नहीं होता है, लेकिन वह उस शहर की श्रेणी या दर्जा निर्धारित करने में निर्णायक मानी जाती है।

6.4 नगरपालिका का संगठन

नगर निगमों की भाँति नगर पालिका के भी चार प्रमुख घटक होते हैं- नगर परिषद, अध्यक्ष, नगरपालिका आयुक्त और समितियां।

1. **नगर परिषद-** नगर पालिका में 'नगर परिषद' जनता की सभा मानी जाती है। जिसमें प्रमुख रूप से तीन प्रकार के सदस्य होते है- निर्वाचित सदस्य, नामित सदस्य और नगर वृद्ध(एल्डरमैन)। निर्वाचित सदस्यों का चुनाव नगर की जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है। इसके लिए नगर क्षेत्र को उतने ही क्षेत्रों (वार्डों) में बांट दिया जाता है, जितना जनसंख्या के आधार पर नगर परिषद के सदस्यों की संख्या निश्चित होती है। प्रत्येक वार्ड से एक प्रतिनिधि चुने जाने की व्यवस्था होती है। इन चुने हुए सदस्यों को पार्षद के नाम से सम्बोधित करते हैं। नगर परिषद में अनुसूचित जाति, जनजाति तथा स्त्रियों के लिए यथासम्भव स्थान आरक्षित होता है, लेकिन अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित स्थान का अनुपात वही होगा जो उस नगर के सम्पूर्ण जनसंख्या में अनुसूचित जाति व जनजाति के जनसंख्या का है। लोकसभा व विधान सभा के वे सदस्य भी नगरपालिका के नामित (पदेन) सदस्य होते हैं, जिनके निर्वाचन क्षेत्र का पूर्ण या आंषिक भाग नगरपालिका क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता हो। इसी प्रकार राज्य सभा या विधान परिषद के वे सदस्य भी जो नगरपालिका क्षेत्र में मतदाता के रूप में पंजीकृत

है नगरपालिका के सदस्य होते हैं। कुछ सदस्यों को नगरपालिका में राज्य सरकार के द्वारा मनोनीत किया जाता है। इस हेतु राज्य सरकार किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने या किसी ऐसे व्यक्ति को जिसकी उपस्थिति नगर परिषद के लिए लाभदायक हो, नगरपालिका परिषद के सदस्य के रूप में नामित करती है। इन सदस्यों को नगर परिषद की बैठकों व चर्चा परिचर्चा में भाग लेने का अधिकार तो होता है, लेकिन परिषद में किसी विषय पर मतदान की स्थिति में इनको मत देने का अधिकार नहीं होता है। नगर परिषद को विभिन्न राज्यों में अलग-अलग नामों से भी सम्बोधित किया जाता है। जैसे- म्यूनिसिपल कमेटी, म्यूनिसिपल काउन्सिल, म्यूनिसिपल बोर्ड आदि।

नगर परिषद के सदस्यों का चुनाव जनसंख्या के आधार पर होता है। इसलिए अलग-अलग नगरपालिकाओं के परिषदों का आकार भी छोटा-बड़ा होता है। उत्तर प्रदेश में जिन नगरपालिकाओं की जनसंख्या पचास हजार से कम है, वहाँ 12 सदस्य, पचास हजार से अधिक तथा एक लाख से कम है तो 16 सदस्य, एक लाख से डेढ़ लाख तक 20 सदस्य, तथा डेढ़ लाख से दो लाख तक 28 सदस्य होते हैं। परिषद का कार्यकाल पांच वर्ष होता है, किन्तु राज्य सरकार नगर परिषद की अवधि समाप्त होने के पूर्व भी उसको विघटित कर उसके कार्यों को अपने हाथ में ले सकती है। नगर परिषद नगरपालिका का विधायी अंग होता है, जो नगरपालिका अधिनियम द्वारा निश्चित सीमाओं के भीतर नगर क्षेत्र के लिए उप-विधियों का निर्माण करती है।

2. **अध्यक्ष-** नगरपालिका का एक अध्यक्ष होता है जो नगरपालिका का प्रमुख होता है। अध्यक्ष का पद प्रतिष्ठा एवं सम्मान से परिपूर्ण होता है, इसलिए उसे नगर का प्रथम नागरिक भी कहा जाता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व नगरपालिका के अध्यक्ष पद पर प्रायः सरकारी अधिकारी पदासीन होते थे, लेकिन स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद यह प्रथा समाप्त कर इस पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित व्यक्ति के आसीन होने की व्यवस्था कर दी गयी है। नगरपालिका अध्यक्षों के चुनाव में भी अलग-अलग राज्यों में असमानता पायी जाती है। उत्तर प्रदेश में अध्यक्ष का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से जनता के द्वारा किया जाता है तो कई राज्यों में अध्यक्ष का चुनाव पार्षदों (परिषद के निर्वाचित सदस्यों) द्वारा अपने में से ही किया जाता है। नगरपालिका अध्यक्ष परिषद के बैठकों का सभापतित्व करता है। वह परिषद के विचार-विमर्श में व्यवस्था बनाये रखते हुए उसका मार्गदर्शन भी करता है, क्योंकि वह सदन (परिषद) का नेता भी होता है। वह नगरपालिका के वित्तीय तथा प्रशासनिक कृत्यों पर निगरानी रखता है। जब कभी परिषद में किसी मुद्दे पर मतदान कि

स्थिति में पक्ष व विपक्ष में समान मत में पड़े तो उसे निर्णायक मत देने का भी अधिकार होता है। उसे नगरपालिका के सभी अभिलेखों का निरीक्षण करने का अधिकार है और वह नगर प्रशासन से सम्बन्धित किसी भी विषय की जानकारी मांग सकता है। परिषद तथा सरकार के बीच बातचीत भी उसी के माध्यम से होती है।

नगरपालिका के अध्यक्ष को पार्षदों द्वारा अविश्वास प्रस्ताव पारित कर उसके पद से मुक्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त निम्न कारणों से राज्य सरकार भी उसको पदमुक्त कर सकती है-

- यदि वह मतदाता की अर्हताएं पूरी न करता हो।
- यदि वह सदस्य के रूप में अपने दायित्वों का सतत निर्वहन न कर रहा हो।
- यदि वह अपना सामान्य निवास स्थान त्याग कर अन्यत्र कही जाकर बस जाता है।
- यदि वह अपने आर्थिक हित हेतु नगरपालिका के किसी कार्य को प्रभावित करता है।

3. **नगरपालिका आयुक्त-** नगरपालिका के कार्यकारी विभाग का प्रमुख आयुक्त होता है, जिसकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों में से की जाती है। राज्य सरकार ही उसकी सेवा शर्ते तथा वेतन भी निश्चित करती है। इसका वेतन नगरपालिका कोष से दिया जाता है। आयुक्त को अनेक कार्य सम्पन्न करने पड़ते है। वह समितियों तथा परिषद का सचिव होता है। वह परिषद तथा समितियों की बैठको में भाग लेता है, भाषण देता है लेकिन उसे कोई प्रस्ताव रखने या मत देने का अधिकार नहीं होता है। वह नगरपालिका के विभिन्न प्रशासनिक विभागों को संगठित करता है तथा उनमें कार्यों का बंटवारा करता है। वह नगरपालिका कार्यालय का प्रमुख होता है, इसलिए समस्त अभिलेख उसके अधीन होते है। नगरपालिका के आय-व्यय का ब्यौरा तथा वार्षिक रिपोर्ट भी उसी के द्वारा तैयार की जाती है। उसके कार्यों में सहयोग देने के लिए राज्य सरकार अभियन्ता, सेनेटरी, इन्सपेक्टर, चिकित्साधिकारी आदि की नियुक्ति करती है। जबकि कुछ कर्मचारियों की नियुक्ति अध्यक्ष या आयुक्त के द्वारा भी चयन समिति के माध्यम से की जा सकती है।

4. **समितियां-** नगरपालिका अधिनियमों में उसके कार्यों को कुशलतापूर्वक करने में सहयोग देने के लिए समितियों के निर्माण का प्रावधान होता है। ये समितियां प्रायः दो प्रकार की होती हैं- स्थायी समिति और अन्य समितियां। स्थायी समितियों का निर्माण नगरपालिका अधिनियम के अन्तर्गत किया जाता है, जबकि अस्थायी या अन्य समितियों का निर्माण समय-समय पर परिषद द्वारा बनाये गये नियमों के आधार

पर किया जाता है। नगरपालिका के कार्यों के सम्पादन में इन समितियों की प्रबल भूमिका होती है। समिति के सदस्य तथा अध्यक्ष प्रायः परिषद के सदस्य ही होते है, लेकिन किसी विशेष प्रकृति के कार्य को सम्पन्न करने के लिए राज्य सरकार दक्षता प्राप्त व ऐसे अनुभवी लोगों को भी समिति में रख सकती है, जो आवश्यक हों।

6.5 नगरपालिका के अधिकार एवं कार्य

नगरपालिका नगरीय स्थानीय स्वशासन की एक महत्वपूर्ण इकाई है। जिसके स्थापना का उद्देश्य उसके क्षेत्र विशेष में निवास करने वाले लोगो को मूलभूत सुविधाएं मुहैया कराना है। जिससे वे अपने व्यक्तित्व का विकास करते हुए प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकें, इसलिए राज्य सरकार अधिनियम बनाकर नगरपालिकाओं की स्थापना करती है और उन्हें कुछ अधिकार व कार्य सौंपती है। यद्यपि ऐसे कार्यों की सूची अत्यन्त लम्बी होती है, इसलिए नगरपालिका के कार्यों को अनिवार्य व ऐच्छिक दो श्रेणियों में विभक्त किया जाता है। इसमें अनिवार्य कार्यों को करना, जहाँ उसके लिए आवश्यक एवं बाध्यकारी होता है, वहीं ऐच्छिक कार्यों को करना उसकी इच्छा और संसाधनों पर निर्भर करता है।

6.5.1 अनिवार्य कार्य

नगरपालिका के प्रमुख अनिवार्य कार्यों का विवेचन संक्षेप में निम्न प्रकार किया जा सकता है-

1. शुद्ध व स्वास्थ्यवर्द्धक जल की आपूर्ति सुनिश्चित करना।
2. सार्वजनिक चिकित्सालयों की स्थापना तथा अनुरक्षण।
3. प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना व देख रेख।
4. जन्म और मृत्यु का पंजीकरण।
5. गलियों का नाम करण तथा मकानों का नम्बर लगाना।
6. सार्वजनिक रास्तों, पुलों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों से अवरोधकों को हटाना।
7. सार्वजनिक स्वास्थ्य हेतु अस्पतालों की व्यवस्था करना।
8. प्रकाश व बिजली की व्यवस्था करना।
9. सार्वजनिक स्थानों, मार्गों व नालियों की साफ-सफाई की व्यवस्था।
10. शमशान गृहों, बूचड़खानों व कब्रिस्तानों की व्यवस्था।
11. सार्वजनिक शौचालयों का प्रबन्ध।

12. घृणित, क्षोभकर तथा आपत्तिजनक व्यापार व व्यवसाय पर प्रतिबन्ध लगाना।

13. आग बुझाने की व्यवस्था।

14. गरीबों व निसहायों के लिए आश्रय स्थल का निर्माण।

15. नगर के विकास को गति प्रदान करने हेतु कारगर व प्रभावी योजनाएं निर्मित करना।

6.5.2 ऐच्छिक कार्य

नगरपालिका के प्रमुख ऐच्छिक कार्य निम्नांकित है-

1. खतरनाक स्थानों या ईमारतों को नियन्त्रण में लेना या ध्वस्त करना।
2. सड़कों के किनारे वृक्षारोपण करना।
3. सार्वजनिक पार्कों, बागों, पुस्तकालयों, संग्राहलयों, अनाथालयों व स्त्रियों हेतु उद्धार-गृहों का निर्माण व परिरक्षण।
4. सर्वेक्षण करना तथा विभिन्न क्षेत्रों का खाका तैयार करना।
5. सार्वजनिक स्वागत समारोहों, सार्वजनिक प्रदर्शनियों तथा सार्वजनिक मनोरंजन का प्रबन्ध करना।
6. नगरपालिका कर्मचारियों के कल्याण वृद्धि की व्यवस्था करना।
7. अवारा पशुओं के बन्दीकरण या समापन का प्रबन्ध करना।
8. हाटों व बाजारों के लगाने की व्यवस्था करना।
9. प्राथमिक शिक्षा के अतिरिक्त भी अन्य प्रकार के शिक्षा की व्यवस्था करना।
10. सार्वजनिक व सांस्कृतिक हित के दृष्टि से अन्य कार्य करना।

6.6 नगरपालिका के आय के साधन

नगरपालिका अपने कर्तव्यों का पालन ठीक तरीके से कर सके इसके लिए उसके पास वित्तीय साधनों का होना अत्यन्त आवश्यक है, इसलिए नगरपालिका अधिनियमों में ही इनके वित्तीय प्रबन्ध का उल्लेख स्पष्ट रूप से कर दिया जाता है। इसके आय के प्रमुख स्रोतो का उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है- अनुदान, कर, गैर-कर स्रोत और लाभकारी व्यवसाय।

1. **अनुदान-** स्थानीय समस्याओं का समाधान भी स्थानीय स्तर पर कर दिया जाय। इस मान्यता ने निश्चित रूप से नगरपालिका जैसी स्थानीय स्वशासन की इकाई के दायित्व को बढ़ा दिया लेकिन दायित्व के अनुरूप नगरपालिका की आय नहीं बढ़ पायी है। इसलिए राज्य व केन्द्र सरकारों के द्वारा नगरपालिकाओं

के वित्तीय आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए अनुदान दिया जाता है। यह अनुदान इनकी आय का एक प्रमुख स्रोत होता है।

2. **कर-** नगरपालिका अपनी वित्तीय स्थिति सुदृढ़ करने के लिए अपने कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत निवास करने वाले लोगों से अनेक तरह के कर वसूल करती है। ये कर नगरपालिका के आय के सबसे प्रमुख साधन होते हैं। नगरपालिका प्रमुख रूप से निम्नलिखित कर आरोपित करती है- सम्पत्ति कर, व्यवसाय पर कर, चुंगी कर, पशु व वाहन कर, जल कर, मनोरंजन कर, प्रकाश कर और शौचालय एवं जल निकासी कर।
3. **गैर-कर स्रोत-** गैर-कर स्रोतों में उन स्रोतो को शामिल किया जाता है जो कर से इतर नगरपालिका के आय के साधन होते हैं। इन स्रोतों में प्रमुख रूप से भवनों सम्बन्धित फीसें, संचार साधनों से आय तथा घृणित व खतरनाक व्यवसाय के लिए लाइसेंस शुल्क आदि को शामिल किया जाता है। इसके अतिरिक्त यदि किसी के द्वारा नगरपालिका के प्रावधानों का उल्लंघन किया जाय तो वह उस पर जुर्माना लगा सकती है। नगरपालिका राज्य सरकार की अनुमति से अपने किसी कार्य को पूरा करने हेतु सरकार या सार्वजनिक क्षेत्र में ऋण भी ले सकती है।
4. **लाभकारी व्यवसाय-** नगरपालिका अतिरिक्त आय प्राप्त करने के उद्देश्य से लाभकारी व्यवसाय भी संचालित कर सकती है। व्यवसाय या उद्यम जो नगरपालिका द्वारा संचालित किये जाते हैं, उनमें- मुर्गीपालन, थियेटर, चलचित्र आदि व्यवसायिक संस्थान प्रमुख है।

6.7 नगरपालिका पर नियन्त्रण

संघीय क्षेत्र की नगरपालिकाओं का निर्माण संसद द्वारा निर्मित विशेष विधि तथा राज्यों में नगरपालिकाओं की स्थापना विधानमण्डल द्वारा पारित अधिनियम से होता है, इसलिए संघ क्षेत्र के नगरपालिका पर केन्द्र सरकार तथा राज्यों के नगरपालिकाओं पर राज्य सरकार का नियन्त्रण होता है। जिस विधि द्वारा नगरपालिका की स्थापना की जाती है, उसी के द्वारा उस पर नियन्त्रण का भी प्रावधान कर दिया जाता है। सरकार नगरपालिका द्वारा किये जाने वाले कार्यों का निरीक्षण कर सकती है। आवश्यक होने पर नगरपालिका के क्रियाकलापों के जांच का आदेश दे सकती है। यदि नगरपालिका के द्वारा अपने कर्तव्यों का पालन सुचारु रूप से न किया जाय या अपने कार्यों के माध्यम से किसी को व्यक्तिगत लाभ पहुँचाने का प्रयास किया जाय तो सरकार नगरपालिका से उसका पक्ष पूछती है। यदि उसके बाद सरकार को यह आभास हो जाय कि नगरपालिका को विघटित करना आवश्यक है तो वह उसे भंग कर उसके दायित्वों का निर्वहन करने हेतु किसी को नियुक्त कर सकती है। सरकारें जो अनुदान नगरपालिकाओं

को प्रदान करती है, उसके लिए कार्य भी उन्हीं के द्वारा निश्चित होता है। अर्थात सरकार जिस कार्य के लिए अनुदान देती है नगरपालिका उसका उपयोग उसी कार्य हेतु कर सकती है। कुछ कार्यों को करने से पहले नगरपालिकाओं को राज्य सरकार से अनुमति भी लेनी पड़ती है। राज्य सरकार का अंकेक्षक (Auditor) नगरपालिका के हिसाब-किताब की जांच भी समय-समय पर करता रहता है। इसके अतिरिक्त नगरपालिका आयुक्त तथा अन्य महत्वपूर्ण प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति और पदच्युति का अधिकार भी सरकारों के पास होता है। ये अधिकारी तथा कर्मचारी अन्तिम रूप से अपने कार्यों के लिए सरकार के प्रति ही जबाबदेह होते हैं। नगरपालिकाओं पर सरकार के नियन्त्रण को इंगित करते हुए श्री राजेश्वर ने कहा है कि ''स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थाएं स्वतन्त्र सम्प्रभु संस्थाएं नहीं हैं, बल्कि वे तो सरकार तथा न्यायिक संस्थाओं द्वारा नियन्त्रित होने वाली संस्थाएं हैं।''

अभ्यास प्रश्न-

1. प्राचीन पाटलिपुत्र नगर को वर्तमान में किस नाम से जाना जाता है?
2. मध्यकाल (मुस्लिमकाल) में नगर प्रशासन के अधिकारी को कहा जाता था?
3. सबसे पहले नगरपालिका अधिनियम 1842ई0 में किस राज्य के लिए पारित किया गया?
4. स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सर्वप्रथम कब राज्यों का पुनर्गठन कब किया गया था?
5. उत्तर प्रदेश में नगरपालिका की स्थापना के लिए न्यूनतम जनसंख्या कितनी होनी चाहिए?
6. नगरपालिका का विधायी अंग किसे कहा जाता है?
7. नगरपालिका का कार्यकारी अधिकारी होता है।
8. नगरपालिका के कार्यों को कितने भागों में बांटा जा सकता है?

6.8 सारांश

नगरीय प्रशासन के क्षेत्र में नगरपालिकाओं का अस्तित्व भी प्राचीनतम् है। मौर्यकाल में मेगस्थनीज की पुस्तक 'इण्डिका' में पाटलिपुत्र (पटना) का जो विस्तृत उल्लेख मिलता है, वह आधुनिक म्यूनिसिपल व्यवस्था से मिलता-जुलता है। मुस्लिम काल में भी नगर के अधिकारी के रूप में कोतवाल को दण्ड व्यवस्था, पुलिस व वित्तीय क्षेत्र में सर्वोच्चता प्रदान की गयी थी। लेकिन नगरपालिका के विकास की दिशा में ठोस पहल 1842 ई0 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में की गयी जबकि बंगाल के जनपदीय नगरों में नगरपालिकाओं की स्थापना के लिए नगरपालिका अधिनियम पारित किया गया। किन्तु जनता के व्यापक विरोध के कारण यह अधिनियम वापस ले लिया गया। 1850 ई0 में सम्पूर्ण ब्रिटिश इण्डिया के लिए नगरपालिका अधिनियम बनाया

गया। जिसको ऐच्छिक रूप से किसी भी नगर में लागू किया जा सकता था। इसके अनुरूप उत्तर प्रदेश, बम्बई तथा अन्य प्रदेशों के प्रमुख नगरों में नगरपालिकाओं की स्थापना की गयी। नगरीय शासन को सुव्यवस्थित करने के उद्देश्य से 1861 ई0 में 'टाउन इम्प्रूवमेंट एक्ट' पारित किया गया। जिसके आलोक में 1861 ई0 में उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों, 1864 ई0 में बंगाल, 1865 ई0 में मद्रास तथा 1867 ई0 में पंजाब प्रान्त में नगरपालिका अधिनियम बनाये गये। 1870 ई0 में लार्ड मेयो ने अपने विकेन्द्रीकरण प्रस्ताव में भारतीयों की प्रशासनिक सहभागिता को बढ़ाने के लिए नगरीय शासन के इकाईयों के विकास पर जोर दिया। नगरीय शासन में नगरपालिकाओं को मजबूत स्थिति 1909 ई0 के राजकीय विकेन्द्रीकरण आयोग के संस्तुतियों द्वारा प्रदान करने का प्रयास किया गया।

1947 ई0 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद यद्यपि नगरीय शासन के प्रति उपेक्षात्मक रवैया देखने को मिलता है। 1956 ई0 में राज्यों के पुनर्गठन के बाद कई राज्यों ने नगरपालिका अधिनियमों का निर्माण किया गया। तृतीय पंचवर्षीय योजना में नगरों की समस्याओं के समाधान के लिए साधन जुटाने पर बल दिया गया। नगरीय प्रशासन के दिशा में संवैधानिक प्रयास राजीव गांधी के प्रधानमन्त्रित्व काल में 65वें संविधान संसोधन के रूप में किया गया जो असफल सिद्ध हुआ। इससे सीख लेते हुए प्रधानमन्त्री पी0बी0 नरसिंह राव के शासन काल में 74वां संविधान संसोधन पारित किया गया। इस संसोधन विधेयक द्वारा नगरीय स्थानीय स्वशासन को संवैधानिकता प्रदान कर दी गयी है।

नगरपालिका नगरीय क्षेत्रों के लोगों को मूलभूत सुविधाऐं मुहैया कराने वाली एक महत्वपूर्ण संस्था का रूप धारण कर चुकी है। वर्तमान में नगरीय जीवन को सरल व सुविधापूर्ण बनाने में इसकी भूमिका इस हद तक बढ़ गयी है कि यह कहना अतिश्योक्ति पूर्ण नहीं होगा कि नगरपालिका के बिना उस क्षेत्र के लोगों का जीवन दुष्कर हो जायेगा, विकास अवरूद्ध हो जायेगा और व्यक्तित्व कुंठित हो जायेगा। नगरपालिका वर्तमान मूलभूत आवश्यकताओं शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, बिजली, पानी आदि को सुलभ बनाती है। जिससे नगरीय क्षेत्र के निवासी तनावमुक्त होकर अपने विकास के लिए सतत प्रयास करते हुए प्रगति के पथ पर अग्रसर होते रहते हैं।

6.9 शब्दावली

प्रशासन- विधिक आधार पर जनता को शासित करने वाला तन्त्र, नागरिक- ऐसे लोग जिन्हें संविधान द्वारा राजनीतिक अधिकार प्रदान जाता है, जनपदीय- जनपद से सम्बन्धित, एक्ट- अधिनियम, म्यूनिसिपल- नगरपालिका, मैग्नाकार्टा- जनता के हित मे लिया गया बड़ा प्रशासनिक निर्णय, संसाधन- जीवन को सुलभ बनाने के साधन, निर्वाचन- चुनाव, मताधिकार- मत देने का अधिकार

6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. पटना, **2.** कोतवाल, **3.** केवल बंगाल के लिए, **4.** 1956ई0 में, **5.** 20 हजार, **6.** नगर परिषद, **7.** नगर पालिका आयुक्त, **8.** दो भागों में, अनिवार्य कार्य व ऐच्छिक कार्य

6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 बी0एल0 फाड़िया, भारत में लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 1996
2. राधाकृष्ण चौधरी व अन्य, भारत में स्थानीय शासन, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिकेशन्स पटना, 1982
3. एम0पी0 त्यागी एवं आर0के0 रस्तोगी, स्थानीय स्वशासन, संजीव प्रकाशन, मेरठ।
4. डॉ0 मीनाक्षी पवार, स्थानीय स्वायत्त शासन, निकुंज प्रकाशन बड़वानी, मध्यप्रदेश।
5. डॉ0 ए0पी0 अवस्थी, भारतीय राज व्यवस्था, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
6. प्रो0 एस0आर0 माहेश्वरी, भारत में स्थानीय स्वशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक, आगरा।

6.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. राधाकृष्ण चौधरी व अन्य, भारत में स्थानीय शासन, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिकेशन्स पटना, 1982
2. एम0पी0 त्यागी एवं आर0के0 रस्तोगी, स्थानीय स्वशासन, संजीव प्रकाशन, मेरठ।
3. डॉ0 मीनाक्षी पवार, स्थानीय स्वायत्त शासन, निकुंज प्रकाशन बड़वानी, मध्य प्रदेश।
4. डॉ0 ए0पी0 अवस्थी, भारतीय राज व्यवस्था, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
5. प्रो0 एस0आर0 माहेश्वरी, भारत में स्थानीय स्वशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक, आगरा, 1999

6.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्वतन्त्रता पूर्व नगरपालिका के विकास पर एक लेख लिखें।
2. भारत में नगरपालिकाओं के गठन उनकी शक्तियों एवं उसके कार्यों का वर्णन करें।
3. नगरपालिका के आय के साधनों पर प्रकाश डालते हुए इस पर सरकारी नियन्त्रण का भी उल्लेख करें।

इकाई- 7 छावनी परिषद और औद्योगिक नगर

इकाई की संरचना

7.0 प्रस्तावना

7.1 उद्देश्य

7.2 छावनी परिषद

7.3 छावनी परिषद का संगठन

7.4 छावनी परिषद के कार्य एवं शक्तियां

7.4.1 अनिवार्य कार्य

7.4.2 ऐच्छिक कार्य

7.5 छावनी परिषद के आय के स्रोत

7.6 छावनी परिषद पर नियन्त्रण

7.7 छावनी परिषद की वर्तमान प्रासंगिकता

7.8 औद्योगिक नगरियां

7.9 औद्योगिक नगरियों की विशेषताएं

7.10 औद्योगिक नगरियों का संगठन

7.11 औद्योगिक नगरियों की वर्तमान स्थिति

7.12 सारांश

7.13 शब्दावली

7.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

7.17 निबन्धात्मक प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

छावनी शब्द का प्रयोग भारत की लोक भाषा में अस्थायी निवास स्थान के लिए किया जाता था। इसी परिप्रेक्ष्य में सैनिकों के सामरिक चालों हेतु प्रयुक्त अस्थायी आवास को छावनी शब्द से सम्बोधित किया जाता था, लेकिन

विगत लगभग 150 वर्षों से इस शब्द का प्रयोग सैनिकों के स्थायी आवासीय क्षेत्र के लिए किया जाता है। छावनी क्षेत्र भारत में प्रायः महत्वपूर्ण शहरों के समीप बसे हैं। जब किसी क्षेत्र में सैनिक निवास करने लगते हैं, तो वहाँ बड़ी संख्या में असैनिक लोग भी बस जाते हैं। छावनी का जन्म सैनिकों के कारण ही हुआ, किन्तु उनकी असैनिक संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गयी, इसलिए वहाँ के लोगो को नागरिक सुविधाएँ देने के उद्देश्य से नगरीय निकाय के रूप में छावनी परिषद की स्थापना की गयी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश के अनेक भागों में सार्वजनिक उद्योग संस्थानों की स्थापना की गयी। इनकी लागत का लगभग ग्यारह प्रतिशत इस क्षेत्र में लोगों के निवास व सुविधाओं की स्थापना पर खर्च कर दिया जाता है। उद्योगों की स्थापना के कारण उस क्षेत्र विशेष में रोजगार व व्यापार के बढ़े अवसर ने लोगों को चुम्बक की तरह इस क्षेत्र में बसने के लिए आकृष्ट किया, जिसका स्वभाविक परिणाम आबादी बढ़ने के रूप में सामने आया। इससे नगरी के आसपास गन्दे मुहल्ले तथा अनियन्त्रित व अव्यवस्थित मकान बनने लगे, जिनको नियन्त्रित व व्यवस्थित करने के लिए औद्योगिक नगरियों नामक निकाय की स्थापना की गयी।

छावनी क्षेत्र तथा औद्योगिक एरिया के नागरिकों की मूलभूत सुविधाओं को विकसित करने के लिए छावनी क्षेत्र में छावनी परिषद तथा औद्योगिक क्षेत्र में औद्योगिक नगरियों नामक नगरीय निकाय की स्थापना की जाती है जो नगरपालिका की भाँति उस छोटे से क्षेत्र के विकास के दायित्व का निर्वहन करती है। ये संस्थाएं भी नगरीय स्वायत्त शासन के इकाईयों की ही लघु रूप होती हैं, जो अपने दायित्वों का लगभग स्वतन्त्र होकर निर्वहन करने का प्रयास करती हैं।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- छावनी परिषद और औद्योगिक नगरियां क्या हैं, इस सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- इनकी स्थापना का उद्देश्य के बारे में जान पायेंगे।
- इनका संगठन कैसे होता है, इस सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- इनके आय के मुख्य स्रोतें के बारे में जान पायेंगे।
- इनका प्रमुख कार्य क्या हैं, इस बारे में जान पाओगे।

7.2 छावनी परिषद

भारत में शहरों के नजदीक जिस क्षेत्र में सैनिकों के निवास की व्यवस्था होती है वहाँ उनके साथ-साथ उनके दैनिक आवश्यकताओं में सहयोग करने वाले शिविर अनुचर, नौकर या जन-सामान्य भी बस जाते हैं। ऐसे क्षेत्र को सामान्य रूप से छावनी कहते हैं। इस क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों को कल्याणकारी और नागरिक सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए एक स्वतन्त्र निकाय की आवश्यकता महसूस की गयी, जिसे दृष्टिगत रखकर 1924 में छावनी अधिनियम पारित कर नगरीय निकाय के रूप में छावनी परिषद (Cantoment Board) की स्थापना की गयी, जो अन्य नगरीय निकायों की भाँति ही एक निगम निकाय है जिसे सम्पत्ति अर्जित करने, उसे धारण करने और संविदा में शामिल होने का अधिकार है। वह खुद 'वाद' ला सकती (मुकदमा चला सकती) है और उसके विरूद्ध भी 'वाद' लाया जा सकता है। छावनी परिषद अपने कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत निवास करने वाले लोगो के स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करने में सहयोग करती है। छावनियां वास्तव में वे केन्द्र शासित क्षेत्र हैं जो प्रत्यक्ष रूप से केन्द्रीय सरकार के प्रशासनिक नियन्त्रण में होती हैं। इस प्रकार यह स्थानीय शासन के उन निकायो से सर्वथा भिन्न होती हैं जो राज्य सरकार के अधीन हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद स्थानीय स्वशासन मन्त्रियों का एक सम्मेलन 1948 ई0 में नई दिल्ली में आयोजित किया गया। जिसमें केन्द्रीय सरकार से छावनी परिषद की सीमाओं का निर्धारण तथा छावनी अधिनियम 1924 में संसोधन हेतु सुझाव देने के लिए एक समिति नियुक्त करने की प्रार्थना की गयी। इसलिए एस0के0 पाटिल की अध्यक्षता में केन्द्रीय छावनी समिति नियुक्त की गयी। समिति ने अन्य बातों के साथ-साथ इस प्रश्न पर भी विचार किया कि परिषद में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत होने के साथ-साथ इसके अध्यक्ष का निर्वाचन भी प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचकों द्वारा किया जाय। समिति का मानना था कि ''सैनिकों में सुरक्षा, अनुशासन और स्वास्थ्य का सन्तोषजनक होना सेना की कार्यकुशलता को बनाये रखने के लिए अनिवार्य है। अतः छावनियों के प्रशासन को असैनिक बहुमत के हाथों में देने का जोखिम नहीं उठाया जा सकता है।'' समिति की प्रमुख संस्तुतियों का उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है-

1. छावनियों के नगारिक प्रशासन का पहले से अधिक लोकतन्त्रीकरण करने के लिए वयस्क मताधिकार की व्यवस्था लागू की जाय।
2. छावनी परिषद नैमी तथा तत्कालिक प्रकार के कार्यों के सम्बन्ध में अपने अधिकारियों को शक्ति प्रदान करें।

3. छावनी परिषद की कार्यकुशलता में बृद्धि तथा संदिग्धता को दूर करने के लिए छावनी अधिनियम को संशोधित किया जाय।
4. छावनी परिषद के क्षेत्राधिकार से उस असैनिक क्षेत्र को निकाल दिया जाय जो सेना के आवश्यकता के दृष्टि से निरर्थक हो।

छावनी परिषद की व्यवस्थाओं के विरूद्ध बढ़ते जनमत को दृष्टिगत रखकर सन् 1953 में छावनी परिषद अधिनियम में संशोधन कर दिया गया। इस संशोधन के बाद भी छावनी प्रशासन का बुनियादी स्वरूप सैनिक प्रकार का ही बना रहा, लेकिन निर्वाचित तत्व को शक्तिशाली बनाने के लिए निम्नलिखित परिवर्तन कर दिये गये-

1. प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के छावनी परिषदों के निर्वाचित तथा नामित सदस्यों की संख्या बराबर कर दी गयी। इसके लिए यह निश्चित किया गया कि एक सरकारी सदस्य का स्थान रिक्त रहेगा, जबकि तृतीय श्रेणी के छावनी परिषदों में केवल एक सदस्य नामित तथा अन्य निर्वाचित होते हैं।
2. सीमा दीवारों एवं इमारतों पर नियन्त्रण रखने तथा लाइसेंस देने हेतु असैनिक क्षेत्र समिति की शक्ति को बढ़ा दिया गया। इस समिति में सभी निर्वाचित सदस्य शामिल होते हैं, जिसकी अध्यक्षता परिषद का उपाध्यक्ष करता है और उसे पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त होती है।
3. निर्धारण समिति में भी निर्वाचित सदस्यों का बहुमत तथा परिषद के उपाध्यक्ष की अध्यक्षता स्थापित होती है। भवन कर इसी द्वारा निर्धारित होता है।
4. परिषद का उपाध्यक्ष ही केन्द्र के समादेश क अधिकारी की अनुपस्थिति में छावनी परिषद के बैठकों की अध्यक्षता करता है।

7.3 छावनी परिषद का संगठन

सेना का मुख्य अधिकारी ही छावनी परिषद का प्रमुख होता है। इस रूप में छावनी क्षेत्र के स्थानीय विषयों के प्रबन्ध का दारोमदार उसी के ऊपर होता है। छावनी परिषद में दो तरह के सदस्य होते हैं, पहला- आधे सदस्यों का चुनाव उस क्षेत्र में निवास करने वाले नागरिकों के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है और दूसरा- आधे सदस्य रक्षा मन्त्रालय या सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते हैं।

इनमें निर्वाचित सदस्यों का कार्यकाल तो प्रायः तीन वर्ष होता है, जबकि पदेन या मनोनीत सदस्य तब तक सदस्य बने रहते हैं जब तक कि वे उस पद पर आसीन है, जिसके कारण उनको सदस्य नामित किया गया है। छावनी बोर्ड के संगठन की तीन श्रेणियां निश्चित की गयी हैं। जिनका उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है-

- प्रथम श्रेणी छावनी परिषद जिसकी असैनिक जनसंख्या एक हजार से अधिक है।
- द्वितीय श्रेणी जिनकी असैनिक जनसंख्या 25 सौ से अधिक और 10 हजार से कम है।
- तृतीय श्रेणी की छावनियां जिनकी असैनिक जनसंख्या 25 सौ से कम है।

नामित सदस्यों में प्रमुख रूप के निम्नांकित अधिकारी सम्मिलित होते हैं-

- केन्द्र का समादेशक अधिकारी (कमान्डिग आफिसर) अध्यक्ष होता है, इसलिए परिषद में मतदान की स्थिति में पक्ष व विपक्ष में समान मत पड़ने पर उसे निर्णायक मत देने का अधिकार होता है।
- जिलाधीश द्वारा नामित एक प्रथम श्रेणी का दण्डाधीश(मजिस्ट्रेट)।
- छावनी का स्वास्थ्य अधिकारी।
- छावनी का कार्यकारी अभियन्ता।
- केन्द्र के समादेशक अधिकारी द्वारा नामित चार अन्य सैनिक अधिकारी।
- जनता द्वारा निर्वाचित सदस्य।

7.4 छावनी परिषद के कार्य एवं शक्तियाँ

यद्यपि छावनी परिषद कार्यों की दृष्टि से नगरपालिका की सहराही प्रतीत होती है, किन्तु उसको नगरपालिका से इतर कुछ अतिरिक्त कार्य भी करने पड़ते हैं। छावनी क्षेत्र की सफाई एवं यौन दुराचार का कड़ाई से दमन करना इसका एक प्रमुख उत्तरदायित्व माना जाता है। अन्य नगरीय स्थानीय निकायों की भाँति छावनी परिषद के कार्य एवं शक्तियों को भी दो वर्गो में विभक्त किया गया है- अनिवार्य कार्य और ऐच्छिक कार्य।

7.4.1 अनिवार्य कार्य

छावनी परिषद के प्रमुख अनिवार्य कार्य निम्नलिखित हैं-

1. शुद्ध एवं स्वच्छ जल की व्यवस्था।
2. घृणित एवं क्षोभकर व्यवसायों, उद्यमों एवं परिपाटियों का नियमन।
3. सार्वजनिक स्थानों, मार्गों तथा नालियों की सफाई का प्रबन्ध।
4. सार्वजनिक स्थानों व सड़कों पर प्रकाश की व्यवस्था।

5. जन स्वास्थ्य, सुरक्षा व सुविधा के लिए रास्तों एवं अन्य स्थानों से अवरोधकों एवं प्रक्षेपों का शमन करना।
6. प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करना।
7. चिकित्सालयों की स्थापना व टीकाकरण का प्रबन्ध करना।
8. सड़कों के किनारे व सार्वजनिक स्थानों पर वृक्षारोपण व उनकी देखरेख।
9. जन्म एवं मृत्यु का पंजीकरण।
10. खतरनाक भवनों एवं स्थानों को हटाना व सुरक्षित करना।
11. अग्निशमन का प्रबन्ध करना।
12. शमशान घाटों का अनुरक्षण एवं नियमन।
13. पुलों, पुलियों, मार्गों, काजी हाउसों, हाटों की व्यवस्था, निर्माण व अनुरक्षण।

7.4.2 ऐच्छिक कार्य

छावनी परिषद के प्रमुख ऐच्छिक कार्य निम्नलिखित हैं-

1. स्वास्थ्य के लिए अनुपयुक्त स्थानों को निवास योग्य बनाना।
2. सार्वजनिक स्थानों, तालाबों एवं कुओं का निर्माण।
3. सर्वेक्षण करना।
4. संक्रामक महामारियों के फैलने पर स्थानीय स्तर पर राहत कार्य करना।
5. बिजली का प्रबन्ध।
6. सार्वजनिक परिवहन की व्यवस्था करना।

7.5 छावनी परिषद के आय के स्रोत

छावनी परिषद के आय के प्रमुख स्रोतों को दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है- करों से आय और अन्य स्रोतों से आय।

1. **करों से आय-** छावनी परिषद भी सामान्य रूप से उन्हीं करों को लगाती है जो नगरपालिका द्वारा लगाये जाते हैं। जैसा कि छावनी परिषद अधिनियम 1924 में कहा गया है कि छावनी परिषद को केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमति से ऐसा कोई भी कर लगाने का अधिकार होता है जो उस समय उस नगरपालिका के द्वारा

लगाया जा रहा हो जिसमें छावनी परिषद अवस्थित है। इस प्रकार छावनी परिषद अपने क्षेत्रान्तर्गत भूमि कर, भवन कर, जलकर आदि वसूल करती है।

2. **अन्य स्रोतों से आय-** उपर्युक्त करों के अतिरिक्त छावनी परिषद के आय का एक प्रमुख स्रोत केन्द्रीय सरकार के रक्षा मन्त्रालय द्वारा उसे दिया जाने वाला अनुदान है। इसके अलावा वह व्यापार आदि तथा रिक्षा पर लाइसेंस शुल्क भी वसूल करती है।

7.6 छावनी परिषद पर नियन्त्रण

छावनी परिषद का अध्यक्ष सेना का उच्च अधिकारी होता है तथा इसके आधा से ज्यादा सदस्य रक्षा मन्त्रालय द्वारा मनोनीत होते है। इसलिए छावनी बोर्डों पर भारत सरकार के रक्षा मन्त्रालय का सीधा नियन्त्रण होता है। जबकि राज्य सरकार से इनका किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं होता है। मनोनीत सदस्यों का बहुमत होने के कारण निर्वाचित सदस्यों का कोई महत्व नहीं रह जाता है, क्योंकि सैनिक अधिकारी जो इस बोर्ड के सदस्य होते हैं वे अपने बहुमत से किसी भी प्रस्ताव को मंजूर या नामंजूर कर सकते हैं। सैनिक अधिकारी पूर्ण रूप से रक्षा मन्त्रालय के अधीन या नियन्त्रण में होते है। इसलिए इनके द्वारा कार्य भी उसी रूप में किया जाता है जिस रूप में केन्द्रीय सरकार का रक्षा मन्त्रालय चाहता है। छावनी परिषद के आय का बड़ा भाग भी रक्षा मन्त्रालय से अनुदान के रूप में ही प्राप्त होता है, इसलिए उसको खर्च भी उसी के निर्देषों के अनुरूप किया जाता है। जिससे रक्षा मन्त्रालय का कठोर वित्तीय नियन्त्रण भी स्थापित हो जाता है।

7.7 छावनी परिषद की वर्तमान प्रासंगिकता

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि छावनी परिषद न तो नगरीय शासन के स्वायत्त इकाई के रूप में कार्य कर पा रही है और न ही स्थानीय शासन के प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के प्रतिरूप रूप में। छावनी परिषद को स्वायत्तता प्राप्त हो इसके लिए इस पर रक्षा मन्त्रालय और सेना के प्रभुत्व को कम किया जाना चाहिए। वर्तमान युग प्रजातन्त्र का युग माना जाता है, क्योंकि दुनिया का हर देश आज या तो प्रजातन्त्र को अपना लिया है या इस दिशा में तेजी के साथ बढ़ रहा है। ऐसे में भारत जैसा देश, जिसके रग-रग में प्रजातन्त्र व प्रजातान्त्रिक भावना प्राचीन काल से रची-बसी है, ऐसे में एक गैर-प्रजातान्त्रिक निकाय के रूप में छावनी बोर्ड का अस्तित्व उचित नहीं कहा जा सकता, इसलिए इसको अस्वीकार कर देना चाहिए। इसीलिए सन् 1933 में स्थापित एस0के0 पाटिल समिति ने भी इसके स्वरूप में परिवर्तन की अनुशंसा करते हुए इसमें निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढ़ाने तथा सैनिक अधिकारियों के नियन्त्रण

को कम करने की बात की थी। कभी-कभी यह कहते हुए इसके अस्तित्व पर ही प्रश्न-चिन्ह लगाया जाता है कि छावनी क्षेत्र प्रायः बड़े नगरों के समीप है। ऐसे में नगरों में नगर निगम या नगरपालिका और छावनी क्षेत्र में छावनी बोर्ड जैसी संस्था का होना अनावश्यक है। इस दृष्टि से यह प्रासंगिक होगा कि छावनी बोर्डों का विलय नगर निगम या नगरपालिका में कर दिया जाए। इस बात की सिफारिश करते हुए ग्रामीण नगरीय सम्बन्ध समिति ने भी कहा था कि ''कैन्टोमेन्ट बोर्डों का एक पृथक संस्था के रूप में निरन्तर अस्तित्व एक असंगति है और वे आगे चलकर साथी नगरपालिका के ही अंग बना दिये जायेंगे।''

7.8 औद्योगिक नगरियां

सन् 1947 ई0 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था की नीति को अपनाया गया। इसलिए निजी उद्योगों के साथ-साथ विभिन्न क्षेत्रो में सार्वजनिक उद्योगों की भी स्थापना की गयी। जिस क्षेत्र में सार्वजनिक उद्योग संस्थान स्थापित किये गये वहाँ उनमें कार्य (नौकरी) करने वाले लोगों के लिए आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं यातायात आदि मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए नागरिक सुविधाओं का स्थापित किया जाना भी आवश्यक हो गया। परिणामस्वरूप देश के जिन हिस्सों में सार्वजनिक उद्योग संस्थान स्थापित किये गये, वहाँ नागरिक सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए औद्योगिक नगरियों की स्थापना की गयी। ये नगरियां प्रायः ग्रामीण क्षेत्र या विद्यमान नगरों के पड़ोस में स्थापित की जाती है। सार्वजनिक क्षेत्र उद्योगों के सम्पूर्ण लागत का लगभग ग्यारह प्रतिशत इन औद्योगिक नगरियों की स्थापना पर व्यय किया जाता है, क्योंकि उद्योगों की स्थापना ऐसे क्षेत्र में की जाती है जहाँ सस्ती भूमि, सस्ता कच्चा माल, सस्ते श्रमिक तथा नजदीक ही उत्पादित माल को बेचने के लिए बाजार उपलब्ध हो। ऐसे क्षेत्र प्रायः नागरिक सुविधा के दृष्टि से अत्यन्त पिछड़े होते हैं।

उद्योगों के स्थापना के साथ ही उस क्षेत्र में रोजगार के बढ़ते अवसर निश्चित रूप से चुम्बक की तरह लोगों को स्थायी या अस्थायी रूप से बसने के लिए आकृष्ट करते है फलस्वरूप उस क्षेत्र की आबादी तेजी से बढ़ती है। जिससे अनेक समस्याएं स्वतः ही प्रस्फुटित हो जाती है। इन समस्याओं में प्रमुख रूप से अनियोजित भवन निर्माण, सड़क, नाली, गन्दगी, शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात होती है। इन समस्याओं को दृष्टिगत रखकर उद्योग प्रबन्धन के अन्तर्गत ही एक समिति का निर्माण किया जाता है। जिसमें उद्योग संस्थान के प्रमुख अधिकारी व कर्मचारी शामिल होते हैं। उद्योग संस्थान द्वारा उपलब्ध कराये गये धनराशि का उपयोग कर यह समिति उस क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों को सुनियोजित जीवन जीने की सुविधाएँ उपलब्ध कराती है।

7.9 औद्योगिक नगरियों की विशेषताएँ

औद्योगिक नगरियां अन्य नगरीय निकायो से अत्यधिक भिन्न होती है जिससे उनकी समस्याएं भी नगर निकायों से भिन्न होती हैं। इन विभिन्नताओं को ही औद्योगिक नगरियों की विशेषताओं के रूप में सम्बोधित किया जाता है। इनमें से प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. औद्योगिक नगरियां पूर्ण रूप से नियोजित एवं व्यवस्थित होती हैं, क्योंकि इनकी स्थापना औद्योगिक संस्थान की योजना के अनुरूप ही की जाती है।
2. इन नगरियों पर किया जाने वाला खर्च सार्वजनिक उद्योग संस्थानों के बजट का एक बड़ा हिस्सा होता है, इसलिए इनमें उपलब्ध नागरिक सुविधाएँ अन्य नगरीय निकायों से गुणात्मक दृष्टि से काफी ऊँचे स्तर की होती है। इनमें प्रमुख रूप से पानी, बिजली, सड़क, जल निकासी, चिकित्सा, शिक्षा, बाजार, क्लब, सामुदायिक केन्द्र, क्रीड़ा स्थल, पार्क, सभा-भवन आदि है।
3. औद्योगिक नगरियों के कार्यक्षेत्र में निवास करने वाले लोगों को उपलब्ध करायी जाने वाली सुविधाओं और सेवाओं का समस्त व्यय उद्योग संस्थान द्वारा वहन किया जाता है।
4. इन क्षेत्रों में उपलब्ध रोजगार व अन्य सेवाएं लोगो को तेजी के साथ आकृष्ट करती है, जिससे समीप के क्षेत्रों में अव्यवस्थित विकास को प्रोत्साहन मिलता है, इसलिए नागरिक सेवाओं और सुविधाओं के दृष्टि से उस सम्पूर्ण क्षेत्र को दृष्टिगत रखकर विकास योजनाएं निर्मित की जानी चाहिए।
5. सार्वजनिक उद्योग संस्थानों द्वारा स्थापित नगरियां निकटवर्ती क्षेत्रों के साथ अपने विलय का अनेक कारणों से विरोध करती है, क्योंकि उनको भय है कि इस प्रकार के विलय से उद्योग का वित्तीय और प्रशासनिक भार अत्यधिक बढ़ जायेगा। परियोजना से सम्बन्ध न रखने वाली जनता की भीड़ बढ़ जायेगी, जिससे औद्योगिक हित प्रभावित होगा और नगरपालिकाओं की राजनीति नगरियों के नागरिक प्रशासन पर भी छा जायेगी।

7.10 औद्योगिक नगरियों का संगठन

औद्योगिक नगरियों की स्थापना ग्रामीण क्षेत्रों में की जाती है या विद्यमान नगरों के समीपवर्ती क्षेत्रों में। ग्रामीण-नगरीय सम्बन्ध समिति ने औद्योगिक नगरियों को प्रमुख तौर पर तीन वर्गों में विभक्त किया है। जिनका उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है-

- एकल औद्योगिक नगरियां। जैसे- राउरकेला, भिलाई और जमशेदपुर।
- ऐसी औद्योगिक नगरियां जहाँ एक साथ कई उद्योग स्थापित हो। जैसे- दुर्गापुर।
- छोटी औद्योगिक नगरियां। जैसे- भोपाल के निकट हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड (HEL), बंग्लौर के निकट इण्डियन टेलीफोन इण्डस्ट्रीज तथा हिन्दुस्तान एरोनोटिक्स लिमिटेड (HAL)।

औद्योगिक नगरियों का शासन सार्वजनिक उद्योग संस्थान का ही सामान्य प्रशासनिक दायित्व समझा जाता है। इसके लिए इन संस्थानों द्वारा विस्तृत संगठन स्थापित किये जाते हैं। जिसमें नगर प्रशासक (कम्पनी द्वारा नियुक्त अधिकारी) और विभागीय अध्यक्ष आंवटन, अनुरक्षण, उद्यान कार्य, प्रशासनिक अधिकारी, सम्पदा अधिकारी, इंजीनियर तथा अन्य कर्मचारी प्रमुख रूप से सम्मिलित होते हैं। इन औद्योगिक नगरियों में निर्वाचित तत्वों को प्रायः जानबूझकर शामिल नहीं किया जाता है। इस प्रकार इनका शासन पूर्णरूपेण अधिकारीतन्त्रात्मक (नौकरशाही किस्म का) होता है। औद्योगिक नगरियों के प्रशासनिक ढ़ाँचे में लोकतन्त्र के अभाव को उचित ठहराने के लिए दो तरह के तर्क दिये जाते हैं- प्रथम, यदि इन नगरियों का नागरिक प्रशासन चुने हुए लोकतान्त्रिक निकायों को सौंप दिया जाय तो नागरिक सेवाओं और सुविधाओं के स्तर में गिरावट आ जायेगी साथ ही साथ इन पर राजनीतिक हस्तक्षेप भी बढ़ जायेगा। द्वितीय वर्तमान में ये नगरियां जो सेवाएं व सुविधांए उपलब्ध करा रही हैं, वे अत्यन्त उच्चकोटि की है और इनसे सम्बन्धित जनता उससे पूर्णतः सन्तुष्ट है।

7.11औद्योगिक नगरियों की वर्तमान स्थिति

वर्तमान लोकतान्त्रिक युग में भी औद्योगिक नगरियों का शासन अधिकारीतन्त्रीय बना हुआ है। जिसके कारण इसके औचित्य को लेकर ही प्रश्न-चिन्ह लगाया जाता है। इस सन्दर्भ में कहा जाता है कि भले ही औद्योगिक नगरियों द्वारा जुटायी गयी नागरिक सेवाएं और सुविधाएं उच्च कोटि की हैं और स्थानीय जनता उससे भलीभाँति सन्तुष्ट है, लेकिन सुशासन को कभी भी स्वशासन का विकल्प नहीं कहा जा सकता, क्योंकि शासन में सहभागिता का होना ही जन सामान्य को मानसिक सन्तुष्ठि प्रदान करता है। इस तर्क को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता कि औद्योगिक नगरियों के शासन में निर्वाचन की व्यवस्था राजनीतिक गुटबन्दी व विवाद को बढ़ावा देगी और इससे सार्वजनिक उद्योग संस्थान को क्षति या आघात पहुँचेगा, क्योंकि आज भी जिन बड़े नगरों व कस्बों में निर्वाचित स्थानीय शासन स्थापित है, वहाँ भी अनेक सार्वजनिक उद्योग स्थापित हो रहे है, किन्तु इन स्थानीय निकायों से उन्हें कोई नुकसान नहीं हो रहा है। औद्योगिक नगरियों के शासन में लोकतन्त्र नहीं होने के कारण जनता के प्रति

उत्तरदायित्व के तत्व का अभाव दिखायी देता है। जबकि जनता के प्रति जवाबदेही का अभाव शासन व प्रशासन में निरंकुशता को बढ़ावा देता है, जिसके कारण शासन प्रशासन अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन समुचित व प्रासंगिक तरीके से नहीं कर पाता है।

सन् 1963ई0 में स्थापित ग्रामीण नगरीय सम्बन्ध समिति औद्योगिक नगरियों के शासन व प्रशासन की व्यापक जांच करने के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँची कि अन्ततोगत्वा सार्वजनिक उद्योग संस्थानों की औद्योगिक नगरियों को जो वर्तमान में जागीरों के रूप में काम रही है, लोकतान्त्रिक व्यवस्था का अंग बनना पड़ेगा। इसलिए समिति ने सुझाव दिया कि इन नगरियों को विशेष नगरीय समितियों के रूप में संगठित कर दिया जाय। जिसमें उद्योग प्रमुखों के अलावा निर्वाचित लोगो को शामिल कर नागरिकों के लोक प्रतिनिधित्व की आकांक्षा को सन्तुष्ठ किया जा सके। इसमें आधे सदस्यों को जिनमें अध्यक्ष भी शामिल हो को उद्योग की सिफारिश पर राज्य सरकार नामित करे तो शेष आधे सदस्यों को औद्योगिक नगरी क्षेत्र में निवास करने वाली जनता प्रत्यक्ष रूप से चुने। समिति ने यह भी सिफारिश की कि जो औद्योगिक नगरियां बड़े नगरों और कस्बों क समीप स्थापित हैं, उनके आन्तरिक मामलों का प्रबन्ध जैसा कि प्रचलन में है कम्पनियों के हाथों में ही बना रहे। लेकिन नगर में उपलब्ध सुविधाओं जैसे- सड़कों, परिवहन, बाजारों, चिकित्सालयों, शिक्षा आदि जिनका लाभ कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा लिया जाता है, उनके रख-रखाव के लिए कम्पनी द्वारा समुचित अंशदान दिया जाना चाहिए। समिति के सुझावों को भी लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के अनुरूप नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसकी सिफारिश में अध्यक्ष को सरकार द्वारा नामित करने की अनुशंसा की गयी थी। जबकि अध्यक्ष या सभापति का चुनाव किसी भी संस्था में लोकतान्त्रिक मूल्यों का प्रतीक तथा संरक्षक होता है। इसलिए जो भी निकाय लोकतान्त्रिक होने का दम्भ भरता है उसका अध्यक्ष या सभापति निश्चित रूप से जनता का प्रतिनिधि होना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न-

1. छावनी अधिनियम कब पारित किया गया था?
2. स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद स्थानीय स्वशासन मन्त्रियों का प्रथम सम्मेलन कब और कहाँ आयोजित किया गया था?
3. केन्द्रीय छावनी समिति का गठन किसकी अध्यक्षता में किया गया था?
4. छावनी परिषद अधिनियम में संशोधन कब किया गया था?

5. सार्वजनिक उद्योग संस्थान के कुल लागत का लगभग कितना प्रतिशत औद्योगिक नगरियों की स्थापना पर व्यय किया जाता है?
6. औद्योगिक नगरियां पूर्ण रूप से .....होती हैं।
7. औद्योगिक नगरियों को कितने वर्गों (श्रेणियों) में विभक्त किया जाता है?
8. ग्रामीण- नगरीय सम्बन्ध समिति की स्थापना कब की गयी थी?

7.12 सारांश

भारत में सैनिकों के सामरिक चालों हेतु प्रयुक्त स्थायी आवास को छावनी परिक्षेत्र कहा जाता है। ये प्रायः महत्वपूर्ण शहरों के समीप बसा होता है। जहाँ सैनिकों के साथ-साथ बड़ी संख्या में असैनिक लोग भी बसे होते हैं। इस क्षेत्र में निवास करने वाले सैनिक तथा असैनिक लोगों को नागरिक सुविधाएं उपलब्ध कराने वाले नगरीय निकाय के रूप में छावनी परिषद की स्थापना की गयी होती है। ये छावनियां पूर्णरूपेण केन्द्र शासित क्षेत्र होती हैं और इस पर भारत सरकार के रक्षा मन्त्रालय का प्रशासनिक नियन्त्रण होता है, इसलिए राज्य सरकार से इनका कोई सम्पर्क नहीं होता है। इसमें प्रतिनिधित्व के तत्व को समाहित करने के लिए एस0के0 पाटिल की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गयी। जिसने इसे लोकतान्त्रिक बनाने के लिए आधे सदस्यों के निर्वाचन की अनुशंसा की। यह परिषद ही छावनी क्षेत्र में निवास करने वाले समस्त सैनिक तथा असैनिक समुदाय के समस्त नागरिक सुविधांए उपलब्ध कराती है जो नगरपालिका क्षेत्र में नगरपालिका के द्वारा उपलब्ध करायी जाती है। इसका अध्यक्ष सेना का उच्च अधिकारी होता है तथा इसके आधे से ज्यादा सदस्य रक्षा मन्त्रालय द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। इनको आय भी केन्द्र सरकार व रक्षा मन्त्रालय द्वारा दिये जाने वाले अनुदान के रूप में प्राप्त होती है। जिन क्षेत्रों में सार्वजनिक उद्योग संस्थान स्थापित किये जाते हैं, वे प्रायः ग्रामीण या नगरों के समीपवर्ती होते है। इसमें उद्योग संस्थान के कर्मचारी तथा अनेक गैर-कर्मचारी भी निवास करते हैं। इन क्षेत्रों में मूलभूत नागरिक सुविधाओं की स्थापना के लिए औद्योगिक नगरियों की स्थापना के साथ-साथ कुल औद्योगिक बजट का लगभग ग्यारह प्रतिशत खर्च भी किया जाता है। औद्योगिक नगरियों का शासन सार्वजनिक उद्योग संस्थान का ही सामान्य प्रशासनिक दायित्व माना जाता है। औद्योगिक नगरियों के प्रशासन के लिए सार्वजनिक उद्योग संस्थान के द्वारा नगर प्रशासक नियुक्त किया जाता है तथा उसका सहयोग करने के लिए संस्थान के विभिन्न विभागों के प्रमुखों, अभियन्ताओं व कुछ महत्वपूर्ण कर्मचारियों की एक समिति गठित कर दी जाती है। इसलिए इसका प्रशासन अधिकारीतन्त्रीय स्वरूप का अर्थात लोकतन्त्र के प्रतिकुल माना जाता है।

7.13 शब्दावली

छावनी- सैनिकों के रहने का स्थायी स्थल, परिषद- उद्देश्य विशेष के लिए गठित विशेषज्ञों की समिति, उद्योग- मानव जीवन को सरल बनाने के लिए यन्त्रों अथवा संसाधनों की उत्पादक इकाईयां, संस्थान- राजनैतिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक उद्देश्यों के प्राप्ति के लिए गठित संस्थान, लोकतन्त्रीकरण- शक्ति का विकेन्द्रीकरण, संशोधन- समयानुकुल परिवर्तन, नामित सदस्य- ऐसे सदस्य जो अपनी विशेषज्ञता या किसी पद विशेष पर आसीन होने के कारण सरकारों या उच्च संवैधानिक संस्थाओं द्वारा नियुक्त किये जाय, दुराचार- आचार संहिता के विपरीत आचरण, ऐच्छिक कार्य- ऐसे कार्य जिनको करना इच्छा पर निर्भर हो, अनिवार्य कार्य- ऐसे कार्य जिनको करना अति आवश्यक हो, संक्रामक- शीघ्रता पूर्वक प्रभावित करने वाली व्यवस्था या परिस्थिति, महामारी- ऐसी बीमारी जो मानवीय समुदाय का बड़े पैमाने पर विनाश करें

7.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सन् 1924 ई0 में, **2.** सन् 1948 ई0 में नयी दिल्ली में, **3.** एस0के पाटिल, **4.** 1953 ई0, **5.** लगभग ग्यारह प्रतिशत, **6.** नियोजित व व्यवस्थित, **7.** तीन, **8.** सन् 1963 ई0 में

7.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एस0 आर0 माहेश्वरी, भारत में स्थानीय स्वशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. एम0पी0 त्यागी एवं आर0के0 त्यागी, स्थानीय स्वशासन, संजीव प्रकाशन, मेरठ।
3. अमरेश्वर अवस्थी एवं आनन्द प्रकाश अवस्थी (अवस्थी एवं अवस्थी) भारत में लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

7.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एस0 आर0 माहेश्वरी, भारत में स्थानीय स्वशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. एम0पी0 त्यागी एवं आर0के0 त्यागी, स्थानीय स्वशासन, संजीव प्रकाशन, मेरठ।

7.17 निबंधात्मक प्रश्न

1. छावनी परिषद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
2. छावनी परिषद के संगठन, कार्य एवं शक्तियों का संक्षिप्त उल्लेख करें।

3. 'छावनी परिषद व औद्योगिक नगरियां अप्रजातान्त्रिक संस्थाएं हैं' इस पर अपने विचार व्यक्त कीजिये।

4. औद्योगिक नगरियों पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई- 8 स्थानीय शासन का संघात्मक रूप

इकाई की संरचना

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 स्थानीय शासन

8.3 संघात्मक शासन

8.4 स्थानीय शासन के संघात्मक रूप की अवधारणा

8.5 भारत के विभिन्न राज्यों में नगर प्रशासन का विकेन्द्रीकरण या संघात्मक रूप

8.5.1 बम्बई (मुम्बई)

8.5.2 कलकत्ता (कोलकता)

8.5.3 मद्रास (चेन्नई)

8.5.4 दिल्ली

8.5.5 हैदराबाद

8.6 स्थानीय शासन के संघात्मक रूप के दोष

8.7 सारांश

8.8 शब्दावली

8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

8.0 प्रस्तावना

यह इकाई शासन के सबसे निचले स्तर स्थानीय स्वशासन में शक्तियों के विकेन्द्रीकरण से सम्बन्धित है। वर्तमान युग अतिशय भौतिकता व यान्त्रिक है। ऐसे में निचले स्तर के शासन के लिए भी यह सम्भव नहीं रह गया है कि वह अपने कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत निवास करने वाले लोगों को समस्त नागरिक सुविधांए उपलब्ध करा सके। इसके लिए

स्थानीय स्वशासन की इकाईयों को भी उपखण्डों में विभाजित कर शासन की शक्तियों को प्रत्यायोजित करने का प्रयास किया जा रहा है।

स्थानीय स्वशासन की ये उपइकाईयां अपने निर्देशक संस्था में मार्ग-निर्देशन में काफी स्वायत्त तरीके से अपने दायित्वों का निर्वहन कर रही हैं। इनके अस्तित्व का एक बड़ा लाभ यह है कि जनता की समस्याओं का समाधान उसके अत्यन्त निकट ही प्राप्त हो जाता है। जनता के अत्यन्त निकट होने के कारण ये भावनात्मक रूप से उससे जुड़ जाती है और उसके अन्दर एक अजीब से अपनत्व का भाव प्रदर्शित होता है। जनता के दिन-प्रतिदिन के सम्पर्क में होने के कारण ये अधिक उत्तरदायी तरीके से अपने कर्तव्यों का पालन करती हैं।

वर्तमान में स्थानीय स्वशासन के इकाईयों के बढ़ते आकार ने जनता से उसकी दूरी को बढ़ा दिया है। जबकि स्थानीय स्वशासन की अवधारणा इस मान्यता पर आधारित है कि शासन जनता के दिन-प्रतिदन के सम्पर्क में होना चाहिए। इसलिए जनता से स्थानीय स्वशासन की बढ़ी हुई दूरी को कम करने के लिए महसूस किया गया कि इन संस्थाओं के शक्तियों का ठीक उसी रूप में विकेन्द्रीकरण कर दिया जाय जिस रूप में किसी संघ राज्य (राष्ट्रीय राज्य) द्वारा अपनी शक्तियों का विकेन्द्रीकरण अपनी इकाईयों अर्थात राज्यों को कर दी जाती है। इस प्रकार स्थानीय स्वशासन का एक नया रूप अवतरित हुआ, जिसे स्थानीय शासन के संघात्मक रूप की संज्ञा से नवाजा जाता है।

यह इकाई स्थानीय शासन के संघात्मक रूप से सम्बन्धित है। जिसमें इस बात का जिक्र करने का प्रयास किया गया है कि बढ़ती हुई मानवीय व सामाजिक जीवन की जटिलताओं ने शासन के सबसे निचले स्तर की इकाईयों के लिए भी नागरिक जीवन की समस्त सुविधाओं की व्यवस्था करना असम्भव बना दिया है। इसलिए इन इकाईयों की भी उप इकाईयां स्थापित कर इनको संघात्मक स्वरूप प्रदान कर दिया गया है।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- स्थानीय शासन के संघात्मक रूप की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- स्थानीय शासन को संघात्मक रूप देने की आवश्यक ता को जान सकेंगे।
- स्थानीय शासन तथा जनता के बीच सम्बन्धों के परिवर्तित रूप को समझ सकेंगे।
- शासन के विकेन्द्रीकरण की बढ़ती उपयोगिता को जान सकेंगे।

- शासन को जनता के लिए प्रासंगिक बनाये रखने के लिए जनता से सम्बन्ध आवश्यक है का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।

8.2 स्थानीय शासन

मानव प्रकृति से ही आत्म केन्द्रित होता है। वह इसे कभी पसन्द नहीं करता है कि उसके बारे में निर्णय लेने का अधिकार किसी और को प्राप्त हो। इसलिए मानव सभ्यता के प्रारम्भ या सामूहिक जीवन की शुरूवात से ही स्थानीय शासन की आवश्यकता महसूस की गयी। शासन प्रशासन का प्रारम्भ प्राचीन काल में निचले स्तर से ही प्रारम्भ हुआ जो धीरे-धीरे विकास के माध्यम से जनपद, राज्य, संघ या वर्तमान में विश्व संघ के निकट पहुँच गया है। स्थानीय शासन शासन के एक अनोखे स्वरूप का प्रतिविम्ब है जिसका आधार 'स्थान' अर्थात सीमित क्षेत्र होता है। इसके छोटे आकार को इसलिए पसन्द किया जाता है क्योंकि इससे शासन जनता के निकट बना रहता है और जनता को शासन में व्यापक तथा सक्रिय सहभागिता प्राप्त होती है। इसलिए स्थानीय शासन के साथ जनमानस का भावनात्मक जुड़ाव स्वाभाविक है। वर्तमान सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन की बढ़ती जटिलताओं ने यह असम्भव बना दिया है कि अकेले केन्द्र या राज्य स्तर की सरकारें लोगों के सभी समस्याओं का समाधान कर सकें। ऐसे में स्थानीय समस्याओं का समाधान स्थानीय स्तर पर ही किया जा सके इसी ध्येय को लेकर स्थानीय स्वशासन की अवधारणा का विकास हुआ। हैरिस ने लिखा है कि ''स्थानीय स्वराज्य या शासन एक ऐसी व्यवस्था है, जिसके अन्तर्गत किसी स्थान विशेष के लोग स्थानीय महत्व के सार्वजनिक मामलों के विषय में कुछ दायित्व रखते हैं और उन दायित्वों के निर्वाह के लिए अपने साधन जुटाते हैं।'' स्वतन्त्रता पूर्व गांधी जी ने भी ग्राम स्वराज्य पर बल दिया था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद स्थानीय समस्याओं का समाधान स्थानीय स्तर पर करने और शासन में लोगों को सक्रिय सहभागिता देने के नियत से ग्रामीण तथा नगरीय दोनों क्षेत्रों में स्थानीय शासन की संस्थाओं की व्यापक व्यवस्था की गयी।

8.3 संघात्मक शासन

वर्तमान युग प्रजातन्त्र का युग है जिसमें शासन के प्रत्येक स्तर पर जनता को अधिकतम सहभागिता प्रदान करने का प्रयास किया जाता है और यह तभी सम्भव है जबकि शासन शक्तियों का विकेन्द्रीकरण कर दिया जाय। इसलिए शक्तियों का विकेन्द्रीकरण शासन के सबसे निचले स्तर पर भी करने का प्रयास किया जा रहा है। लेकिन मानव समाज के समस्त उद्देश्यों को निचले स्तर की संस्थाओं के द्वारा पूर्ण नहीं किया जा सकता, इसलिए शासन की कुछ

शक्तियों को उच्च स्तर की प्रशासनिक संस्थाओं को सौंप दिया जाता है। इस प्रकार निम्न स्तर व उच्च स्तर के प्रशासनिक संस्थाओं के बीच शक्तियों के विभाजन को संघवाद या संघात्मक शासन के रूप में संबोधित किया जाता है। लोक कल्याणकारी राज्य के अस्तित्व में आने के बाद राज्य या सरकार का दायित्व उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। आज किसी भी स्तर के शासन के लिए यह सम्भव नहीं रह गया है कि वह जनता के समस्त अपेक्षाओं को पूर्ण कर सकें। इसलिए वर्तमान में शासन के प्रत्येक स्तर पर दायित्वों के विभाजन की नीति को अपनाया जाने लगा है। कहा जाता है कि समाज संघात्मक है, इसलिए सत्ता भी संघात्मक होनी चाहिए।

8.4 स्थानीय शासन के संघात्मक रूप की अवधारणा

स्थानीय शासन की अवधारणा 'स्थानीयता के सिद्धान्त' पर आधारित है। अर्थात 'स्थानीय शासन' शब्द प्रशासन की ऐसी व्यवस्था की ओर संकेत करता है, जिसका आकार छोटा अर्थात क्षेत्र सीमित हो। प्रजातन्त्र के अनुरूप जनता को शासन में सक्रिय एवं व्यापक भागीदारी तभी प्राप्त हो सकती है जबकि स्थानीय शासन का आकार व क्षेत्र सीमित हो। किन्तु वर्तमान नगरीय शासन स्थानीयता के नियम का प्रतिरूप नहीं कहा जा सकता, क्योंकि बढ़ते हुए औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के कारण भारतीय नगरों का आकार व क्षेत्र तेजी के साथ बढ़ता जा रहा है। स्थानीय प्रशासन का आकार जैसे-जैसे बढ़ रहा है वैसे-वैसे शासन भी जनता से दूर होता जा रहा है। परम्परागत नगरीय प्रशासन के ढ़ाँचे में जनता की सक्रिय भागीदारी एक कपोल कल्पना बनती जा रही है। इस प्रकार स्थानीय शासन का उद्देश्य ही निष्फल होने लगा है, क्योंकि जनता कि सक्रिय प्रशासनिक भागीदारी (प्रजातन्त्र) ही स्थानीय शासन का मूल आधार है।

स्थानीय शासन के अनिवार्य एवं अति आवश्यक गुण शासन में जनता की सक्रिय भागीदारी, जन शिकायतों का तत्परता पूर्वक निवारण, शासन को जनता के निकट बनाये रखने तथा जन आवश्यकताओं को जनादेश के अनुरूप पूरा करने के लिए वर्तमान समय में बड़े नगरों के शासन को प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से अनेक छोटे-छोटे क्षेत्रों में बांट दिया जाता है। नगरीय शासन की शक्तियों का दो स्तरों पर विभाजन स्थानीय शासन का संघात्मक रूप कहा जाता है। सम्पूर्ण नगरीय प्रशासन में जहाँ शक्ति या सत्ता का केन्द्रीकरण होता है, वहाँ स्थानीय लघु क्षेत्रों की प्रशासनिक इकाईयों के स्तर पर शक्ति या सत्ता का विकेन्द्रीकरण रहता है और जनता की प्रशासनिक भागीदारी स्थानीय नगर प्रशासन में बनी रहती है। सत्ता का यह विकेन्द्रीकरण ही स्थानीय शासन का संघात्मक रूप है।

भारत के प्रमुख विशाल नगरों में नगर प्रशासन का द्विस्तरीय ढ़ाँचा स्थापित किया गया है। जिसे नगरीय प्रशासन का संघात्मक रूप या नगर प्रशासन का विकेन्द्रीकरण कहा जाता है। इस संघात्मक व्यवस्था में प्रत्येक बड़े नगर

को अनेक लघु प्रशासनिक क्षेत्रों में बांट कर प्रत्येक क्षेत्र में स्थानीय शासन की एक लघु इकाई स्थापित कर दी जाती है। यह लघु प्रशासनिक इकाई नागरिकों के निकट होती है, जिससे जनता के दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताओं को पूरा करना सरल व सम्भव हो जाता है। जनता के निकट होने के कारण इसके द्वारा अपने दायित्वों का निर्वहन भी अधिक सजगता से किया जाता है। इन लघु प्रशासनिक इकाईयों के मध्य सहयोग व समन्वय स्थापित करने के लिए सम्पूर्ण नगर क्षेत्र की एक मुख्य नगरीय प्रशासनिक इकाई होती है। इन दोनों स्तरों की नगरीय संस्थाओं के बीच शक्तियों के विभाजन का आधार संविधिक हो सकता है या कभी-कभी नगरपाल स्वयं अपने आदेश से ऐसी व्यवस्था कर सकता है जिसका आधार विधिक होता है।

जिस प्रकार बड़े आकार, विशाल जनसंख्या व विधिवता से परिपूर्ण राष्ट्रीय राज्यों में शासन को कार्यकुशल व जनता के हितोपयोगी बनाने के लिए शासन शक्ति का स्पष्ट रूप से विभाजन केन्द्र तथा उसकी इकाईयों के मध्य कर दिया जाता है और इन दोनों स्तर की सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्र होती हैं। ठीक उसी प्रकार से आज नगरों के बढ़ते हुए आकार ने यह आवश्यक बना दिया है कि नगरीय संस्थाओं की शक्तियों का विभाजन भी नगर के स्थानीय व केन्द्रीय प्रशासनिक इकाईयों के मध्य कर दिया जाय। इसलिए भारत के प्रत्येक बड़े नगर में शक्तियों का विभाजन प्रशासन की लघु इकाईयों व उनकी केन्द्रीय सत्ता के बीच स्पष्ट रूप से कर दिया गया है, जिसमें कम महत्व व नितान्त स्थानीय महत्व के विषयों से सम्बन्धित दायित्व लघु इकाईयों को तो महत्वपूर्ण व सम्पूर्ण नगर से सम्बन्ध रखने वाले विषयों की शक्ति, केन्द्रीय नगरीय प्रशासनिक इकाई को सौंप दी जाती है।

लघु प्रशासनिक इकाई (क्षेत्रीय कार्यालय) का मुख्य दायित्व जनता की दिन-प्रतिदिन की शिकायतों को सुनना व उसके निवारण की यथोचित व्यवस्था करना, नगर करों की जमा प्राप्त करना होता है। इस प्रावधान का मुख्य उद्देश्य जनता से निकट सम्बन्ध रखते हुए उनकी समस्याओं के बारे में शीघ्र निर्णय लेना व उनको क्रियान्वित करना होता है। इसके साथ-साथ ये लघु प्रशासनिक इकाईयां स्थानीय शासन की प्रशासनिक चौकी के रूप में केवल उन्हीं कार्यकारी कार्यों का सम्पादन करती है, जो विशेष रूप से उन्हें सुपुर्द किये जाते हैं। इन इकाईयों का गठन करते समय यह प्रयास किया जाना चाहिए कि स्थानीय मामलों से सम्बन्धित निर्णयों में नागरिकों की भागीदारी सुनिश्चित हो।

मुख्य प्रशासनिक इकाई के लिए जनता के दिन-प्रतिदिन के समस्याओं से तारतम्य स्थापित करना सम्भव नहीं होता है। इसलिए यह क्षेत्रीय लघु प्रशासनिक इकाईयों के माध्यम से जनता तक अपनी पहुँच बनाने का प्रयास करती है। लघु प्रशासनिक इकाईयां जनता की जिन समस्याओं या आवश्यकताओं का निस्तारण या पूर्ति नहीं कर

पाती है। उनको नगर निगम के मुख्य प्रशासनिक इकाई द्वारा किया जाता है। लघु प्रशासनिक इकाईयां अपने दायित्वों के निर्वहन में लापरवाह व निरंकुश न हो जाय, इसके लिए वह इनको नियन्त्रित व निर्देशित करते हुए आवश्यकतानुसार आदेश व निर्देश देती रहती है।

इस प्रकार बड़े आकार वाले नगरों में शासन की शक्तियों का लघु प्रशासनिक इकाई व मुख्य प्रशासनिक निकाय के मध्य (द्विस्तरीय) विभाजन को स्थानीय शासन का संघात्मक रूप कहा जाता है। इसमें स्थानीय शासन को दृष्टिगत रखकर शासन व जनता के बीच निकटता को कायम रखने का प्रयास किया जाता है। जिससे शासन प्रशासन लोकतन्त्र के अनुरूप बना रहे। शासन की शक्तियों का दो स्तरों पर विभाजन होने के कारण जनता को दोनों ही स्तरों पर शासन में सहभागिता प्राप्त होती है। इस प्रकार दोनों स्तरों पर जन भागीदारी लोकप्रिय शासन की स्थापना करती है।

8.5 भारत के विभिन्न राज्यों में नगर प्रशासन का विकेन्द्रीकरण या संघात्मक रूप

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद बढ़ते औद्योगिकरण एवं नगरीकरण के कारण विभिन्न प्रमुख नगरों की जनसंख्या और आकार बढ़ने लगा था। इसलिए नगर प्रशासन को सफल बनाने के लिए इन नगरों के प्रशासन में संघात्मक व्यवस्था लागू की गयी। विभिन्न प्रमुख नगरों में स्थापित इस संघात्मक व्यवस्था का उल्लेख निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है-

8.5.1 बम्बई (मुम्बई)

बम्बई नगर प्रशासन को प्रशासनिक सुविधा व जनता के हितोपयोगी बनाये रखने के लिए 17 क्षेत्रों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक क्षेत्र का एक क्षेत्रीय कार्यालय तथा क्षेत्राधिकारी बनाया गया है, जिसको अपने कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत सभी नागरिक समस्याओं का समाधान करने तथा नागरिक सुविधाओं हेतु साधन जुटाने के लिए पर्याप्त स्वायत्तता व अधिकार प्रदान किये गये हैं। इस क्षेत्रीय कार्यालय में क्षेत्राधिकारी के अतिरिक्त निगम के अन्य विभिन्न विभागों जैसे- जल, लोक-स्वास्थ्य, सफाई, प्राथमिक शिक्षा आदि से सम्बन्धित कर्मचारी होते हैं। इन कर्मचारियों को रखने का सबसे प्रमुख उद्देश्य यह है कि, नागरिकों के दिन-प्रतिदिन की समस्याओं का निस्तारण शीघ्रता पूर्वक किया जा सके। इन कार्यालयों के स्थापना का एक बड़ा लाभ यह है कि जन सामान्य को अपनी समस्याओं या शिकायतों के लिए लम्बी दूरी तय करके निगम के मुख्य कार्यालय तक नहीं जाना पड़ता है, बल्कि इनका समाधान क्षेत्रीय कार्यालय स्तर पर ही कर दिया जाता है। मुम्बई में नगर प्रशासन का विकेन्द्रीकरण पूर्णतः प्रशासकीय कार्य है, इसलिए क्षेत्रीय स्तर के नगर प्रशासन से नागरिकों एवं पार्षदों को सम्बन्धित नहीं किया गया

है। नगर प्रशासन का विकेन्द्रीकरण जहाँ प्रशासन को जनता को नजदीक लाता है, वहीं यह नगर निगम के कार्यभार को भी कम करता है, जिससे नगरीय प्रशासन अधिक कार्यकुशल तरीके से अपने दायित्वों का निर्वहन करने में सफल साबित होता है।

8.5.2 कलकत्ता (कोलकाता)

कलकत्ता में नगर शासन का विकेन्द्रीकरण 'कलकत्ता नगरपालिका अधिनियम 1951' के द्वारा किया गया है। अर्थात भारत के अन्य नगरों के विपरीत कलकत्ता में नगर शासन का विकेन्द्रीकरण केवल प्रशासकीय कृत्य नहीं है। इस अधिनियम द्वारा सम्पूर्ण नगर को चार या पांच निर्वाचन क्षेत्रों में बांट दिया जाता है। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के लिए चार या पाँच पौर समिति स्थापित करने का प्रावधान है, इसलिए वर्तमान में कलकत्ता में बीस पौर समितियां स्थापित हैं। इन समितियों के दायित्वों के निर्वहन के लिए पाँच पार्षदों तथा पुर (नगर क्षेत्र) के निवासियों में से पार्षदों द्वारा निर्वाचित तीन व्यक्तियों को शामिल किया जाता है। इन समितियों के द्वारा उन समस्त दायित्वों या कर्तव्यों का निर्वहन किया जाता है जो निगम द्वारा इनको प्रदत्त की जाती हैं। ये पौर समितियां किसी मद पर एक हजार रूपये से अधिक खर्च नहीं कर सकती हैं। इनके द्वारा सड़कों का नामकरण, स्नान व धुलाई के लिए स्थान एवं सन्तरण कुण्डों की व्यवस्था, वृक्षारोपण व उनका अनुरक्षण, उद्यानों एवं क्रीड़ा स्थलों का निर्माण, उद्यानों तथा सार्वजनिक स्थानों पर संगीत की व्यवस्था, खेल के सामान की आपूर्ति तथा अनुरक्षण की व्यवस्था, सफाई एवं प्रकाश का प्रबन्ध तथा जन्म-मरण के पंजीकरण के लिए कर्मचारियों की नियुक्ति आदि कार्यों को किया जाता है। यद्यपि पौर समिति का अपना कोई क्षेत्र स्तरीय प्रशासनिक अंग नहीं होता है, इसलिए इसको अपने निर्णयों के क्रियान्वयन के लिए नगर निगम के कर्मचारियों पर निर्भर रहना पड़ता है।

8.5.3 मद्रास (चेन्नई)

मद्रास में प्रशासनिक व राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के लिए 'मद्रास नगरपालिका अधिनियम 1919' को 1961 में संशोधित किया गया। इस संशोधन द्वारा सम्पूर्ण नगर को दस मण्डलों में विभाजित कर दिया गया है। प्रत्येक मण्डल में दस नगर निर्वाचन क्षेत्र सम्मिलित होते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण नगर 100 निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित है, जिसके लिए 100 पार्षदों का चुनाव किया जाता है। प्रत्येक मण्डल में एक कार्यालय स्थापित होता है, जिसका मुखिया सहायक नगरपाल अधिकारी होता है। इसके अतिरिक्त इन कार्यालयों में तकनीकी, अभियन्त्रण और प्रशासनिक कर्मचारी होते हैं जो मण्डल स्तर के स्थानीय कार्यों का सम्पादन करते हैं। मण्डलीय कार्यालय के प्रमुख

सहायक नगरपाल तथा तकनीकी एवं अभियन्त्रण कर्मचारियों को नगरपाल द्वारा अनेक शक्तियां प्रदान की जाती है। जैसे- स्वास्थ्य, सफाई, तकनीकी व अभियन्त्रण आदि।

मद्रास नगर प्रशासन की शक्तियों का मण्डल स्तर पर विकेन्द्रीकरण करने के अलावा एक केन्द्रीय समिति का भी प्रावधान किया गया है। जिसमें निगम का अध्यक्ष, उप-निगमाध्यक्ष तथा प्रत्येक मण्डल समिति द्वारा अपने में से निर्वाचित एक सदस्य सम्मिलित होता है। किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि निर्वाचित सदस्य मण्डल समिति का अध्यक्ष न हो। संविधि द्वारा ही केन्द्रीय समिति तथा मण्डल समितियों के शक्तियों का विभाजन कर दिया गया है।

8.5.4 दिल्ली

दिल्ली में सन् 1957 ई0 में नगर निगम की स्थापना से पूर्व आठ नगरपालिकाएं कार्यरत थीं। जिन्हें नगर निगम की स्थापना के बाद भी क्षेत्रीय कार्यालय के रूप में बने रहने दिया गया। नगर निगम की स्थापना के परिणामस्वरूप दिल्ली में नगर प्रशासन के केन्द्रीयकरण का सूत्रपात हुआ। परिणाम स्वरूप नगर निगम का कार्य-क्षेत्र बढ़ने के कारण जन समस्याओं से सम्बन्धित कार्यों में अनावश्यक विलम्ब होने लगा, इसलिए दिल्ली नगर प्रशासन के व्यवस्था का अध्ययन करने के लिए 1962 ई0 में एक समिति की नियुक्ति की गयी। समिति को मुख्य रूप से इस बात पर विचार करना था कि ''निगम के कार्यों के परिचालन में विकेन्द्रीकरण को कैसे प्रभावी बनाया जाय जिससे कार्य को शीघ्रातिशीघ्र निपटाया जा सके।'' समिति ने अपने प्रतिवेदन में इस बात पर जोर दिया कि विकेन्द्रीकरण के द्वारा कुछ शक्तियां और कार्य उन क्षेत्रीय समितियों को सौंप दिये जाने चाहिए जो पहले से विद्यमान है। स्वयं समिति ने लिखा था कि ''.....क्षेत्रों में लेखांकन की कोई व्यवस्था नहीं है, क्योंकि लेखा विभाग पूर्णतः केन्द्रीकृत है। इसी प्रकार शिक्षा विभाग भी केन्द्रीकृत है। पूर्ति के मामले में भी क्षेत्र बहुत कुछ मुख्यालय पर निर्भर है। निर्माणशालाओं हेतु लाइसेंस के आवेदन पत्रों को मुख्यालय ही स्वीकार करता तथा निपटाता है, भवनों के लिए आवेदन-पत्रों को स्वीकार तो मुख्यालय में किया जाता है, किन्तु उनकी छानबीन क्षेत्रों में होती है। क्षेत्रीय कार्यालयों को लगभग सभी मामलों में मुख्यालय में स्थित विभागों के प्रवर अधिकारियों पर आश्रित रहना पड़ता है। क्षेत्रीय स्तर पर तालमेल तथा क्षेत्रीय अधिकारी के साथ सम्पर्क बहुत ही क्षीण है।''

समिति के द्वारा नगर प्रशासन के विकेन्द्रीकरण को दृष्टिगत रखकर क्षेत्रीय कार्यालयों को निम्नलिखित कार्यों को करने का अधिकार एवं शक्तियां देने की संस्तुति की गयी-

1. नागरिक सेवाओं के अनुरक्षण से सम्बन्धित कार्य। जैसे- जल का वितरण, नगर क्षेत्र की सफाई, शाखा मलनालियों का रखरखाव, निगम के भवनों, सड़कों तथा उद्यानों का अनुरक्षण आदि।

2. क्षेत्रीय कार्यालयों को ही नगरपालिका से सम्बन्धित दिन-प्रतिदिन की स्थानीय सेवाओं का अनुरक्षण। जैसे- बाल कल्याण केन्द्र, टीकाकरण केन्द्र, औषधालय, छोटे चिकित्सालय, पाठशालाएं, सामाजिक एवं शारीरिक शिक्षा के केन्द्र इत्यादि।
3. निर्माणशालाओं, भोजन की दुकानों तथा भण्डारों के लिए लाइसेंस देना।
4. अनुरक्षण कार्य को पूरा करने के लिए आवश्यक सामग्री का समुचित भण्डार रखना।
5. नरपालिका करों, उपकरों, किरायों एवं शुल्कों का निर्धारण व वसूली।
6. अतिक्रमण (अनाधिकार प्रवेश) को हटाना।
7. क्षेत्रीय कार्यालय में कार्यरत कर्मचारियों के सेवा अभिलेख का अनुरक्षण तथा उनके वेतन का भुगतान।
8. वे सभी कार्य जो क्षेत्रीय स्तर पर सुविधा पूर्ण तरीके से किये जा सके और जिनके लिए उच्च अधिकारियों द्वारा शक्तियों का प्रयोग या नीति निर्धारित करने की आवश्यकता न हो।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि क्षेत्र समिति का यह दायित्व निर्धारित किया गया कि वह अपने क्षेत्रान्तर्गत समस्त नागरिक सुविधाऐं जुटाये। इसके लिए क्षेत्रीय कार्यालय में एक सहायक नगरपाल तथा उसके कार्यों में सहयोग देने के लिए भवन निर्माण, जलापूर्ति, जल निकास, स्वास्थ्य, प्रसूति एवं बाल कल्याण, प्रकाश, शिक्षा, कर, लेखा, उद्यान, लाइसेंस आदि से सम्बन्धित कर्मचारी भी होते हैं। जिनकी चरित पंजिका भी सहायक नगरपाल द्वारा ही लिखी जाती है।

दिल्ली नगर निगम में प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण के अतिरिक्त राजनीतिक विकेन्द्रीकरण भी किया गया है। इसलिए प्रत्येक क्षेत्रीय कार्यालय के लिए एक समिति स्थापित की गयी है। जिसमें उस क्षेत्र के अन्तर्गत स्थित सभी नगर निर्वाचन क्षेत्रों (म्यूनिसिपल बार्डों) के पार्षद सम्मिलित होते हैं। क्षेत्रीय सहायक नगरपाल इस समिति का सचिव होता है। इस समिति को निम्नलिखित कार्य सौंपे गये हैं-

- क्षेत्र के बजट प्रस्ताव पर विचार करना तथा उसे मुख्यालय को अग्रप्रेषित करना।
- वह क्षेत्र के संग्रहण (वसूली) प्राप्ति तथा व्यय सम्बन्धी लेखपत्रों पर विचार करती है।
- वह क्षेत्र में चिकित्सा तथा शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं की स्थापना, नालियों, शौचालयों तथा हाटों के निर्माण के सम्बन्ध में प्रस्तावों पर विचार करना तथा उपयुक्त अधिकारियों के विचार हेतु संस्तुतियां करना।

- वह अपने क्षेत्राधिकार में स्थापित विभिन्न विभागों के क्रियावन्वयन की मासिक तथा त्रैमासिक रिपोर्टो पर विचार करती है तथा निर्णय लेती है या आवश्यकतानुसार उपयुक्त अधिकारियों के विचार हेतु संस्तुतियां करती है।
- अपने कार्यक्षेत्र में स्थित संस्थाओं को अनुदान देने के सम्बन्ध में निगम के अनुदान समिति को परामर्श देना।
- किसी ऐसे विषय की जांच करना जिसे निगम ने उसके पास भेजा है और उसके सम्बन्ध में रिपोर्ट व सलाह देना।
- नगरपाल को दिल्ली नगरपालिका अधिनियम के प्रशासन से सम्बन्धित किसी मामले की रिपोर्ट, योजनाएं, प्राक्कलन, लेखा विवरण तथा योजना आदि प्रस्तुत करने का आदेश देना है। किन्तु दिल्ली विद्युत पूर्ति व्यवसाय तथा दिल्ली परिवहन व्यवसाय पर यह नियम लागू नहीं होता है, अर्थात ये दोनों अपवाद हैं।
- क्षेत्रीय सहायक नगरपाल द्वारा संविधि के तहत प्रदत्त अधिकार के आधार पर सम्पत्ति के निबटान या पट्टे पर दी जाने वाली भूमि के सम्बन्ध में की गयी कार्यवाही के सम्बन्ध में प्राप्त रिपोर्ट पर विचार करना।
- क्षेत्र में 25 हजार रूपये तक की लागत से सम्पादित किये जाने वाले कार्यों के प्राक्कलन व योजनाओं को स्वीकृत करना, बशर्ते उनके लिए अधिकृत बजट में प्रावधान किया गया हो। इन कार्यों में बिजली, परिवहन, जल व्यवस्था तथा मल निकास सम्बन्धी कार्य सम्मिलित नहीं होंगे।

दिल्ली नगर निगम द्वारा क्षेत्रीय सहायक नगरपालों के अधीन काम करने वाले नौ क्षेत्रों को तीन इकाईयों में संगठित किया गया है। प्रत्येक इकाई में तीन-तीन क्षेत्रीय कार्यालय सम्मिलित किये गये हैं। प्रत्येक इकाई को एक उप-नगरपाल के अध्यक्षता में रखा गया है। इस उपनगरपाल को अपने अधीन स्थापित तीनों क्षेत्रीय कार्यालयों का व्यापक निरीक्षण तथा परिवीक्षण करने का अधिकार प्रदान किया गया है।

8.5.5 हैदराबाद

हैदराबाद में नगर प्रशासन को विकेन्द्रित करने के लिए नगर निगम को छः मण्डलों (हलकों) में विभाजित किया गया है। प्रत्येक मण्डल कार्यालय एक सहायक नगरपाल के नियन्त्रण में कार्य करता है। प्रत्येक मण्डल कार्यालय में एक सहायक अभियन्ता, सहायक स्वास्थ्य चिकित्साधिकारी तथा सहायक नियोजन अधिकारी होता है। इन सभी

अधिकारियों को नागरिक सेवाओं की व्यवस्था एवं उनके अनुरक्षण का अधिकार दिया गया है। ये तकनीकी अधिकारी अपने विभागाध्यक्षों के निमन्त्रण व निर्देशन में कार्य करते हैं। हैदराबाद में नगरीय शासन का विकेन्द्रीकरण पूर्णरूपेण प्रशासकीय कार्य है, इसलिए मण्डलीय स्तर के नगर प्रशासन में जनता को भागीदार नहीं बनाया गया है।

8.6 स्थानीय शासन के संघात्मक व्यवस्था के दोष

भारत में स्थानीय शासन की जो द्विस्तरीय प्रणाली (संघात्मक व्यवस्था) स्थापित की गयी है स्वाभाविक रूप से उसमें भी कुछ ऐसे दोष देखने को मिलते है, जो प्रायः प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण के प्रत्येक योजना में देखने को मिलते है। इनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं-

1. शक्तियों के इस विकेन्द्रीकरण में नागरिकों की भूमिका नाममात्र की या नगण्य है।
2. विकेन्द्रित शक्तियों एवं उनके क्रियान्वयन पर इतने अधिक प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं कि क्षेत्रीय या निम्न स्तर की संस्थाए केवल संस्तुति करने वाली निकाय मात्र बनकर रह गयी है।
3. क्षेत्रीय अधिकारी तथा निगम के कर्मचारियों में भी सम्बन्ध तनावपूर्ण होता है, क्योंकि तकनीकी व वृत्तिक कर्मचारी निगम के मुख्यालय में विराजमान अपने-अपने विभागाध्यक्षों के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में काम करते हैं और क्षेत्रीय अधिकारी (सहायक नगरपाल) से कहा जाता है कि वह उन्हें काम बतलाये और सेवा के लिए उत्प्रेरित करें, जबकि उन पर उसका कोई निश्चित प्रशासकीय नियन्त्रण नहीं होता है। इसलिए निगम के कर्मचारी क्षेत्रीय अधिकारियों की परवाह नहीं करते हैं, जिससे स्थानीय निकाय के कार्यों व दायित्वों के निर्वहन में कठिनाई का सामना करना पड़ता है।
4. इस संघीय व्यवस्था में क्षेत्रीय स्तर पर कार्यालयों व कर्मचारियों की व्यवस्था निगम के व्यय को अनिवार्य रूप से बढ़ा देती है। इसके अतिरिक्त इन क्षेत्रीय कर्मचारियों के विरूद्ध आम शिकायत यह भी है कि वे क्षेत्रीय कार्यालय में उपस्थित रहने के बजाय मुख्यालय के अपने अधिकारियों की गणेश परिक्रमा (खुशामद) में लगे रहते हैं।
5. इस विकेन्द्रीकरण में कभी-कभी नागरिकों का कोई छोटा सा गुट क्षेत्रीय कार्यालय के कर्मचायिों से सांठगाठ करके क्षेत्रीय प्रशासन पर वर्चस्व स्थापित कर लेता है। इस प्रकार यह सम्भावना बढ़ जाती है कि वह अपने हितों को पूरा करने लगे और सामाजिक हितों को क्षति पहुँचाये। ऐसी स्थित नगर प्रशासन के सुचारु संचालन में व्यवधान उत्पन्न करने लगती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सत्ता अथवा शक्ति का विकेन्द्रीकरण चाहे वह राजनीतिक हो या प्रशासकीय, उसमें गुण और दोष दोनों होते हैं, इसलिए उसका अंधानुकरण नहीं किया जाना चाहिए। नगरीय शासन में एकरूपता की आवश्यकता होती है, जिसके लिए केन्द्रीकृत शासन होता है, जबकि क्षेत्रीय या स्थानीय समस्याओं के शीघ्र निस्तारण तथा शासन को जनता के निकट बनाये रखने के लिए विकेन्द्रीकरण आवश्यक होता है। अतः केन्द्रीकरण व विकेन्द्रीकरण के बीच सामंजस्य का होना आवश्यक है, जिससे प्रशासन में एकरूपता के साथ-साथ उसमें लोकतान्त्रिक मूल्यों का समावेश किया जा सके।

अभ्यास प्रश्न-

1. क्या मानव प्रकृति से आत्म-केन्द्रित होता है?
2. संघात्मक शासन में शक्तियों का विभाजन कितने स्तरों पर होता है?
3. स्थानीय शासन में शक्तियों का विभाजन किस शासन के अनुरूप होता है?
4. स्थानीय शासन के संघात्मक रूप में नगरीय शासन की शक्तियां किसमें निहित होती है?
5. स्थानीय शासन की अवधारणा किस सिद्धान्त पर आधारित है?
6. मुम्बई नगर निगम के प्रशासन को कितने क्षेत्रों में विभाजित कर प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण किया गया है?
7. कलकत्ता नगर शासन का विकेन्द्रीकरण किस अधिनियम के द्वारा किया गया है?
8. मद्रास में राजनीतिक व प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण के लिए 'मद्रास नगरपालिका अधिनियम 1919' को कब संशोधित किया गया था?
9. दिल्ली में 1957 ई0 में नगर निगम की स्थापना के पूर्व कितनी नगरपालिकाएं कार्यरत थीं?
10. नगर शासन के क्षेत्रीय कार्यालय का मुख्य अधिकारी क्या कहलाता है?

8.7 सारांश

वर्तमान में औद्योगीकरण व मानव जीवन की बढ़ती हुई भौतिक आवश्यताओं ने लोगों को चुम्बक की तरह नगरों की ओर आकर्षित किया है। जिसके कारण कस्बा नगरों में तथा नगर महानगर में परिवर्तित होने लगे हैं। महानगरों का भी आकार बढ़ा है, इसलिए अकेले नगर निगम कार्यालय के लिए यह सम्भव नहीं रह गया है कि वह जनता की समस्त आवश्यकताओं को पूरा कर सके। इसलिए कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, दिल्ली व हैदराबाद में नगरीय शासन का विकेन्द्रीकरण या संघात्मक रूप स्थापित किया गया है। विकेन्द्रीकरण को मूर्त रूप देने के लिए नगर शासन को नगर निगम के मुख्य कार्यालय तथा क्षेत्रीय कार्यालयों के बीच विभाजित कर दिया गया है। इससे

नगरीय शासन का द्विस्तरीय ढ़ाँचा स्थापित हो गया है। कुछ नगरों में प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण ही किया गया है तो कुछ में प्रशासकीय के साथ-साथ राजनीतिक विकेन्द्रीकरण कर क्षेत्रीय कार्यालयों के कार्यों में जनता को भी सहभागी बनाने का प्रयास किया गया है।

8.8 शब्दावली

संघात्मक- एक ऐसा ढ़ाँचा जहाँ राज्य या निचले स्तर की संस्था अपनी स्वायत्तता के साथ केन्द्र या उच्च स्तर की संस्था का हिस्सा हो, भौतिक- सांसारिक या दृष्य जगत से सम्बन्धित, प्रत्यायोजित- किसी उच्च संस्था या अधिकारी द्वारा अपनी शक्तियों का अधीनस्थों को हस्तान्तरण, कर्तव्य- जो करने योग्य हो या किया जाना चाहिए, सामाजिक- समाज का या समाज के हित में, आत्मकेन्द्रित- जो सिर्फ अपने बारे में सोचे, स्थानीय- जो किसी स्थान विशेष से सम्बन्धित हो, समन्वय- दो विरोधी व्यवस्थाओं के मध्य का मार्ग या सहयोग, प्रशासकीय- प्रशासन से सम्बद्ध, राजनीतिक- राजनीति से सम्बद्ध, पार्षद- नगर निगम या नगरपालिका के निर्वाचन क्षेत्र (वार्ड) का निर्वाचित प्रतिनिधि

8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. हाँ, **2.** दो स्तरों पर, **3.** प्रजातन्त्र, **4.** लघु और मुख्य प्रशासनिक इकाई में, **5.** स्थानीयता, **6.** 17 क्षेत्रों में, **7.** कलकत्ता नगरपालिका अधिनियम 1951, **8.** 1961 ई0 में, 8. आठ, **10.** सहायक नगरपाल

8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एम0पी0 त्यागी एवं आर0के0 त्यागी, स्थानीय स्वशासन, संजीव प्रकाशन, मेरठ।
2. एस0आर0 माहेश्वरी, भारत में स्थानीय स्वशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

8.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एम0पी0 त्यागी एवं आर0के0 त्यागी, स्थानीय स्वशासन, संजीव प्रकाशन, मेरठ।
2. एस0आर0 माहेश्वरी, भारत में स्थानीय स्वशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में स्थानीय प्रशासन के संघात्मक रूप का संक्षिप्त उल्लेख कीजिये।

2. भारत के विभिन्न प्रमुख नगरों में नगर प्रशासन के संघात्मक रूप या नगरीय प्रशासन के विकेन्द्रीकरण पर प्रकाश डालिये।
3. दिल्ली नगर निगम में शक्तियों के विकेन्द्रीकरण का विस्तृत उल्लेख कीजिये।

इकाई- 9 नगरीय संस्थाओं पर राज्य का नियंत्रण

इकाई की संरचना

9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्देश्य

9.2 नियंत्रण का अर्थ एवं तर्कसंगति

9.3 भारत में नगरीय संस्थाओं पर राज्य के नियंत्रण की आवश्यकता

9.4 भारत में नगरीय संस्थाओं पर राज्य के नियंत्रण की विधियाँ

9.4.1 संस्थागत नियंत्रण

9.4.2 प्रशासनिक नियंत्रण

9.4.3 तकनीकी नियंत्रण

9.4.4 वित्तीय नियंत्रण

9.5 भारत में नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण की सीमाएं

9.6 भारत में नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण का मूल्यांकन

9.7 सारांश

9.8 शब्दावली

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

9.12 निबन्धात्मक प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

स्थानीय शासन राज्य सरकार की सृष्टि है। राज्य के व्यवस्थापिका या विधायिका द्वारा पारित अधिनियमों के आधार पर इसका निर्माण किया जाता है। स्थानीय स्वायत्त शासन संस्थाएं आपने आप में कोई पूर्णतः स्वतंत्र अथवा पृथक अस्तित्व नहीं रखती, अपितु केन्द्रीय या राज सरकार का ही एक आवश्यक और अभिन्न अंग होती हैं। राजनीतिक व्यवस्था में स्थानीय शासन का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है । यह न केवल नागरिकों को प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, अपितु उन्हें शासन करने का आरंभिक ज्ञान भी प्रदान करती है। सामान्यतः

स्थानीय निकायों की स्थापना राष्ट्रीय या प्रांतीय शासन द्वारा किया जाता है। संघात्मक शासन व्यवस्था में स्थानीय शासन प्रणाली की स्थापना राज्य सरकार द्वारा एवं एकात्मक शासन व्यवस्था में इसकी स्थापना केन्द्र सरकार द्वारा की की जाती है। केन्द्र अथवा राज्य सरकार के द्वारा ही स्थानीय शासन की संरचना, उसके अधिकारों और शासन व्यवस्था में उसकी स्थिति का निर्धारण किया जाता है। स्थानीय निकायों से सम्बन्धित इन कानूनों में व्यवस्थापिका कभी भी कोई संशोधन या परिवर्तन कर सकती है या इन्हे समाप्त कर सकती है। अर्थात्, स्थानीय शासन का अस्तित्व केन्द्र या राज्य सरकारों पर निर्भर करता है। स्थानीय शासन से सम्बन्धित विस्तृत विधि-निर्माण का अधिकार राज्य विधान मण्डलों में निहित है। यह व्यापक नियंत्रण विधायी, कार्यपालिका, प्रशासनिक एवं वित्तीय, समस्त क्षेत्रों में है। इसके अतिरिक्त न्यायिक पुनर्रावलोकन के माध्यम से न्यायपालिका भी स्थानीय शासन पर नियंत्रण रखती है। किसी भी संगठन में कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिए नियंत्रण की आवश्यकता होती है। नियंत्रण का कार्य, सरकार एवं उच्चाधिकारियों का मुख्य दायित्व है। नियंत्रण-व्यवस्था का उद्देश्य यह देखना होता है कि संगठन की प्रत्येक इकाई में कार्यरत कार्मिक दिये गये आदेशों, निर्देशों तथा नियमों के अनुरूप कार्य कर रहे हैं अथवा नहीं।

इस अध्याय का उद्देश्य पाठकों को भारत में नगरीय संस्थाओं पर राज्य का नियंत्रण से परिचय कराना है। इसके अंतर्गत नियंत्रण का अर्थ, औचित्य एवं भारत में नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण की विधियाँ, नियंत्रण की सीमाएं एवं नियंत्रण का मूल्यांकन पर भी विचार-विमर्श किया जायेगा।

9.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- नियंत्रण का अर्थ एवं तर्कसंगति के बारे में ज्ञान कर सकेंगे।
- साथ ही भारत में नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण की आवश्यकता के बारे में जान सकेंगे।
- भारत में नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण की विधियों की व्याख्या करने में सक्षम हो पायेंगे तथा
- भारत में नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण की सीमाओं का सविस्तार वर्णन कर पायेंगे।

9.2 नियंत्रण का अर्थ एवं तर्कसंगति

नियन्त्रण प्रशासन एवं प्रबन्धन की एक विधा है। किसी भी लोकतान्त्रिक व्यवस्था में नियंत्रण को आवश्यक माना गया है। नियंत्रण का उद्देश्य ऐसे तंत्र की स्थापना करना होता है जो समय-समय पर अधीनस्थों के वास्तविक

व्यवहार का निरीक्षण करता रहे और उसके आधार पर अनुशासनात्मक कार्यवाही भी करे। पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण प्रशासन एवं प्रबन्ध न को लोकतान्त्रिक रूप देने में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। नियंत्रण के अलावा प्रबन्धन के अन्य कार्य हैं- नियोजन, संगठन, कर्मचारियों की नियुक्ति, प्रशिक्षण, निर्देशन आदि। प्रबन्धन में नियंत्रण एक महत्वपूर्ण कार्य है, क्योंकि यह गलतियाँ सुधारने तथा सुधारात्मक कदम उठाने में मदद करता है। आधुनिक संकल्पना यह है कि नियंत्रण, भविष्य को देखने जैसा कार्य है जबकि पहले नियंत्रण को गलती को सुधारने वाला कार्य समझा जाता था। प्रबन्धन में नियन्त्रण का अर्थ है- मानक घोषित करना, वास्तविक कार्यक्षमता को मापना तथा सुधारात्मक कार्यवाही करना। नियंत्रण संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संगठन कार्य के निष्पादन को निर्देशित करता है। नियंत्रण कार्य में निष्पादन के स्तर निर्धारित किए जाते हैं, वर्तमान निष्पादन को मापा जाता है। इसका पूर्वनिर्धारित स्तरों से मिलान किया जाता है और विचलन की स्थिति में सुधारात्मक कदम उठाए जाते हैं। किसी भी संगठन में कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिए नियंत्रण की आवश्यकता होती है। नियंत्रण का कार्य, उच्चाधिकारियों का मुख्य दायित्व है। नियंत्रण-व्यवस्था का उद्देश्य यह देखना होता है कि संगठन की प्रत्येक इकाई में कार्यरत कार्मिक दिये गये आदेशों, निर्देशों तथा नियमों के अनुरूप कार्य कर रहे हैं अथवा नहीं। नियंत्रण का क्षेत्र उस क्षमता या परिधि को प्रदर्शित करता है, जो किसी नियंत्रणकर्ता अधिकारी में होती है। अर्थात एक अधिकारी एक समय में कितने अधीनस्थों को सफलतापूर्वक नियंत्रित कर सकता है। इसे प्राय: 'नियंत्रण विस्तृति', 'प्रबन्ध का क्षेत्र', 'पर्यवेक्षण का क्षेत्र' या 'सत्ता का क्षेत्र' भी कहा जाता है। नियन्त्रण का क्षेत्र, संगठन की संरचना, उद्देश्य, कार्य प्रकृति, पर्यवेक्षक की क्षमता तथा अधीनस्थों के सहयोग इत्यादि पर निर्भर करता है।

सामान्यतः स्थानीय निकायों की स्थापना राष्ट्रीय या प्रान्तीय शासन द्वारा किया जाता है। संघात्मक शासन व्यवस्था में स्थानीय शासन प्रणाली की स्थापना राज्य सरकार द्वारा एवं एकात्मक शासन व्यवस्था में इसकी स्थापना केन्द्र सरकार द्वारा की की जाती है। केन्द्र अथवा राज्य जिस भी स्तर के सरकार के द्वारा स्थानीय शासन की स्थापना की गयी हो, उसी स्तर पर पारित अधिनियमों के द्वारा स्थानीय शासन की संरचना उसके अधिकारों और शासन व्यवस्था में उसकी स्थिति का निर्धारण किया जाता है। स्थानीय निकायों से सम्बन्धित इन कानूनों में व्यवस्थापिका कभी भी कोई संशोधन या परिवर्तन कर सकती है या इन्हे समाप्त कर सकती है। अर्थात्, स्थानीय शासन का अस्तित्व केन्द्र या राज्य सरकारों पर निर्भर करता है। स्थानीय शासन से सम्बन्धित विस्तृत विधि-

निर्माण का अधिकार राज्य विधान-मण्डलों में निहित है। यह व्यापक नियंत्रण विधायी, कार्यपालिका, प्रशासनिक एवं वित्तीय समस्त क्षेत्रों में है।

नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिए नियंत्रण आवश्यक है। योजनाओं के बेहतर समन्वय और क्रियान्वयन भी नियंत्रण द्वारा बेहतर सम्भव है। इसके अभाव में प्रशासनिक अधिकारियों के स्वेच्छाचारी एवं अनुत्तरदायी होने की पर्याप्त सम्भावना बनी रहती है एवं स्थानीय स्तर पर नौकरशाही की लालफीताशाही पनपती है। नगरीय निकायों का बहुआयामी कार्य, वित्त का साधन एवं अन्य ऐसे बहुत से कारण है जो नियंत्रण को आवश्यक बनाते हैं।

9.3 भारत में नगरीय संस्थाओं पर राज्य के नियंत्रण की आवश्यकता

शहरी स्थानीय निकायों के लिए समान ढ़ाँचा प्रदान करने के लिए और स्वशासन के प्रभावशील प्रजातांत्रिक इकाईयों के रूप में निकायों के कार्यों को सुदृढ़ बनाने में सहायता देने के लिए संसद में 1992 में नगरपालिकाओं के सम्बन्ध में संविधान (74वां संशोधन) अधिनियम, 1992 अधिनियमित किया है। नगरीय शासन से सम्बन्धित अनुच्छेदों का वर्णन संविधान की 12वीं अनुसूची में अनुच्छेद- 243(पी) से 243(जेडजी) तक किया गया है। नगरीय शासन से सम्बन्धित संस्थाओं के तीन प्रकार हैं- नगर पंचायत, नगरपालिकाएं एवं नगर निगम। जनसंख्या के आधार पर ये तीन वर्ग हैं- बड़ी जनसंख्या वाले नगरों के लिए नगर निगम या महानगर पालिका, दूसरा, नगर पालिका तथा तीसरा, नगर पंचायत जो जनसंख्या में भारी वृद्धि के कारण नगरों में परिवर्तित हो रहे हैं। अनुच्छेद- 243 थ, ने प्रत्येक राज्य के लिए ऐसी इकाइयां गठित करना अनिवार्य कर दिया है। नगरीय संस्थाओं को स्थानीय विकास की मुख्य इकाई के रूप में स्थापित करने के लिए संविधान की बारहवीं अनुसूची में नगरीय संस्थाओं को विशेष कार्य एवं अधिकार सौपें गए हैं। अलग-अलग राज्यों के नगरीय निकाय कानून के अंतर्गत जनसंख्या का आकार अलग-अलग है। 74वें संविधान संशोधन के द्वारा यह प्रावधान किया गया है कि राज्य विधानमंडल द्वारा नगरपालिकाओं को ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान किये जाएगें जो स्वशासन से जुड़ी संस्थाओं को उनके कार्य निष्पादन के लिए आवश्यक हों। फलस्वरूप 12वीं अनुसूची में अनुच्छेद- 243 ब, के अनुसार 18 विषय हैं, जिन पर नगरपालिकाओं को विधि बनाने की शक्ति प्रदान की गई है ।

सामान्यतः स्थानीय निकायों की स्थापना राष्ट्रीय या प्रांतीय शासन द्वारा किया जाता है। संघात्मक शासन व्यवस्था में स्थानीय शासन प्रणाली की स्थापना राज्य सरकार द्वारा एवं एकात्मक शासन व्यवस्था में इसकी स्थापना केन्द्र सरकार द्वारा की की जाती है । केन्द्र अथवा राज्य जिस भी स्तर के सरकार के द्वारा स्थानीय शासन की स्थापना की

गयी हो, उसी स्तर पर पारित अधिनियमों के द्वारा स्थानीय शासन की संरचना उसके अधिकारों और शासन व्यवस्था में उसकी स्थिति का निर्धारण किया जाता है। स्थानीय निकायों से सम्बन्धित इन कानूनों में व्यवस्थापिका कभी भी कोई संशोधन या परिवर्तन कर सकती है या इन्हे समाप्त कर सकती है। अर्थात्, स्थानीय शासन का अस्तित्व केन्द्र या राज्य सरकारों पर निर्भर करता है। स्थानीय शासन से सम्बन्धित विस्तृत विधि-निर्माण का अधिकार राज्य विधान-मण्डलों में निहित है। यह व्यापक नियंत्रण विधायी, कार्यपालिका, प्रशासनिक एवं वित्तीय, समस्त क्षेत्रों में है। इसके अतिरिक्त न्यायिक पुनरावलोकन के माध्यम से न्यायपालिका भी स्थानीय शासन पर नियंत्रण रखती है।

स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं आपने आप में कोई पूर्णतः स्वतंत्र अथवा पृथक अस्तित्व नहीं रखती, बल्कि केन्द्र या राज्य सरकार का ही एक आवश्यक एवं अभिन्न अंग होती है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्थानीय निकायों पर राज्य के नियंत्रण को आवश्यक माना गया है। पर्यवेक्षण और नियंत्रण प्रशासन को प्रजातान्त्रिक रूप प्रदान करते हैं। इसके अभाव में प्रशासनिक अधिकारियों के स्वेच्छाचारी एवं अनुत्तरदायी होने की पर्याप्त सम्भावना बनी रहती है एवं स्थानीय स्तर पर नौकरशाही की लालफीताशाही पनपती है। नगरीय संस्थाओं का बहुआयामी कार्य, निरंकुश होने की आशंका, अनुदानों का सही उपयोग, विविध सेवाओं पर अंकुश, वित्त का साधन एवं अन्य ऐसे बहुत से कारण हैं जो नियंत्रण को आवश्यक बनाते हैं।

नगरीकरण ग्रामीण से नगरीय जीवन में रूपान्तरण की प्रक्रिया है। जब एक समाज कृषिपरक अर्थव्यवस्था से औद्योगिक अर्थव्यवस्था को अपनाता है तथा एक छोटे समरूप समाज से एक विशाल विविधतापूर्ण समाज में परिणत होता है। भारत में नगरीय क्षेत्रों की जनसंख्या, ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में दोगुनी गति से बढ़ रही है। नगरों में जनसंख्या के इस बढ़ते दबाव के कारण अधिक सेवाओं, सुविधाओं व जीवन यापन के लिए बेहतर वातावरण की आवश्यकता पड़ रही है। शहरी क्षेत्रों में अवस्थापना तथा मूलभूत नागरिक सुविधाओं पर अपेक्षाकृत अधिक दबाव होने के कारण कालान्तर से ही शहरों के सुनियोजित विकास की आवश्यकता का अनुभव किया जाता रहा है। इसी क्रम में प्रदेश के नगरीय क्षेत्रों को नगरीय स्थानीय निकाय के एक स्वतंत्र इकाई के रूप में अंगीकार किया गया है। नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिए नियंत्रण आवश्यक है। योजनाओं के बेहतर समन्वय और क्रियान्वयन भी नियंत्रण द्वारा बेहतर सम्भव है।

9.4 भारत में नगरीय संस्थाओं पर राज्य के नियंत्रण की विधियाँ

राज्य सरकारों द्वारा नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण के आयाम भारत में भिन्न-भिन्न हैं। विविध अधिनियमों द्वारा स्थापित होने के कारण नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण व्यवस्था में एकरूपता का अभाव है, फिर भी कतिपय आयामों में समानता है। सभी राज्यों में नियंत्रण का आधार निर्मित अधिनियम है, वहीं नियंत्रण का दायित्व सरकार सरकार के कार्यकारी विभागों पर होता है। नगरीय निकायों पर नियंत्रण इसकी विविध इकाईयों के परिप्रेक्ष्य में ज्यादा महत्वपूर्ण है। अशिक्षित एवं अनुभवहीन जनप्रतिनिधियों की अधिकता के कारण नगरीय निकायों पर नियंत्रण आवश्यक है।

भारत में नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण की विधियाँ निम्नलिखित हैं-

9.4.1 संस्थागत नियंत्रण

नगरीय व्यवस्था पर विविध संस्थाएं भिन्न-भिन्न माध्यमों से नियंत्रण रखती है। इनमें व्यस्थापिका की भूमिका अति महत्वपूर्ण है। स्थापना से लेकर भंग करने तक का अधिकार विधायिका को प्राप्त है। नगरीय निकायों के द्वारा किये जानेवाले कार्यों एवं निर्णयों पर केन्द्रीय या राज्य सरकार के नियमों एवं अधिनियमों का पर्याप्त प्रभाव रहता है और विरोध की दशा में केन्द्र या राज्य सरकार के नियमों को प्राथमिकता दी जाती है। संस्थागत नियंत्रण के माध्यम निम्न हैं-

1. **व्यवस्थापिका द्वारा नियंत्रण-** सामान्यतः नगरीय निकायों की स्थापना राष्ट्रीय या प्रांतीय सरकारों की विधायिका या व्यवस्थापिका द्वारा किया जाता है। संघात्मक शासन व्यवस्था में नगरीय शासन प्रणाली की स्थापना राज्य सरकार द्वारा एवं एकात्मक शासन व्यवस्था में इसकी स्थापना केन्द्र सरकार द्वारा की की जाती है। अधिनियमों के द्वारा स्थानीय नगरीय शासन की संरचना उसके अधिकारों और शासन व्यवस्था में उसकी स्थिति का निर्धारण विधायिका या व्यवस्थापिका द्वारा किया जाता है। नगरीय स्थानीय निकायों से सम्बन्धित इन कानूनों में व्यवस्थापिका कभी भी कोई संशोधन या परिवर्तन कर सकती है या इन्हे समाप्त कर सकती है। अर्थात् स्थानीय शासन का अस्तित्व केन्द्र या राज्य सरकारों पर निर्भर करता है। नगरीय स्थानीय शासन से सम्बन्धित विस्तृत विधि-निर्माण का अधिकार राज्य विधान मंडलों में निहित है। इस प्रकार अंतिम सत्ता व्यवस्थापिका में ही निहित है।
2. **आकार, संरचना एवं चयन सम्बन्धी नियंत्रण-** स्थानीय शासन की संरचना उसके आकार एवं चयन तथा शासन व्यवस्था में उसकी स्थिति का निर्धारण राज्य सरकार द्वारा किया जाता है। नगर पंचायत, नगर

पालिका परिषद् तथा नगर निगम के आकार राज्य सरकार के दिशा निर्देशों के अनुरूप होता है। निकायों में सदस्यों की संख्या के निर्धारण का अधिकार भी राज्य सरकार के पास है।

3. **कार्य सूची पर नियंत्रण-** शहरी निकायों के विविध स्तरों पर कार्य सूची का निर्धारण राज्य सरकार करती है एवं अनंतर इसे सम्बन्धित संस्थाओं को प्रेषित कर दिया जाता है। यथानुरूप हीं समितियों का संचालन भी होता है।
4. **कर्मचारियों पर नियंत्रण,चयन, भर्ती, प्रतिनियुक्ति, प्रशिक्षण, सेवा शर्ते-** नगरीय संस्थाओं के विविध स्तरीय कर्मचारियों का चयन, प्रतिनियुक्ति, प्रशिक्षण एवं सेवा शर्तों का निर्धारण राज्य सरकार करती है। उदाहरण के लिए नगर पंचायत, नगरपालिकाएं एवं नगर निगम के प्रशासकों एवं अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है। साथ ही जिन कार्यों को निकायों से संदर्भित किया है उन विभागों के विकास खंड या जिला स्तरीय अधिकारी नगर पंचायत, नगरपालिकाएं एवं नगर निगम के साथ कार्य करते हैं। नगर पंचायत अधिकारी/अधिशासी अधिकारी राज्य सरकार का अधिकारी होता है जो सामान्यतः राज्य असैनिक या सामान्य सेवा (पी0सी0एस0) संवर्ग से सम्बन्ध रखता है और इनकी राज्य सरकार द्वारा प्रतिनियुक्ति होती है। वह प्रशासनिक कार्यों को करता है और नगरीय स्थानीय निकाय की कार्यप्रणाली को निष्पादित करता है। वहीं आयुक्त नगर निगम का मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी होता है जिसकी नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती है।
5. **कागज, अभिलेखों एवं संपत्ति पर नियंत्रण-** नगरीय संस्थाओं के समस्त अभिलेखों एवं संपत्ति पर राज्य सरकार का नियंत्रण होता है। राज्य सरकार कभी भी अभिलेख मांग सकता है और इसकी जांच भी कर सकता है।

9.4.2 प्रशासनिक नियंत्रण संरचना

प्रशासनिक नियंत्रण का उद्देश्य ऐसी नीति और निर्णयों को क्रियान्वित होने से रोकना है जो सम्बन्धित संस्था के प्राथमिक लक्ष्य और उद्देश्य के विरुद्ध हो। प्रशासनिक नियंत्रण मुख्यतः गैर-सरकारी सदस्यों के विरुद्ध होता है। यह नियंत्रण राज्य सरकार में ही निहित है और वह प्रशासनिक अधिकारियों के सहयोग से इन्हें क्रियान्वित करता है। यह नियंत्रण विविध माध्यमों द्वारा होता है, जो निम्नलिखित हैं-

1. **निलंबन एवं भंग करने का अधिकार-** इस अधिनियम में प्रत्येक नगरपालिका का कार्यकाल 05 वर्ष निर्धारित किया गया है, किन्तु इसे समय से पहले अर्थात कार्यकाल पूरा होने से पहले भी भंग किया जा

सकता है। परन्तु विघटन के पूर्व नगरपालिका को उचित सुनवाई का अवसर दिया जाएगा। तत्समय प्रवृत विधि में किए गए किसी संशोधन का प्रभाव किसी स्तर पर किसी नगरपालिका के विघटित करने का नहीं होगा जो ऐसे संशोधन के पूर्व कार्य कर रही है जब तक कि प्रावधानों के अधीन विनिर्दिष्ट अवधि का अवसान नहीं हो जाता है। साथ ही शक्ति और संस्था के दुरुपयोग होने पर राज्य सरकार संस्था के विविध इकाईयों को निलंबित कर सकती है अथवा भंग भी कर सकती है। प्रत्येक इकाई का कार्यकाल 05 वर्ष निर्धारित किया गया है, किन्तु इसे समय से पहले अर्थात कार्यकाल पूरा होने से पहले भी भंग किया जा सकता है।

2. **प्रस्तावों का निलंबन एवं निरस्तीकरण-** नगरीय संस्थाओं के प्रस्तावों पर अंतिम निर्णय लेने का अधिकार राज्य सरकार को है। वह प्रस्तावों को निलंबित अथवा निरस्त भी कर सकती है। नगरीय संस्थाओं के विविध स्तरों पर प्रस्तावों के सम्बन्ध में फैसला राज्य सरकार करती है एवं अनंतर इसे सम्बन्धित संस्थाओं को प्रेषित कर दिया जाता है। यथानुरूप ही अग्रेतर कार्यवाही होती है।
3. **सदस्यों एवं पदाधिकारियों को पदमुक्त करना-** यह नियंत्रण राज्य सरकार में ही निहित है और वह प्रशासनिक अधिकारियों के सहयोग से इन्हें क्रियान्वित करता है।
4. **अविश्वास प्रस्तावों का क्रियान्वयन-** अविश्वास प्रस्तावों का क्रियान्वयन भी राज्य सरकार द्वारा ही होता है। सम्बन्धित संस्थाएं अविश्वास का प्रस्ताव पारित करके और राज्य सरकार आदेश जारी करके जन प्रतिनिधियों को पदच्युत कर सकती है।
5. **सामान्य निर्देशों का प्रसारण-** अधिनियमों के द्वारा स्थानीय शासन से सम्बन्धित सामान्य निर्देश राज्य सरकार द्वारा जारी किया जाता है। और भी स्थानीय निकायों से सम्बन्धित इन कानूनों में राज्य सरकार कभी भी कोई संशोधन या परिवर्तन कर सकती है या इन्हें समाप्त कर सकती है।
6. **निरीक्षण एवं जांच-** निरीक्षण, दौरे एवं व्यक्तिगत भ्रमण या परियोजना की गतिविधियों का नियमित रूप से देखरेख करना ही 'निरीक्षण' है। यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा नगरीय निकाय के विविध पहलुओं के बारे में जानकारी एकत्रित किया जाता है। निरीक्षण के द्वारा प्राप्त जानकारी का सही विवरण करने से, यह जानकारी परियोजना के उपलब्धियों को सुधारने के लिए आगे निर्णय लेने में काम आती है।

9.4.3 तकनीकी नियंत्रण

स्थानीय शासन का अस्तित्व केन्द्र या राज्य सरकारों पर निर्भर करता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्थानीय निकायों पर राज्य के नियंत्रण को आवश्यक माना गया है। इसके अभाव में प्रशासनिक अधिकारीयों के स्वेच्छाचारी एवं अनुत्तरदायी होने की पर्याप्त सम्भावना बनी रहती है एवं स्थानीय स्तर पर नौकरशाही की लालफीताशाही पनपती है। राज्य सरकार विविध तकनीकी नियंत्रण के माध्यमों का भी उपयोग करती है, जो निम्न हैं-

1. **योजनाओं एवं कार्यक्रमों का तकनीकी अनुमोदन-** इस प्रकार, जो विकास योजनाएं बनाई जाती हैं वे राज्य सरकार को भेजी जायेंगी। अतः शहरी स्थानीय स्वशासन संस्थाओं पर अत्यधिक उत्तरदायित्व हैं। स्थानीय शासन संस्थाओं का स्वरुप एक उद्देशीय न होकर सामान्य उद्देशीय होता है। यह बहुआयामी संस्थान है जो कई प्रकार के कार्यों को करता है। यथा- स्थास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, सफाई, जल आपूर्ति आदि। इन जिम्मेदारियों को पूर्ण करने के लिए इन्हे विविध कार्य आबंटित किये गए हैं। नगरीय संस्थाओं को 18 विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। राज्य सरकार विविध योजनाओं एवं कार्यक्रमों का तकनीकी अनुमोदन द्वारा भी इन पर नियंत्रण रखती है।
2. **सामयिक कर्मचारी बैठक-** सामयिक कर्मचारी बैठक द्वारा भी राज्य सरकार इन पर नियंत्रण रखती है। बैठकों का कार्य वृत्त, उनकी कार्यवाही आदि राज्य सरकार द्वारा अंतिम तौर पर अनुमोदित होती है। समय-समय पर बुलाये गए बैठकों द्वारा भी राज्य सरकार दिशा-निर्देश जारी कर सकती है।
3. **प्रतिवेदन की मांग-** प्रतिवेदन की मांग राज्य सरकार द्वारा की जा सकती है। सरकार इस सम्बन्ध में उचित निर्देश देने का अधिकार रखती है।
4. **नगरीय निकाय एवं नियोजन परिषदों में उपस्थिति-** समय-समय पर बुलाये गए बैठकों द्वारा भी राज्य सरकार दिशा-निर्देश जारी कर सकती है। नगरीय निकाय एवं नियोजन परिषदों में उपस्थिति राज्य सरकार द्वारा इन पर नियंत्रण का परिचायक है।
5. **तकनीकी अधिकारियों के वार्षिक गुप्त प्रतिवेदन से सम्बन्ध रखना**- नियंत्रण व्यवस्था का उद्देश्य यह देखना होता है कि संगठन की प्रत्येक इकाई में कार्यरत कार्मिक दिये गये आदेशों, निर्देशों तथा नियमों के अनुरूप कार्य कर रहे हैं अथवा नहीं। इस सन्दर्भ में राज्य सरकार तकनीकी अधिकारियों के वार्षिक गुप्त प्रतिवेदन का भी पूरा ख्याल रखती है।

9.4.4 वित्तीय नियंत्रण

लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्थानीय निकायों पर राज्य के नियंत्रण को आवश्यक माना गया है। पर्यवेक्षण और नियंत्रण प्रशासन को प्रजातान्त्रिक रूप प्रदान करते हैं। इसके अभाव में प्रशासनिक अधिकारियों के स्वेच्छाचारी एवं अनुत्तरदायी होने की पर्याप्त सम्भावना बनी रहती है एवं स्थानीय स्तर पर नौकरशाही की लालफीताशाही पनपती है। 74वें संशोधन के पूर्व नगरीय स्थानीय संस्थाओं की प्रमुख दुर्बलताओं में से एक यह थी कि उनके पास धन की कमी थी। उनके पास कार्य तो थे, परन्तु उनको करने के लिए धान जुटाने के स्रोत बहुत कम थे, क्योंकि धन के के लिए उनको राज्य सरकार की इच्छा पर निर्भर रहना पड़ता था। सादिक अली समिति के शब्दों में कोई भी संस्था प्रभावशील एवं उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती, यदि वह अपने कार्यों को संचालित करने के लिए पर्याप्त वित्तीय साधन नहीं रखती। इन संस्थाओं के वित्तीय साधनों का केवल एक सीमित भाग ही सरकार द्वारा प्रदान किया जाता है। राज्य सरकार नगरीय संस्थाओं पर विविध माध्यमों से वित्तीय नियंत्रण रखती है, इनमें प्रमुख हैं-

1. **आय की व्यवस्था-** नगरीय निकायों के पास धन की समस्या शुरू से ही रही है। इन संस्थाओं को स्वतंत्र आर्थिक स्रोत या तो दिये नहीं गये या फिर जो भी दिए गये वे अर्थ शून्य हैं। परिणामत: शासकीय अनुदानों पर ही जीवित रहना पड़ता है। राज्य के आर्थिक संसाधनों में से नगरपालिकाओं के हिस्से का उचित बंटवारा करने के लिए तथा नगरपालिकाओं के वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने के लिए राज्य का राज्यपाल प्रत्येक पांच वर्ष के अंतराल पर एक वित्त आयोग का गठन करता है, जो पंचायतों के साथ-साथ नगर पालिकाओं के लिए भी होगा। वित्त आयोग राज्य द्वारा प्रभारित करों, पथकरों से हुई शुद्ध आय को राज्य और नगरपालिकाओं के बीच लागु करेगा, नगरपालिकाओं को सौंपे जाने वाले करों, शुल्कों और पथकरों के निर्धारण के लिए वित्त आयोग उपयुक्त नियम बनाएगा और राज्य की संचित निधि से नगरपालिकाओं को सहायता अनुदान दिए जाने का प्रावधान करेगा। इसके अलावा वित्त आयोग नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति में सुधार लाने के लिए आवश्यक उपाय करेगा और नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति को ठीक रखने की दृष्टि से राज्यपाल द्वारा वित्त आयोग को प्रेषित कोई अन्य विषय के बारे में भी वह राज्यपाल को उपयुक्त सलाह देगा जिसे राज्यपाल अनुवर्ती कार्यवाही के लिए राज्य विधानमंडल के समक्ष रखवाएगा। साथ ही केन्द्रीय वित्त आयोग भी राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर नगरपालिकाओं को संसाधनों की पूर्ति करने की दृष्टि से राज्य की संचित निधि को बढ़ाने के लिए जरुरी उपाय सुझाएगा।

2. **बैंकों की व्यवस्था का उल्लेख**- स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को नगरीय समुदाय के आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपी गयी है, इसलिए राज्य सरकार इन्हें वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराती है तथा मानकों के अनुसार इनसे कार्य की अपेक्षा भी करती है। राज्य सरकार इसलिए बैंकों की व्यवस्था का उल्लेख भी करती हैं।
3. **बजट के सिद्धान्तों का उल्लेख**- नगरीय व्यवस्था में बजट की भूमिका अति महत्वपूर्ण है। बजट एक निश्चित वर्ष के लिए अनुमानित आय-व्यय का विवरण है। बजट उपलब्ध संसाधनों के आकलन करने की प्रक्रिया है तथा पूर्व निर्धारित प्राथमिकताओं के आधार पर संगठन के विभिन्न गतिविधियों के लिए आवंटित करने की प्रक्रिया भी है। यह संसाधनों के आवंटन में प्रतिस्पर्धा की प्राथमिकताओं, निष्पक्षता तथा सामाजिक न्याय के मुद्दों पर भी ध्यान केंद्रित करता है। अपनी वित्तीय भूमिकाओं को छोड़कर बजट द्वारा निम्नलिखित कार्य किए जाते हैं। बजट, नियंत्रण के रूप में कार्य करता है तथा यह विभिन्न विभागों में कार्यों के मूल्यांकन का माध्यम है। यदि कोई विभाग लक्ष्य से दूर है तो इसे बजटीय प्रस्तावों में सूचित किया जा सकता है और सुधारात्मक कार्यवाही की जा सकती है। बजटीय योजना तथा कार्यान्वयन विभिन्न विभागों को एक साथ लाने में मदद करते है तथा उनमे समन्वय स्थापित करते हैं। यह धन का सार्वजनिक उत्तरदायित्व तय करता है। यह सरकारी गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए एक योजनाबद्ध दृष्टिकोण है, जो वृहद् संसाधनों को संगठित करने की मांग करता है।
4. **लेखा-** लेखा परीक्षा का उद्देश्य यह होता है कि लेखा परीक्षा के बाद व्यक्ति/संस्था/तन्त्र/प्रक्रिया के बार में एक राय या विचार व्यक्त किया जाय। लेखांकन का उद्देश्य तभी सफल होता हैं जबकि वे विश्वसनीय हो। लेखांकन विवरणों की विश्व सनीयता को अंकेक्षण सुनिश्चित करता हैं आज के आर्थिक परिवेश में, सूचना व जवाबदेही की भूमिका पहले से भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी हैं। लेखा परीक्षा यह सुनिश्चित करने के लिये की जाती है कि दी गयी सूचना वैध एवं विश्वसनीय है। इससे उस तन्त्र के आन्तरिक नियन्त्रण का भी मूल्यांकन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त संविधानिक रूप से वित्तीय वितरण के लेखाओं की संपरीक्षण कराने के लिए अनुच्छेद- 243 (य) के तहत राज्य विधानमंडल को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह विधि द्वारा लेखाओं के रखे जाने और ऐसे लेखाओं की संपरीक्षा के बारे में उपबंध कर सकेगा।

5. **अंकेक्षण-** किसी भी संस्था के वितीय विवरणों/वित्तीय सूचनाओं की स्वतंत्र जाँच करके उस पर राय व्यक्त करना अंकेक्षण कहलाता है। किसी भी व्यवसाय के जीवित रहने के लिए उसकी कार्यक्षमता बढ़ाने तथा सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए लेखांकन अनिवार्य है। अंकेक्षण का सबसे व्यापक अर्थ किसी व्यक्ति, संस्था, तन्त्र, प्रक्रिया, परियोजना या उत्पाद का मूल्यांकन करना है। अंकेक्षण प्रक्रिया में वे सभी कार्य आते हैं जो अंकेक्षण सिद्धान्तों के अन्तर्गत किसी जाँच के दौरान अपनाये जाते है। अंकेक्षण मानदण्डों के अनुसार क्रियाएं निश्चित की जाती हैं। अंकेक्षण प्रविधि में उन उपायों को सम्मिलित करते हैं, जिन्हें लेखा परीक्षण के लिए आवश्यक साक्ष्य के रूप में एकत्रित करके लेखा पुस्तकों में लिखे व्यवहारों की शुद्धता जाँच के लिए अपनाते हैं। इसमें भौतिक परीक्षण, पुष्टिकरण, पुर्नगणना, मूल प्रपत्रों की जाँच, रिकार्ड से मिलान, सहायक रिकार्ड की जाँच, पूछताछ करना, क्रमानुसार जाँच करना, सम्बन्धित सूचना से किसी मद का सह-सम्बन्ध बैठाना, वित्तीय विवरणों का विश्लेषण आदि शामिल हैं।

9.5 भारत में नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण की सीमाएं

भारत 29 राज्यों और सात केन्द्र शासित प्रदेशों का कार्यक्षेत्र है। बढ़ती आबादी एवं भारत के विभिन्न शहरों में शहरीकरण के साथ, नगर निगमों की स्थापना आवश्यक सामुदायिक सेवाएं, जैसे- स्वास्थ्य केन्द्र, शैक्षणिक संस्थान और आवास, संपत्ति कर जैसे अन्य मामलों में सहायता प्रदान करने के लिए की गई है। आम आदमी के लाभ के लिए स्थापित की गई विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों के प्रभावी निष्पादन और एक बेहतर एवं योजनाबद्ध शहर के निर्माण के लिए नगर निगम राज्य सरकार के साथ हाथ से हाथ मिलाकर कार्य करता है।

नगरीय निकायों पर नियंत्रण के विविध माध्यमों की सूची काफी लम्बी और प्रभावोत्पादक है, तथापि व्यवस्था में नियंत्रण के ये साधन कार्यकुशलता एवं प्रभाव वांछित स्तर तक नहीं छोड़ पाए हैं। सादिक अली समिति और अन्य ने भी इस ओर इशारा किया है। नगरीय संस्थाओं पर न की सीमायें निम्नवत हैं-

1. नियंत्रण के साधन नकारात्मक प्रतीत होते है । नियंत्रण का उद्देश्य समुचित मार्ग दर्शन ना होकर दंडात्मक लगता है।
2. बार-बार शक्तियों का उपयोग करने से सार्वजानिक धन एवं शक्ति का दुरूपयोग होता है और नगरीय निकायों पर से जनता का विश्वास उठने लगता है।
3. नियंत्रण और पर्यवेक्षण की शक्तियां राज्य स्तर पर केंद्रीकृत हो गयी हैं। अतः तुरन्त कार्यवाही करना सम्भव नहीं हो पाता।

4. कई बार सरकारें अपने वैधानिक अधिकारों का उपयोग अपने राजनीतिक उद्देश्यों के लिए करती है, जिससे पक्षपात प्रदर्शित होता है। लेकिन समयाभाव एवं अनिच्छा के कारण ऐसा करना सम्भव नहीं हो पाता।
5. अंकेक्षण की प्रक्रिया भी काफी धीमी और अनुपयोगी सिद्ध हुई है।
6. निर्वाचित प्रतिनिधियों के खिलाफ भी राज्य सरकार अनुशासनात्मक कार्यवाही कर सकती है।
7. दोषी अधिकारियों के खिलाफ कारवाई करने का अधिकार निर्वाचित प्रतिनिधियों को दिया गया है, जिससे अक्सर इसमे त्रुटि एवं गलत धारणाएं विकसित हो जाती है।
8. नियंत्रण के साधन रचनात्मक एवं सुधारात्मक नहीं माने जा सकते। अक्सर यह उत्साह ठंडा प्रतीत होता है।
9. राज्य सरकार के स्तर पर ऐसी संस्था का पूर्णतः अभाव है जो नगरीय संस्थाओं की समस्याओं पर विचार कर उचित सलाह दे सके।
10. इसके अतिरिक्त रचनात्मकता की कमी, राज्य सरकार एवं नगरीय निकायों में खीचतान आदि ढेर सारे ऐसे कारण हैं जो नगरीय संस्थाओं पर राज्य के नियंत्रण की सीमाएं दर्शाती हैं।

9.6 भारत में नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण का मूल्यांकन

स्थानीय स्वशासन व्यवस्था ने देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को विविध समुदाय के आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपी गयी है। स्थानीय शासन संस्थाओं का स्वरुप एक उद्देशीय ना होकर सामान्य उद्देशीय होता है। यह बहुआयामी संस्थान है जो कई प्रकार के कार्यों को करता है। यथा- स्थास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, सफाई, जल आपूर्ति आदि। इन जिम्मेदारियों को पूर्ण करने के लिए इन्हे विविध कार्य आबंटित किये गए हैं। नगरीय संस्थाओं को 18 विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। स्थानीय संस्थाओं के विकास और प्रगति में स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों और अधिकारियों के बीच उचित समन्वय एक आवश्यक तथ्य है। स्थानीय नगरीय संस्थाओं को संवैधानिक प्रस्थिति प्राप्त होने के बावजूद भी इन्हें अपने कार्यकलापों को सुचारू रूप से सम्पादित करने में विभिन्न समस्याओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

समाज कल्याण तथा आर्थिक विकास के उद्देश्य से गठित लोकतांत्रिक ढ़ाँचे से लोगों की कई प्रकार की आशाएं होती हैं। बढ़ती आशाएं प्रशासन में लोगों की भागीदारी के लिए यथार्थवादी एवं प्रभावशाली नीतियों की मांग

करती हैं। राजनैतिक स्वतंत्रता तथा नीतिगत उद्-घोषणाओं से उठी चुनौतियों और आकांक्षाओं के लिए अंत:मन से किए जाने वाले प्रयासों की आवश्यकता है। लोक कार्यों का प्रबन्ध लोकतांत्रिक होना चाहिए। निम्न स्तर पर लोगों के प्रतिनिधियों से लेकर उच्च स्तर तक दायित्वों का विकेंद्रीकरण व स्थानीय स्वायत्तता आवश्यक है। यहाँ द्रष्टव्य है कि भारत की संस्कृति, भाषा आदि की अनेकता इस कार्य को कुछ अधिक जटिल बना देती है।

किसी भी राष्ट्र के विकास का मूल दायित्व सरकार एवं निजी संस्थाओं के सम्मिलित प्रयास से हीं सम्भव है। प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। लोकतंत्र की सर्वश्रेष्ठ पाठशाला उसकी सफलता की सबसे अधिक गारंटी स्थानीय स्वायत्त शासन का संचालन है। यदि लोकतंत्र का अर्थ जनता की समस्याएं एवं उसके समाधान की प्रक्रिया में जनता की पूर्ण तथा प्रत्यक्ष भागीदारी है तो प्रत्यक्ष, स्पष्ट एवं विशिष्ट लोकतंत्र का प्रमाण उतना सटीक अन्यत्र देखने को नहीं मिलेगा, जितना स्थानीय स्तर पर। द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार स्थानीय स्वशासन निकाय अपने स्तर पर एक सरकार है और इस नाते वह देश की मौजूदा शासन प्रणाली का अभिन्न अंग है, इसलिए निर्दिष्ट कार्यों के निष्पादन के लिए इन निकायों को देश के मौजूदा प्रशासनिक ढ़ाँचे की प्रतिस्थापित करते हुए सामने आना चाहिए।

आधुनिक युग को नागरिकों की उभरती हुई जन आकांक्षाओं का युग माना जाता है। वर्तमान समय में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के सहज परिणाम स्वरुप शासन सम्बन्धी कार्यों का अत्यधिक विस्तार हुआ है, जिसे प्रशासन सकारात्मक रूप दे सकता है। यह सत्य है कि राज्य के उद्देश्य और नीतियाँ कितनी भी प्रभावशाली, आकर्षक और उपयोगी क्यों ना हों, उनसे उस समय तक कोई लाभ नहीं हो सकता, जब तक कि उनको प्रशासन के द्वारा कार्य रूप में परिणत नहीं किया जाये। किसी भी संगठन में कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिए नियंत्रण की आवश्यकता होती है। स्थानीय स्वशासन की संस्थाएं आपने आप में कोई पूर्णतः स्वतंत्र अथवा पृथक अस्तित्व नहीं रखती, बल्कि केन्द्र या राज्य सरकार का ही एक आवश्यक एवं अभिन्न अंग होती है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्थानीय निकायों पर राज्य के नियंत्रण को आवश्यक माना गया है। पर्यवेक्षण और नियंत्रण प्रशासन को प्रजातान्त्रिक रूप प्रदान करते हैं। इसके अभाव में प्रशासनिक अधिकारियों के स्वेच्छाचारी एवं अनुत्तरदायी होने की पर्याप्त सम्भावना बनी रहती है एवं स्थानीय स्तर पर नौकरशाही की लालफीताशाही पनपती है। नगरीय संस्थाओं का बहुआयामी कार्य, निरंकुश होने की आशंका,अनुदानों का सही उपयोग, विविध सेवाओं पर अंकुश, वित्त का साधन एवं अन्य ऐसे बहुत से कारण है जो नियंत्रण को आवश्यक बनाते हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. शासन का कौन सा अंग नगरीय निकायों से सम्बन्धित कानूनों में कभी भी कोई संशोधन या परिवर्तन कर सकती है?
2. संघात्मक शासन व्यवस्था में स्थानीय शासन प्रणाली की स्थापना किसके द्वारा की जाती है?
3. एक निश्चित वर्ष के लिए अनुमानित आय-व्यय के विवरण को क्या कहा जाता है?
4. नगरीय संस्थाओं को कितने विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है?
5. नगरपालिका परिषद का कार्यकाल क्या है?

9.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके होंगे कि किसी भी संगठन में कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिए नियंत्रण की आवश्यकता होती है। नियंत्रण का कार्य, सरकार एवं उच्चाधिकारियों का मुख्य दायित्व है। राज्य सरकारों द्वारा नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण के आयाम भारत में भिन्न-भिन्न हैं। नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण ज्यादा महत्वपूर्ण है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्थानीय निकायों पर राज्य के नियंत्रण को आवश्यक माना गया है। पर्यवेक्षण और नियंत्रण प्रशासन को प्रजातान्त्रिक रूप प्रदान करते हैं। इसके अभाव में प्रशासनिक अधिकारियों के स्वेच्छाचारी एवं अनुत्तरदायी होने की पर्याप्त सम्भावना बनी रहती है एवं स्थानीय स्तर पर नौकरशाही की लालफीताशाही पनप सकती है। नगरीय निकाय व्यवस्था में वित्त की व्यवस्था विविध कारणों से महत्व रखती है। और भी किसी भी संगठन में कार्यकुशलता का स्तर बनाए रखने तथा कार्यरत व्यक्तियों के कार्यकरण एवं व्यवहार को संतुलित बनाये रखने के लिए नियंत्रण की आवश्यकता होती है। नियंत्रण का कार्य, सरकार एवं उच्चाधिकारियों का मुख्य दायित्व है। नियंत्रण-व्यवस्था का उद्देश्य यह देखना होता है कि संगठन की प्रत्येक इकाई में कार्यरत कार्मिक दिये गये आदेशों, निर्देशों तथा नियमों के अनुरूप कार्य कर रहे हैं अथवा नहीं।

9.8 शब्दावली

संविधान- कानूनों का संग्रह, देश का सर्वोच्च कानून, मंत्रालय- सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के लिए कार्यकारी एवं उत्तरदायी संस्था, विभाग- नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु मंत्रालय का एक भाग, अध्यादेश- विधान

मंडल की कार्यवाही न होने की स्थिति में राजनीतिक कार्यपालिका द्वारा लाया गया कानून, उपबंध- प्रावधान, स्वैच्छिक संगठन- ऐसा गैर-सरकारी संगठन जिसका उद्देश्य समाज सेवा हो

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. व्यवस्थापिका, **2.** राज्य सरकार, **3.** बजट, **4.** 18 विषयों पर, **5.** 5 वर्ष

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हरिश्चंद्र शर्मा, 2005, भारत में स्थानीय प्रशास, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
2. चन्द्रप्रकाश बर्थवाल, 1997, स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ।
3. एस0आर0 माहेश्वरी, 2005, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
4. बामेश्वर सिंह, 2000, भारत में स्थानीय स्वशासन, राधा प्रकाशन, जयपुर।

9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एल0सी0 जैन, 2005 ,डिसेंट्रलाइजेसन एंड लोकल गर्वनेंस, ऑरिएण्ट लौंगमैन, नई दिल्ली।
2. अरुण कुमार शर्मा, 1995, भारत में स्थानीय शासन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

9.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नियंत्रण का अर्थ एवं नियंत्रण की तर्कसंगति का मूल्यांकन कीजिए।
2. भारत में नगरीय संस्थाओं पर राज्य के नियंत्रण की आवश्यकता का वर्णन कीजिए।
3. भारत में नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण की विधियाँ क्या हैं? विस्तार से वर्णन कीजिए।
4. भारत में नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण की सीमाओं का विश्लेषण कीजिए।

इकाई- 10 नगरीय शासन के आय के साधन

इकाई की संरचना

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 नगरीय शासन की वित्त व्यवस्था- एक परिचय

10.3 नगरीय स्थानीय संस्थाओं के आय के साधन

10.4 नगरीय स्थानीय संस्थाओं की बजट प्रक्रिया

10.4.1 बजट के घटक या अवयव

10.4.2 बजट के प्रकार

10.5 नगरीय शासन की वित्त व्यवस्था एवं राज्य वित्त आयोग की भूमिका

10.6 आर्थिक एवं वित्तीय परिदृश्य का आकलन

10.7 सारांश

10.8 शब्दावली

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

10.0 प्रस्तावना

लोकतंत्र का सैद्धांतिक अर्थ प्रायः जनता के शासन से लगाया जाता है। लेकिन इस सैद्धांतिक अर्थ को व्यावहारिक स्वरुप प्रदान करने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि लोकतान्त्रिक शासन प्रक्रिया में जनता की अधिकतम भागीदारी सुनिश्चित की जाए और जनता को ज्यादा से ज्यादा अधिकार प्रदान किया जाए। लोकतान्त्रिक शासन के विधि निर्माण प्रक्रिया से जनता को जोड़ने और जनता के सबसे नजदीक की संस्थाओं तक लोकतान्त्रिक शक्तियों का विस्तार करने के लिए यह आवश्यक है कि शासन का विकेंद्रीकरण इस प्रकार से किया जाये कि लोकतान्त्रिक शक्ति अंतिम जन तक पहुँचें।

सभ्यता के विकास के साथ शहरीकरण की प्रवृत्ति भी बढ़ी है। शहरी क्षेत्रों में अवस्थापना तथा मूलभूत नागरिक सुविधाओं पर अपेक्षाकृत अधिक दबाव होने के कारण कालान्तर से ही शहरों के सुनियोजित विकास की आवश्यकता का अनुभव किया जाता रहा है। इसी क्रम में प्रदेश के नगरीय क्षेत्रों को नगरीय स्थानीय निकाय के एक स्वतंत्र इकाई के रूप में अंगीकार किया गया है। भारत में 'शहरी स्थानीय शासन' का अर्थ शहरी क्षेत्र के लोगों द्वारा चुने प्रतिनिधियों से बनी सरकार से है। शहरी स्थानीय शासन का अधिकार क्षेत्र उन निर्दिष्ट शहरी क्षेत्रों तक सीमित है, जिसे राज्य सरकार द्वारा इस उद्देश्य के लिए निर्धारित किया गया है। भारत में विभिन्न प्रकार के शहरी स्थानीय शासन हैं- नगरपालिका परिषद्, नगरपालिका, अधिसूचित क्षेत्र समिति, शहरी क्षेत्र समिति, छावनी बोर्ड, शहरी क्षेत्र समिति, पत्तन न्यास(बन्दरगाह का नगर) और विशेष उद्देश्य के लिए गठित एजेंसी। भारत में नगरीय शासन प्रणाली को 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा संवैधानिक दर्जा मिल गया।

वित्त को प्रशासन का जीवन रक्त कहा जाता है जिसके बिना प्रशासनिक निर्णयों को क्रियान्वित करना असम्भव है। नगरीय शासन व्यवस्था में वित्त की व्यवस्था विविध कारणों से महत्व रखती है। स्थानीय निकायों का कार्यक्षेत्र जितना बड़ा है, उनके विभिन्न स्रोत उतने हीं कम हैं। प्रस्तुत इकाई में शहरी स्थानीय संस्थाओं की वित्त व्यवस्था का विश्लेषण किया गया है।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- नगरीय स्थानीय संस्थाओं की वित्त व्यवस्था के बारे में जान सकेंगे।
- आप नगरीय स्थानीय संस्थाओं के आय के स्रोत के बारे में भी जान सकेंगे।
- नगरीय स्थानीय संस्थाओं की बजट प्रक्रिया के बारे में भी आपको ज्ञान प्राप्त होगा तथा
- नगरीय शासन की वित्त व्यवस्था में राज्य वित्त आयोग की भूमिका, नगरीय स्थानीय संस्थाओं की वित्त व्यवस्था पर राज्य का नियंत्रण एवं आर्थिक एवं वित्तीय परिदृश्य का आकलन भी कर पाएंगे।

10.2 नगरीय शासन की वित्त व्यवस्था- एक परिचय

लोकतान्त्रिक शासन के विधि निर्माण प्रक्रिया से जनता को जोड़ने और जनता के सबसे नजदीक की संस्थाओं तक लोकतान्त्रिक शक्तिओं का विस्तार करने के लिए यह आवश्यक है कि शासन का विकेंद्रीकरण इस प्रकार से किया जाये कि लोकतान्त्रिक शक्ति अंतिम जन तक पहुँचे। भारत के सम्पूर्ण स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान राष्ट्रपिता

महात्मा गाँधी ने सत्ता के एकाधिकारवादी प्रवृति की आलोचना करते हुए शासन के लोकतन्त्रीकरण और लोकतान्त्रिक विकेंद्रीकरण की बात की थी। गाँधी जी भारत की विविधता और विशालता को देखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि इस देश में लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है कि इसका स्वरुप बहुलवादी और समावेशी हो, इसीलिए उन्होंने हमेशा भारत में शासन के तीसरे स्तर अर्थात स्थानीय स्वशासन की दिशा में बात की।

शहरी स्थानीय शासन का अधिकार क्षेत्र उन निर्दिष्ट शहरी क्षेत्रों तक सीमित है, जिसे राज्य सरकार द्वारा इस उद्देश्य के लिए निर्धारित किया गया है। भारत में विविध प्रकार के शहरी स्थानीय शासन हैं- नगरपालिका परिषद्, नगरपालिका, अधिसूचित क्षेत्र समिति, शहरी क्षेत्र समिति, छावनी बोर्ड, शहरी क्षेत्र समिति, पत्तन न्यास और विशेष उद्देश्य के लिए गठित एजेंसी।

भारत में नगरीय शासन प्रणाली को 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा संवैधानिक दर्जा मिल गया है। शहरी स्थानीय निकायों के लिए समान ढ़ाँचा प्रदान करने के लिए और स्वशासन के प्रभावशील प्रजातांत्रिक इकाईयों के रूप में निकायों के कार्यों को सुदृढ़ बनाने में सहायता देने के लिए संसद में 1992 में नगरपालिकाओं के सम्बन्ध में संविधान (74वां संशोधन) अधिनियम, 1992 अधिनियमित किया है। अधिनियम पर राष्ट्रपति की सहमति 20 अप्रैल 1993 को प्राप्त हुई। भारत सरकार ने 01 जून, 1993 जिस तारीख से उक्त अधिनियम लागू हुआ, को अधिसूचित किया। नगरपालिका सम्बन्धी नया भाग IX-क को अन्य चीजों के अतिरिक्त तीन प्रकार की नगर पालिकाओं को व्यवस्था करने के लिए संविधान में शामिल किया गया है, अर्थात् ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्र में मार्गस्थ के लिए नगर पंचायतें, छोटे आकार के शहरी क्षेत्रों के लिए नगरपालिका परिषद और बड़े शहरी क्षेत्रों के लिए नगरपालिकाएं, नगरपलिकाओं की नियत अवधि, राज्य निर्वाचन आयोग की नियुक्ति, राज्य वित्त आयोग की नियुक्ति और मेट्रोपोलिटन एवं जिला योजना समितियों का गठन/राज्य/संघ राज्य क्षेत्रों ने अपना निर्वाचन आयोग गठित किया है। नगर निकायों का चुनाव झारखंड और पांडिचेरी को छोड़कर सभी राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों में पूरा किया जा चुका है।

शहरी क्षेत्रों में प्रशासन के लिए निम्नलिखित विविध प्रकार की नगरीय संस्थाओं का गठन किया गया है- नगर निगम, नगरपालिका, नोटिफाईड एरिया समिति, टाउन एरिया समिति, छावनी बोर्ड, टाउनशिप, पोर्ट ट्रस्ट और विशिष्ट उद्देश्य अभिकरण।

नगरीय स्थानीय निकायों के क्षेत्र में निवास करने वाली जनसंख्या को मूलभूत नागरिक सुविधाएं, यथा- स्वच्छ पेय जलापूर्ति, सड़कें/गलियां, जल निकासी, सफाई व्यवस्था, कूड़ा निस्तारण, सीवरेज व्यवस्था, मार्ग प्रकाश, पार्क, स्वच्छ पर्यावरण आदि उपलब्ध कराया जाना इन शहरी स्थानीय निकायों का कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व है। नगरीय संस्थाओं को स्थानीय विकास की मुख्य इकाई के रूप में स्थापित करने के लिए संविधान की बारहवीं अनुसूची में नगरीय संस्थाओं को विशेष कार्य एवं अधिकार सौपें गए हैं। जब तक नगरीय निकायों के पास वित्त की व्यवस्था नहीं होगी तब तक ये शहरी विकास की योजनाओं को न तो उचित रूप से निर्माण कर पाएंगी और न ही क्रियान्वयन। किसी भी स्थानीय संस्था की सफलता के लिए इसके वित्तीय स्रोतों की मजबूती को सामान्य रूप से स्वीकार किया गया है। 74वें संशोधन के पूर्व नगरीय स्थानीय संस्थाओं की प्रमुख दुर्बलताओं में से एक यह थी कि उनके पास धन की कमी थी। उनके पास कार्य तो थे परन्तु उनको करने के लिए धान जुटाने के स्रोत बहुत कम थे, क्योंकि धन के के लिए उनको राज्य सरकार की इच्छा पर निर्भर रहना पड़ता था ।सादिक अली समिति के शब्दों में कोई भी संस्था प्रभावशील एवं उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती यदि वह अपने कार्यों को संचालित करने के लिए पर्याप्त वित्तीय साधन नहीं रखती। इन संस्थाओं के वित्तीय साधनों का केवल एक सीमित भाग ही सरकार द्वारा प्रदान किया जाता है । अतः यह जरुरी हो जाता है कि ये संस्थाएं स्वयं के साधनों का विकास कर आत्मनिर्भर बनें।

10.3 नगरीय स्थानीय संस्थाओं के आय के साधन

लोकतंत्र की संकल्पना को यथार्थ में अस्तित्व प्रदान करने की दिशा में शहरी स्थानीय स्वशासन व्यवस्था एक ठोस कदम है। इस व्यवस्था में स्थानीय जनता की स्थानीय शासन कार्यों में अनवरत रूचि बनी रहती है, क्योंकि वे अपनी स्थानीय समस्याओं का स्थानीय पद्धति से समाधान कर सकते हैं। अत: इस अर्थ में भागीदारिता की प्रक्रिया के माध्यम से जनता को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से शासन एवं प्रशासन का प्रशिक्षण स्वत: ही प्रदान रहती है।

1993 में संविधान में 73वें संशोधन द्वारा पंचायती राज संस्थाओं तथा 74वें संशोधन द्वारा नगरीय निकायों को अनुच्छेद- 243 के तहत स्थानीय स्वशासन निकाय का संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ। इस प्रकार केन्द्र व राज्य के बाद स्थानीय पंचायती राज संस्थाएं संविधान की 11वीं अनुसूची तथा नगरीय निकाय 12वीं अनुसूची में उल्लेखित कार्य संपादन करने वाली तृतीय स्तर की सरकार बन गई है। भारत में नगरीय निकायों को इतिहास ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा 29 सितम्बर 1688 में मद्रास नगर निगम की स्थाना के साथ प्रारम्भ होता है। सन् 1726 में बम्बई और कलकत्ता में नगर निगमों या महापालिकाओं की स्थापना की गई । 1920 तक भारत के हर नगर में

नगरपालिका की स्थापना हो चुकी थी। 1992 तक नगर निकाय स्वतंत्र निकाय के रूप में कार्य कर रहे थे। नगर शब्द का इतना अधिक महत्व है कि उन्नीसवीं सदी तक नगर में रहनेवाला नागरिक कहलाता था। जैसे- कि सिटी का निवासी सिटीजन, नागरिकता अर्थात् सिटीजनशिप, आदि।

73वें एवं 74वें संविधान संशोधन द्वारा प्रशासकीय अधिकार एवं कर्तव्य निर्धारित किए जाने के साथ ही राज्य वित्त आयोग के गठन का प्रावधान किया गया।

नगरीय निकायों के जनसंख्या के आधार पर तीन वर्ग किए गए हैं- बड़ी जनसंख्या वाले नगरों के लिए नगर निगम या महानगर पालिका, दूसरा, नगर पालिका तथा तीसरा, नगर पंचायत जो जनसंख्या में भारी वृद्धि के कारण नगरों में परिवर्तित हो रहे हैं। अलग-अलग राज्यों के नगरीय निकाय कानून के अंतर्गत जनसंख्या का आकार अलग-अलग है। केरल में अभी तक नगर पंचायत की स्थापना नहीं की गई है, इसलिए केरल में सैकड़ों गांवों की जनसंख्या 20 हजार से 30 हजार के बीच है। जबकि छत्तीसगढ़ की 127 नगर पंचायतों में से वर्ष 2011 में 76 ग्राम पंचायतों की जनसंख्या 10 हजार से भी कम थी। दरअसल छत्तीसगढ़ में राज्य सरकार ने ग्राम पंचायतों को नगर पंचायतों में परिवर्तन मनमाने ढंग से लोक लुभावन कदम के रूप में किया है। इसलिए आज भी इनकी वित्तीय स्थिति बहुत कमजोर है तथा प्रशिक्षित कुशल स्टाफ की कमी है। जब ये नगर पंचायत ग्राम पंचायत थी उस समय प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना के कारण सडक़, पेयजल आपूर्ति, बिजली, सफाई, आदि नागरिक सुविधाओं के लिए धन की कोई कमी नहीं थी। सम्पूर्ण ग्राम रोजगार योजना व स्वर्ण जनता ग्राम स्वरोजगार योजना में सभी बेरोजगार युवाओं को रोजगार मिल जाता था। नगर पंचायत इन सबसे वंचित हो गई है। छत्तीसगढ़ के विपरीत केरल की ग्राम पंचायतों की वित्तीय स्थिति मजबूत होने के कारण वे नागरिक सुविधाएं बेहतर ढंग से प्रदान कर रही हैं। राज्य वित्त आयोग द्वारा राज्य एवं स्थानीय निकायों के वित्तीय सम्बन्धों की व्याख्या की गई एवं राज्य सरकारों से स्थानीय निकायों को राज्य के करों के हिस्से के अन्तरण व अनुदान का प्रावधान किया गया। केन्द्रीय वित्त आयोग की सिफारिश पर केन्द्र सरकार द्वारा प्रदत्त अनुदान तथा राज्य वित्त आयोग की सिफारिश पर राज्य सरकार की संचित निधि से कर राजस्व में मिलने वाले हिस्से के कारण पंचायती राज संस्थाओं एवं नगरीय निकायों की वित्तीय स्थिति मजबूत हुई। संविधान की 12वीं अनुसूची के अनुच्छेद- 243, डब्लू के अंतर्गत नगरीय निकायों के जो 18 कार्य बताए गए हैं, राज्य सरकारों का दायित्व बनता है कि इन 18 कार्यों को नगरीय निकायों को सौंपे तथा विभाग के बजट आनुपातिक हिस्सा भी उपलब्ध करवाएं। मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ और अन्य कुछ राज्यों ने नागरिकों की कठिनाइयों को दूर करने एवं करों की वसूली बढ़ाने के लिए नगरीय निकायों द्वारा वसूले जानेवाले करों, उपकरों,

को समाप्त कर दिया है वे उसके बदले नगरीय निकायों को क्षतिपूर्ति अनुदान देती हैं, जैसे कि चुंगी, यात्राकर व स्टाम्प ड्यूटी आदि। इससे उनके राजस्व में वृद्धि हुई है।

1993 में 74वें संशोधन द्वारा भारतीय संविधान में भाग- 9 ए जोड़ा गया है। इस भाग का शीर्षक नगरपालिकाएं है तथा जिसके प्रावधानों का उल्लेख अनुच्छेद- 243- पी से 243- जेड- जी में है। इसके अतिरिक्त संविधान में 12वीं अनुसूची में नगरपालिकाओं की 18 कार्यमदों का उल्लेख है जो अनुच्छेद- 243 'W' से सम्बन्धित है। नगरपालिकाएं संविधान के अधिकार क्षेत्र में आ गई अर्थात इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार राज्य सरकारें नई नगरपालिका प्रणाली अपनाने को बाध्य हो गई। इस अधिनियम का उद्देश्य शहरी शासन को पुनर्जीवन और मजबूती प्रदान करना है ताकि वे स्थानीय शासन की इकाई के रूप में अपना कार्य प्रभावी रूप से कर सकें। इस अधिनियम के तहत प्रत्येक राज्य में तीन प्रकार की नगरपालिकाओं के गठन का प्रावधान है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के बीच के क्षेत्र से सम्बन्धित नगरपालिका को नगर पंचायत के नाम से जानते हैं, हालाँकि इसका नाम राज्यों के अनुसार बदलता रहता है। छोटे और मध्यम शहरों के लिए नगर परिषद की गठन की गई है, परन्तु ऐसे नगर क्षेत्रों या उसके किसी भाग के लिए नगरपालिका का गठन नहीं किया जायेगा, जिसे राज्यपाल उस क्षेत्र के आकार को और उस क्षेत्र में स्थापित किसी औद्योगिक संस्थान के द्वारा उपलब्ध की गई या प्रस्तावित नगरपालिका सेवाओं को या अन्य किसी बात को ध्यान में रखते हुए उचित समझता है। लोक अधिसूचना द्वारा ऐसे क्षेत्र को एक औद्योगिक शहर के रूप में विनिर्दिष्ट कर सकता है। इस अनुच्छेद के अंतर्गत संक्रमणशील और वृहत्तर नगरीय क्षेत्र से अर्थ ऐसे क्षेत्र से है जिसे किसी राज्य की सरकार उस क्षेत्र के जनसँख्या की सघनता, स्थानीय प्रशासन के लिए प्राप्त राजस्व कृषि इतर क्रियाकलापों में नियोजन की प्रतिशतता आर्थिक महत्व या ऐसी ही अन्य बातों को जिसे वह ठीक समझे ध्यान में रखते हुए लोक अधिसूचना द्वारा इस भाग के प्रयोजन के लिए विनिर्दिष्ट करे। वही बड़े शहरी क्षेत्रों के लिए नगर निगम की व्यवस्था की गई है।

समय-समय पर विविध समितियों ने पंचायती राज व्यवस्था के वित्त के बारे में विश्लेषण किया है। 1951 में नियुक्त स्थानीय वित्त जाँच समिति ने अपने प्रतिवेदन में स्थानीय संस्थाओं के लिए आरक्षित रखे जाने वाले विभिन्न विषयों पर सुझाव दिए थे। इस समिति का मत था कि गृह कर, आबाद भूमि कर और चूल्हा कर तथा सामान्य स्वच्छता एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी उप कर आदि को अनिवार्य घोषित किया जाए। कर जांच आयोग (1953-54) ने आरक्षित रखे जाने वाले करों के बारे में सुझाव दिया कि भूमि एवं भवनों पर कर, सड़कों पर चलने वाले वाहनों पर

कर, पशुओं एवं नौकाओं पर कर, सम्पत्ति के हस्तांतरण पर कर आदि को स्थानीय सरकार का आय का साधन बनाया जाए। इस आयोग के बाद बलवंत राय मेहता समिति (1958) ने भी व्यापक सुझाव दिए।

संविधान के अनुच्छेद- 243 (म) में यह उपबंधित किया गया है कि अनुच्छेद- 243 (झ) के अधीन गठित वित्त आयोग नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति का भी पुनर्विलोकन करेगा और निम्नलिखित विषयों पर अपनी सिफारिशें राज्यपाल को देगा-

उन सिद्धान्तों की बाबत जो निम्नलिखित को शासित करेगें-

1. ऐसे करों, शुल्कों, पथकरों और फीसों के शुद्ध आगमों का नगरपालिकाओं और राज्यों के बीच वितरण जो इस भाग के अधीन उनके बीच किए जाने हैं तथा सभी स्तरों पर ऐसे आगमों के सम्बद्ध अंशों का नगरपालिकाओं के बीच आवंटन;
2. ऐसे करों, शुल्कों, पथकरों और फीसों का अवधारणा जो नगरपालिकाओं को समनुदेशित किए जा सकेंगे या उनके द्वारा विनियोजित किए जा सकेंगे;
3. राज्य की संचित निधि में से नगरपालिकाओं को सहायता अनुदान;
4. नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिए आवश्यक उपाय;
5. किसी अन्य विषय की बाबत जो राज्यपाल द्वारा नगरपालिकाओं के ठोस वित्त पोषण के हित में वित्त आयोग को निर्दिष्ट किया जा सकेगा। राज्यपाल इस अनुच्छेद के अधीन आयोग द्वारा की गई प्रत्येक सिफारिश और इसके बारे में की गई कार्यवाही का स्पष्टीकरण ज्ञापन राज्य के विधानमंडल के समक्ष रखवायेगा।

74वें संविधान संशोधन के द्वारा यह प्रावधान किया गया है कि राज्य विधान-मण्डल द्वारा नगरपालिकाओं को ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान किये जाएगें जो स्वशासन से जुड़ी संस्थाओं को उनके कार्य निष्पादन के लिए आवश्यक हों नगरीय निकायों के जनसंख्या के आधार पर तीन वर्ग किए गए हैं- बड़ी जनसंख्या वाले नगरों के लिए नगर निगम या महानगर पालिका, नगरपालिका तथा नगर पंचायत। नगर पंचायत जनसंख्या में भारी वृद्धि के कारण नगरों में परिवर्तित हो रहे हैं। अलग-अलग राज्यों के नगरीय निकाय कानून के अंतर्गत जनसंख्या का आकार अलग-अलग है। केरल में अभी तक नगर पंचायत की स्थापना नहीं की गई है, इसलिए केरल में सैकड़ों गांवों की जनसंख्या 20 हजार से 30 हजार के बीच है। जबकि छत्तीसगढ़ की 127 नगर पंचायतों में से वर्ष 2011 में 76 ग्राम पंचायतों की जनसंख्या 10 हजार से भी कम थी। दरअसल छत्तीसगढ़ में राज्य सरकार ने ग्राम पंचायतों

को नगर पंचायतों में परिवर्तन मनमाने ढंग से लोक लुभावन कदम के रूप में किया है। इसलिए आज भी इनकी वित्तीय स्थिति बहुत कमजोर है तथा प्रशिक्षित कुशल स्टाफ की कमी है। जब ये नगर पंचायत ग्राम पंचायत थी उस समय प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना के कारण सड़क, पेयजल आपूर्ति, बिजली, सफाई, आदि नागरिक सुविधाओं के लिए धन की कोई कमी नहीं थी। सम्पूर्ण ग्राम रोजगार योजना व स्वर्ण जनता ग्राम स्वरोजगार योजना में सभी बेरोजगार युवाओं को रोजगार मिल जाता था। नगर पंचायत इन सबसे वंचित हो गई है। छत्तीसगढ़ के विपरीत केरल की ग्राम पंचायतों की वित्तीय स्थिति मजबूत होने के कारण वे नागरिक सुविधाएं बेहतर ढंग से प्रदान कर रही हैं। अनुच्छेद- 243 (ब) यह कहता है कि इस संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए किसी राज्य का विधान विधि बनाकर नगरपालिकाओं को ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान कर सकता है, जो वह उन्हें स्वायत्त शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक समझे और ऐसी विधि में नगरपालिका को ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए जैसी उसमे विनिर्दिष्ट की जाए, निम्नलिखित के बाबत उपबंध किए जा सकेगें-

- आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार करना;
- ऐसे कार्यों को करना और ऐसी योजनाओं का क्रियान्वित करना जो उन्हें सौपी जाएँ, जिनके अंतर्गत वे योजनायें भी हैं जो बारहवीं अनुसूची में सूचीबद्ध विषयों के सम्बन्ध में हैं।

नगरीय निकायों के जनसंख्या के आधार पर तीन वर्ग किए गए हैं- बड़ी जनसंख्या वाले नगरों के लिए नगर निगम या महानगर पालिका, नगर पालिका तथा नगर पंचायत जो जनसंख्या में भारी वृद्धि के कारण नगरों में परिवर्तित हो रहे हैं। अलग-अलग राज्यों के नगरीय निकाय कानून के अंतर्गत जनसंख्या का आकार अलग-अलग है। केरल में अभी तक नगर पंचायत की स्थापना नहीं की गई है, इसलिए केरल में सैकड़ों गांवों की जनसंख्या 20 हजार से 30 हजार के बीच है। जबकि छत्तीसगढ़ की 127 नगर पंचायतों में से वर्ष 2011 में 76 ग्राम पंचायतों की जनसंख्या 10 हजार से भी कम थी। दरअसल छत्तीसगढ़ में राज्य सरकार ने ग्राम पंचायतों को नगर पंचायतों में परिवर्तन मनमाने ढंग से लोक-लुभावन कदम के रूप में किया है। इसलिए आज भी इनकी वित्तीय स्थिति बहुत कमजोर है तथा प्रशिक्षित कुशल स्टाफ की कमी है। जब ये नगर पंचायतें, ग्राम पंचायतें थीं, उस समय प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना के कारण सड़क, पेयजल आपूर्ति, बिजली, सफाई आदि नागरिक सुविधाओं के लिए धन की कोई कमी नहीं थी। सम्पूर्ण ग्राम रोजगार योजना व स्वर्ण जनता ग्राम स्वरोजगार योजना में सभी बेरोजगार युवाओं को रोजगार मिल जाता था। नगर पंचायत इन सबसे वंचित हो गई है। छत्तीसगढ़ के विपरीत केरल की ग्राम पंचायतों की वित्तीय

स्थिति मजबूत होने के कारण वे नागरिक सुविधाएं बेहतर ढंग से प्रदान कर रही हैं। ऐसी विधि द्वारा समितियों को ऐसी शक्तियां और प्राधिकार दिए जा सकते हैं जो उनको प्रदत्त उत्तरदायित्वों को कार्यान्वित करने के लिए योग्य बनाने के लिए आवश्यक समझे जिसके अंतर्गत बारहवीं अनुसूची में सूचीबद्ध बातें भी हैं।

12वीं अनुसूची में अनुच्छेद- 243(ब) के अनुसार 18 विषय हैं, जिन पर नगरपालिकाओं को विधि बनाने की शक्ति प्रदान की गई है- नगरीय योजना जिसके अंतर्गत शहरी योजना भी है; भूमि उपयोग का विनिमय और भवनों का संनिर्माण; आर्थिक और सामाजिक विकास की योजना; सड़कें और पुल; घरेलू, औद्योगिक और वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए जल प्रदाय; लोक स्वास्थ्य स्वच्छता, सफाई और कूड़ा-करकट प्रबन्ध; अग्निशमन सेवाएँ; नगरीय वानकी, पर्यावरण संरक्षण और पारिस्थितिकी पहलुओं की अभिवृद्धि; समाज के दुर्बल वर्गों के जिनके अंतर्गत विकलांग और मानसिक रूप से मंद व्यक्ति हैं, के हितों का संरक्षण; गन्दी बस्ती सुधार और उन्नयन; नगरीय सुख-सुविधाओं, जैसे- पार्क, उद्यान, खेलों के मैदानों की व्यवस्था; सांस्कृतिक, शैक्षणिक और सौन्दर्य परक पहलुओं की अभिवृद्धि; शव गाड़ना और कब्रिस्तान, शवदाह और श्मशान और विद्युत शवदाह; कांजी पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण; नगरीय निर्धनता को कम करना; जन्म-मरण सांखिकी जिसके अंतर्गत जन्म और मृत्यु का रजिस्ट्रीकरण है; लोक सुख-सुविधाएँ जिसके अंतर्गत पथ प्रकाश, पार्किंग स्थल, बस स्टाफ और जन सुविधाएँ हैं; वधशालाओं और चर्मशोधनशालाओं का विनियमन।

इसके अतिरिक्त अनुच्छेद- 243 (म) के अनुसार राज्य का विधानमंडल विधि द्वारा निम्नलिखित शक्तियां प्रदान कर सकता है-

- ऐसी प्रक्रिया के अनुसार और ऐसी शर्तों और सीमाओं के अधीन रहते हुए ऐसे कर, शुल्क, पथकर और फीसें, उद्ग्राहित, संगृहीत और विनियोजित करने के लिए प्राधिकृत कर सकता है;
- ऐसे प्रयोजनों के लिए और ऐसी शर्तों और सीमाओं के अधीन रहते हुए राज्य सरकार द्वारा उद्ग्रहित ऐसे कर, शुल्क, पथकर और फीसें कोई नगरपालिका समनुदेशित कर सकेगा;
- नगरपालिकाओं के लिए राज्य की संचित निधि में से ऐसी सहायता अनुदानों के लिए उपबंध;
- नगरपालिका द्वारा या उनकी ओर से प्राप्त सभी धनों के जमा करने के लिए ऐसी निधिओं का गठन तथा ऐसी निधियों में से धन का प्रत्याहरण करने के लिए भी उपबंध जो उस विधि में विनिर्दिष्ट की जाएँ।

10.4 नगरीय स्थानीय संस्थाओं की बजट प्रक्रिया

बजट एक वित्तीय योजना है जिसमें गत वर्ष की आय-व्यय की वास्तविक स्थिति, चालू वर्ष में आय-व्यय का संशोधित आकलन तथा अगामी वर्ष के आर्थिक-सामाजिक कार्यक्रम एवं आय-व्यय घटान-बढ़ाने के लिए प्रस्तावों का विवरण होता है। इस प्रकार बजट वह अस्त्र है, जिसके द्वारा सरकार या संस्थाओं के कार्य पर नियंत्रण रखा जा सकता है। शहरी निकायों के लिए बजट उसके एक वित्तीय वर्ष के कार्यक्रम का दस्तावेज होता है। शहरी निकायों का कोई भी व्यय बिना बजट के अनुमोदन के नहीं हो सकता है। इस प्रकार बजट शहरी निकायों के लिए एक ऐसा प्रस्ताव होता है जिसमें एक वित्तीय वर्ष में विभिन्न मदों पर होने वाले व्यय तथा वित्त उपलब्ध कराने वाले साधनों की विवरणी होती है। अतैव शहरी निकायों के सभी कार्यों एवं प्राप्तियों का आकलन बजट में किया जाता है।

शहरी निकायों को प्रभावशाली रूप में काम करने तथा अपने दायित्वों एवं कर्तव्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक संसाधन की जरूरत होती है। शहरी निकायों को उन आवश्यक संसाधन को एकत्र करने के लिए एक प्रक्रिया के माध्यम से इजाजत लेती है और वह प्रक्रिया बजट होता है। इस प्रकार संसाधन को जुटाने एवं अपने व्ययों को पूरा करने के लिए शहरी निकायों को बजट तैयार करना आवश्यक होता है। बजट से शहरी निकायों को निम्नवत लाभ होता है-

1. शहरी निकायों को आर्थिक नीतियों को पालन करने में सहूलियत होती है।
2. शहरी निकायों में संभावित आर्थिक विकास का अनुमान भी बजट से लगाया जा सकता है।
3. विगत वर्ष में प्राप्त आय एवं किए गए व्यय का वास्तविक स्थिति का पता चलता है।
4. आगामी वर्ष में प्राप्त होने वाले आय एवं होने वाले व्यय का अनुमान लग जाता है।
5. शहरी निकायों में कार्यान्वित योजनाओं एवं कार्यक्रमों का प्रगति मालूम होता है।
6. कर लगाने में सहूलियत होती है।
7. शहरी निकायों को अपना कार्य करने में सहयोग मिलता है।
8. शहरी निकायों को अपना राजस्व जुटाने में आसानी हो जाती है।
9. आय-व्यय घटाने एवं बढ़ाने में सहयोग मिलता है तथा
10. उनकी आर्थिक स्थिति आसानी से मालूम हो जाती है।

इस प्रकार बजट से शहरी निकायों को आर्थिक विकास की प्रगति को आसानी से देखा जा सकता है। प्राकृतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर किसी भी देश के लिए एक वित्तीय वर्ष के लिए एक निश्चित अवधि तय की जाती है। हमारे देश में भी वित्तीय वर्ष की अवधि 01 अप्रैल से 31 मार्च तय की गई है। उल्लेखनीय है कि इस अवधि को सर्वप्रथम 1867 में अपनाया गया था। इसके पूर्व यह अवधि 01 मई से 30 अप्रैल तक होती थी। 1967 में प्रशासनिक जांच आयोग ने वित्तीय वर्ष के अवधि की शुरुआत पहली अप्रैल के स्थान पर पहली नवंबर को करने का सुझाव दिया था, लेकिन कुछ कठिनाइयों के कारण सरकार ने इसे स्वीकार नहीं कर पाई। फलत: वर्तमान में वित्तीय वर्ष 01 अप्रैल से 31 मार्च तक की अवधि ही प्रचलन में है तथा इसी अवधि के लिए बजट बनाने का प्रावधान है और बनाया जाता है।

10.4.1 बजट के घटक या अवयव

सामान्यत: किसी भी बजट के दो मुख्य घटक होते है, पहला प्राप्तियां और दूसरा व्यय। पंचायत तैयार किए जाने वाले बजट का भी ये मुख्य घटक होते हैं-

1. **प्राप्तियां-** यह बजट का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष होता है। इसमें एक वित्तीय वर्ष में विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होने वाले आय को रखा जाता है। उल्लेखनीय है कि पंचायतों को वर्तमान में अपना कोई आय का स्रोत नहीं है, उन्हें केन्द्र या राज्य सरकार द्वारा फंड प्राप्त हो रहे हैं। वर्तमान में पंचायत को चार स्रोतों से वित्तीय सहायता प्राप्त हो रहे हैं- पिछड़ा क्षेत्र अनुदान फंड(बीआरजीएफ), वित्त आयोग, राज्य वित्त आयोग तथा मनरेगा। बजट के प्राप्तियां पक्ष को दो भागों में विभाजित किया जाता है- एक राजस्व प्राप्तियां एवं दूसरा पूंजीगत प्राप्तियां।
    - **राजस्व प्राप्तियां-** इसमें वैसे आय के स्रोत को शामिल किया जाता है, जिसके सम्बन्ध में कोई भुगतान नहीं करना पड़ता है। उल्लेखनीय है कि राजस्व प्राप्तियों से पंचायत के देयताओं में न तो वृद्धि होती है न ही परिसंपत्तियों में कमी आती है। इसी कारण राजस्व प्राप्तियों को आर्थिक क्रियाओं का प्रतिफल माना जाता है। इसके भी दो भाग होते है। पहला कर कर से प्राप्त आय तथा दूसरा गैर-कर आय। कर से प्राप्त आय में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर से प्राप्त आय का प्रदर्शित किया जाता है, जबकि गैर-कर आय में सेवाओं के बदले में लगाए गए कर एवं शुल्क को सम्मिलित किया जाता है।

- **पूंजीगत प्राप्तियां-** इसमें वैसे प्राप्तियों को शामिल किया जाता है, जिससे पंचायत की देयताओं में बढ़ोतरी होती है तथा परिसंपत्तियों में कमी आती है। जैसे- ऋण की वापसी, निवेश से प्राप्त आय आदि। उल्लेखनीय है कि ग्राम पंचायत हाट, बाजार, मेला आदि से राजस्व की उगाही कर सकते है लेकिन अभी यह प्रावधान व्यावहारिक रूप में नहीं है।

2. **व्यय-** बजट का दूसरा प्रमुख पक्ष व्यय होता है, व्यय। इसमें वैसे सभी व्ययों को शामिल किया जाता है, जो पंचायत द्वारा एक वित्तीय वर्ष में विभिन्न योजनाओं, कार्यक्रमों एवं सेवाओं पर व्यय किया जाता है। इसे लोक व्यय भी कहा जाता है। बजट के व्यय पक्ष को दो भागों में बांटा जाता है। पहला राजस्व व्यय एवं दूसरा पूँजीगत व्यय।

10.4.2 बजट के प्रकार

बजट विविध प्रकार के हो सकते हैं-

1. **पारम्परिक बजट-** बजट के प्रारंभिक स्वरूप को पारंपरिक बजट कहा जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य सरकारी व्ययों पर नियंत्रण करना होता है।
2. **पूँजी बजट-** इस प्रकार के बजट में केवल पूंजीगत प्राप्तियों एवं व्ययों को ही शामिल किया जाता है।
3. **निष्पादन बजट-** जब कार्य या परिणाम या लक्ष्यों को प्राप्ति के आधार पर बजट बनाया जाता है, तो उसे निष्पादन बजट कहा जाता है। इसमें आय-व्यय के लेखा-जोखा होने के साथ कार्य निष्पादन के मूल्यांकन का आधार बनाया जाता है।
4. **परिणाम बजट-** इस प्रकार के बजट में भौतिक लक्ष्यों का निर्धारण गुणवत्ता को ध्यान में रख कर किया जाता है। कार्य निष्पादन हेतु निर्धारित राशि को सही समय, सही गुणवत्ता तथा सही मात्रा में उपलब्ध कराने की व्यवस्था सुनिश्चित की जाती है, उल्लेखनीय है कि इस प्रकार के बजट सबसे पहले 2005 में बना था।
5. **शून्य आधारित बजट-** ऐसे बजट में प्रस्तावित व्ययों के प्रत्येक मदों को एक नई मद मानकर प्रदर्शित किया जाता है। अर्थात प्रत्येक मद को शून्य मान कर उसे मूल्यांकित किया जाता है तथा सभी योजनाओं एवं कार्यक्रमों का मूल्यांकन या समीक्षा गहनता से की जाती है। उल्लेखनीय है कि इस प्रकार के बजट की शुरुआत सर्वप्रथम 1986-87 के बजट से किया गया था।

6. **जेंडर बजट-** जब बजट को लिंग-विशेष के आधार पर तैयार किया जाता है, तो उसे जेंडर बजट कहा जाता है। सामान्यत: इस प्रकार के बजट में महिलाओं के लिए अलग से रणनीति तैयार की जाती है। उनके विकास, कल्याण और सशक्तीकरण से सम्बन्धित योजनाओं एवं कार्यक्रमों के लिए एक निश्चित धन राशि की व्यवस्था की जाती है। शहरी निकायों को बजट बनाते समय इन स्वरूपों में से अंतिम दो स्वरूपों को अपनाया जा सकता है। इससे शहरी निकायों को विकास कार्यों से सम्बन्धित रणनीति बनाने में सहूलियत होगी। उल्लेखनीय है कि बजट वर्तमान योजनाओं के नवीनीकरण और समीक्षा का मौका देता है, ताकि सही दिशा में व्यय हो सके। अतएव शहरी निकायों को भी विकासात्मक स्वरूप को अपनाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त संविधानिक रूप से वित्तीय वितरण के लेखाओं की संपरीक्षण कराने के लिए अनुच्छेद- 243 (य) के तहत राज्य विधान-मण्डल को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह विधि द्वारा लेखाओं के रखे जाने और ऐसे लेखाओं की संपरीक्षा के बारे में उपबंध कर सकेगा। राज्य के आर्थिक संसाधनों में से नगरपालिकाओं के हिस्से का उचित बंटवारा करने के लिए तथा नगरपालिकाओं के वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने के लिए राज्य का राज्यपाल प्रत्येक पांच वर्ष के अंतराल पर एक वित्त आयोग का गठन करेगा जो पंचायतों के साथ-साथ नगरपालिकाओं के लिए भी होगा। वित्त आयोग राज्य द्वारा प्रभारित करों, पथकरों से हुई शुद्ध आय को राज्य और नगरपालिकाओं के बीच लागू करेगा, नगरपालिकाओं को सौंपे जाने वाले करों, शुल्कों और पथकरों के निर्धारण के लिए वित्त आयोग उपयुक्त नियम बनाएगा और राज्य की संचित निधि से नगरपालिकाओं को सहायता अनुदान दिए जाने का प्रावधान करेगा। इसके अलावे वित्त आयोग नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति में सुधार लाने के लिए आवश्यक उपाय करेगा और नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति को ठीक रखने की दृष्टि से राज्यपाल द्वारा वित्त आयोग को प्रेषित कोई अन्य विषय के बारे में भी वह राज्यपाल को उपयुक्त सलाह देगा जिसे राज्यपाल अनुवर्ती कार्यवाही के लिए राज्य विधानमंडल के समक्ष रखवाएगा। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय वित्त आयोग भी राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर नगरपालिकाओं को संसाधनों की पूर्ति करने की दृष्टि से राज्य की संचित निधि को बढ़ाने के लिए जरुरी उपाय सुझाएगा।

10.5 नगरीय शासन की वित्त व्यवस्था एवं राज्य वित्त आयोग की भूमिका

राज्य के आर्थिक संसाधनों में से नगरपालिकाओं के हिस्से का उचित बंटवारा करने के लिए तथा नगरपालिकाओं के वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने के लिए राज्य का राज्यपाल प्रत्येक पांच वर्ष के अंतराल पर एक वित्त आयोग

का गठन करेगा जो पंचायतों के साथ-साथ नगरपालिकाओं के लिए भी होगा। राज्य वित्त आयोग देश के विभिन्न राज्यों में भारत के संविधान में निर्धारित अनुच्छेद- 243 (आई) के दिशा निर्देशों के अनुसार स्थापित किए गए हैं। राज्य में वित्त आयोग में आमतौर पर अध्यक्ष, सदस्य सचिव तथा अन्य सदस्य शामिल हैं। राज्य का राज्यपाल 73वें संशोधन प्रारम्भ से एक वर्ष के भीतर और उसके बाद प्रत्येक 05 वर्ष के समाप्ति पर नगरीय निकायों की वित्तीय स्थिति का पुनर्निरीक्षण करने के लिए एक वित्त आयोग का गठन करेगा। वित्त आयोग निम्नलिखित विषय में राज्यपाल की अपनी सिफारिश करेगा-

1. ऐसे करों, शुल्कों, पथ करों और फीसों को दर्शाना जो पंचायतों की प्रदान की जा सकें,
2. राज्य की संचित निधि में नगरीय निकायों के लिए सहायता अनुदान,
3. नगरीय निकायों की वित्तीय स्थिति के सुधार के लिए उपाय बताना।

राज्य वित्त आयोग को केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित वित्त आयोग से अनुदान प्राप्त होता है। राज्य वित्त आयोग पंचायतीराज और नगरीय निकायों के लिये वित्तीय प्रबन्ध एवं आवंटित राशि के बंटवारे के लिये सिफारिश देता है। आयोग पंचायतीराज एवं नगर निकायों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा कर इसमें सुधार के लिए आवश्यक सुझाव देता है। साथ ही पंचायत व नगर निकाय क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के कर, ड्यूटी, राजस्व आदि के संग्रहण के लिये भी सिफारिशें देता है। यह वित्तीय मुद्दों के सम्बन्ध में राज्य और केंद्रीय सरकारों के बीच एक मध्यस्थ के रूप में भी कार्य करता है।

संवैधानिक रूप से वित्तीय वितरण के लेखाओं की संपरीक्षण कराने के लिए अनुच्छेद- 243 (य) के तहत राज्य विधानमंडल को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह विधि द्वारा लेखाओं के रखे जाने और ऐसे लेखाओं की संपरीक्षा के बारे में उपबंध कर सकेगा। वित्त आयोग राज्य द्वारा प्रभारित करों, पथकरों से हुई शुद्ध आय को राज्य और नगरपालिकाओं के बीच लागु करेगा, नगरपालिकाओं को सौंपे जाने वाले करों, शुल्कों और पथकरों के निर्धारण के लिए वित्त आयोग उपयुक्त नियम बनाएगा और राज्य की संचित निधि से नगरपालिकाओं को सहायता अनुदान दिए जाने का प्रावधान करेगा। इसके अतिरिक्त वित्त आयोग नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति में सुधार लाने के लिए आवश्यक उपाय करेगा और नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति को ठीक रखने की दृष्टि से राज्यपाल द्वारा वित्त आयोग को प्रेषित कोई अन्य विषय के बारे में भी वह राज्यपाल को उपयुक्त सलाह देगा जिसे राज्यपाल अनुवर्ति कार्यवाही के लिए राज्य विधानमंडल के समक्ष रखवाएगा। साथ ही केन्द्रीय वित्त आयोग भी

राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर नगरपालिकाओं को संसाधनों की पूर्ति करने की दृष्टि से राज्य की संचित निधि को बढ़ाने के लिए जरुरी उपाय सुझाएगा।

10.6 आर्थिक एवं वित्तीय परिदृश्य का आकलन

स्थानीय नगरीय संस्थाओं को संवैधानिक प्रस्थिति प्राप्त होने के बावजूद भी इन्हें अपने कार्यकलापों को सुचारू रूप से सम्पादित करने में विभिन्न समस्याओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

स्थानीय संस्थाओं की सबसे कठिन समस्या वित्तीय अपर्याप्तता है। इसका कारण यह है कि इनके पास लोगों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त आर्थिक स्रोत नहीं हैं। स्थानीय वित्त की समस्या यह है कि नगरपालिका के पास अपने कार्य पूर्ण दक्षता से करने के लिए पर्याप्त साधन होने चाहिए। नगरपालिका को कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि नगरपालिका कार्यों तथा स्रोतों को समकालिक होना चाहिए। यही कारण है कि 'स्थानीय वित्त जाँच समिति' को जो कार्य सौंपा गया था, उसमें यह विचार किया जाना था कि स्थानीय संस्थाओं को दिए गए कार्यों के लिए क्या वर्तमान स्रोत पर्याप्त है तथा उन्हें यह भी विचार करना था कि अगर ऐसा न हो तो इन्हें आय के और कौन से स्रोत दिए जाएँ। समिति ने कार्यों तथा स्रोतों के तारतम्य की महत्ता पर बल दिया। इसकी रिपोर्ट के अनुसार वित्त कार्यों से सम्बन्धित है। इसलिए आवश्यकता है कि जब कार्य स्थानीय संस्थाओं को दिए जाएँ तो यह भी विचार कर लिया जाए कि इन कार्यों को करने के लिए इन संस्थाओं के पास पर्याप्त साधन है या नहीं? यदि संस्थाओं के पास अपने कार्य पुरे करने के लिए पर्याप्त साधन न हों तो उन्हें राज्य की सहायता पर निर्भर रहना होगा। वित्तीय सहायता के लिए राज्य सरकार पर अधिक निर्भरता स्थानीय संस्थाओं के महत्व तथा स्वतंत्रता को कम कर देगी। यदि स्थानीय संस्थाएं अपने कार्यक्षेत्र में स्वावलंबी होना चाहती हैं तो उनके पास अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए अपने पर्याप्त साधन होने चाहिए। हालाँकि 74वें संविधान संशोधन द्वारा इन संस्थाओं के लिए पृथक से वित्त आयोग का प्रावधान किया गया है, लेकिन जरुरत इस बात की है कि इस संस्था को और ज्यादा वास्तविक अधिकार सौंपे जाए।

इसके अतिरिक्त स्थानीय स्वायत्त संस्थाएं राजनीतिक दलों के शक्ति परीक्षण की प्रयोगशाला बन गयीं हैं। स्थानीय संस्थाओं की सफलता बहुमत के बजाय आम सहमति और व्यापक समन्वय की भावना पर आधारित हैं। लेकिन राजनीतिक दलों द्वारा सहमति स्थापित करने के स्थान पर दलीय प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया जाता है जो भले ही तत्कालीन दलीय हितों की पूर्ति करे, लेकिन वैचारिक दलीय प्रतिस्पर्धा के माध्यम से स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के द्वारा सामुदायिक विकास और सहयोग लाने की भावना धूमिल होती है। अतः स्थानीय स्वशासन और

विकेन्द्रीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए दलीय प्रतिस्पर्धा के स्थान पर वैचारिक विविधिता में एकता और सामुदायिक सहयोग की भावना का विकास अत्यावश्यक है। वित्तीय साधनों की कमी जनप्रतिनिधियों को प्रदान की गयी निम्न-सुविधाएँ और निम्न वेतनमान, निकम्मा कर्मचारी वर्ग, राज्य सरकार का अतिशय हस्तक्षेप, राजनीतिज्ञों का आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप, व्यापक भ्रष्टाचार आदि नगरीय प्रशासन की कतिपय समस्याएं हैं। फ्रेडरिक विलियम विल्सन, जो एक समय 'द पायनियर' के संपादक थे, के अनुसार " यह असम्भव है कि कोई व्यक्ति भारत की निर्वाचित नगरपालिकाओं, नगर निगमों तथा जिला परिषदों की दशा तथा स्थिति का सर्वेक्षण करें और उसके परिणामों से संतुष्ट हो जाए। इस समय भारत में नगरीय जीवन का जो रूप दृष्टिगत हो रहा है वह ऐसा नहीं है, जिस पर भारतीय देश भक्त गर्व कर सकें।''

अक्सर यह देखा गया है कि नगरीय निकाय खासकर छोटे नगरीय निकाय अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाले करों जैसे कि सम्पत्ति कर, समेकित कर, जलकर आदि की दरों में वृद्धि से परहेज करते हैं। निर्वाचित प्रतिनिधि चाहे महापौर हो या वार्ड सदस्य सभी को हमेशा यह भय बन रहता है कि ऐसा करने से उनके विरोधियों को उनकी आलोचना व निन्दा करने का एक हथियार मिल जाएगा तथा वे अपने मतदाताओं में अलोकप्रिय हो जाएंगे और उनका अगली बार चुनाव जीतना कठिन हो जाएगा। अनेक उम्मीदवार व राजनीतिक दल अपने चुनावी घोषणा-पत्र में विकास का वादा करने की बजाय अपने कार्यकाल में करों में वृद्धि नहीं होने देने का वादा करते हैं। इस प्रकार के घोषणाओं को चुनावी आचार संहिता के विरुद्ध माना जाना चाहिए। इस प्रकार नगरीय निकायों का सालाना व्यय बजट तो बढ़ता रहता है, किन्तु स्वयं के कर राजस्व में वृद्धि न हो पाने के कारण छोटे नगरीय निकायों वित्तीय संकट से जूझते रहते हैं, यहाँ तक कि वे विद्युत पूर्ति कम्पनियों को बिजली के बिल भुगतान करने की स्थिति में भी नहीं रहते हैं। भारत की अनेक राज्य सरकारों ने नगरीय निकायों द्वारा नागरिकों को प्रदत्त सेवाओं के व्यय की भरपाई हेतु कर, उपकर, शुल्क, किराया आदि की दरें तय करने के लिए म्युनिसिपल राजस्व विनियामक आयोग स्थापना एक अच्छा कदम है। इस आयोग द्वारा निर्धारित टैरिफ वृद्धि से नगरीय निकायों के राजस्व में वृद्धि होगी तथा वित्तीय स्थिति मजबूत होगी। हर राज्य में विनियामक का गठन करके उसे क्रियाशील किया जाना चाहिए। अभी हाल में ही छत्तीसगढ़ सरकार के नगरीय प्रशासन व विकास विभाग ने नगरीय निकायों के सम्पत्ति कर से मिलनेवाले राजस्व में वृद्धि करने के उद्देश्य से सम्पत्ति कर में 50 प्रतिशत की वृद्धि की अधिसूचना जारी की। छत्तीसगढ़ के अधिकांश नगर निकायों में सत्तारूढ़ कांग्रेसदल को खुश होना चाहिए था कि राज्य सरकार द्वारा सम्पत्ति कर में वृद्धि की इस घोषणा से कर वृद्धि का उन पर दोषारोपण नहीं होगा तथा सशक्त

वसूली से वे राजस्व में अच्छी-खासी वृद्धि कर सकेंगे। किन्तु कांग्रेस पार्टी के नगरीय निकाय पदाधिकारियों द्वारा सम्पत्ति कर में वृद्धि का विरोध किया जा रहा है तथा कहा जा रहा है कि वे बढ़े दर से कर वसूली नहीं करेंगे बल्कि जरूरत हुई तो 25 प्रतिशत से तक करेंगे। इससे कांग्रेस शासित नगरीय निकायों को ही राजस्व क्षति होने वाली है क्योंकि भाजपा शासित नगरीय निकायों ने राज्य शासन के निर्णय को सहजता से स्वीकार कर लिया है। छोटे नगरीय निकायों के कर एवं गैर-कर राजस्व दोनों के ही जुटाने के स्रोत सीमित होते हैं, इसलिए वे राजस्व समस्या से जूझते रहते हैं। कुल मिलाकर उन्हें राज्य वित्त आयोग द्वारा अनुशंसित राज्य सरकार से अन्तरण व केन्द्र से अनुदान का सहारा रहता है। नगरीय निकायों के आय तथा राजस्व के स्त्रोत विभिन्न प्रकार के है। जैसे कर, सेवा के लिए ली जाने वाली फीस, सरकारी अनुदान जुर्माने आदि ये सभी प्रत्यक्ष कर है। अप्रत्यक्ष कर में चुंगी, टर्मिनल टेक्स, वाहनकर आदि टेक्स आते है। इन करों में से चुंगी कर देश के सभी राज्यों में समाप्त हो गया है, जबकि सीमा कर केन्द्र शासन के अधीन चला गया, नगरीय निकाय यह कर अब नहीं लगा सकती है। जहाँ यह कर प्रभाव शाली है, केन्द्र सरकार की अनुमति बिना नहीं लगाया सकता है। प्रत्यक्ष कर में गृह कर तथा व्यक्तियों पर लगाये गए कर प्रमुख हैं। नगरीय निकाय की आय का प्रमुख साधन गृह कर या सम्पत्ति कर है। ग्रेट ब्रिटेन इस कर से, अपने राजस्व का 50 प्रतिशत भाग एकत्रित करता है। अमेरिका में यह कर इन निकायों का प्रमुख आय का साधन है। भारत में जिस प्रदेश में चुंगी कर नहीं लगाया जाता, उन प्रदेशों में दी गयी सेवा के बदले लिए जाने वाले करों में जल कर, सफाई कर, प्रकाश कर, सीवर टेक्स और शिक्षा पर लिए जाने वाले कर आते हैं। हमारे प्रदेश की नगरीय निकायों की आय के ये प्रमुख स्त्रोत हैं। अन्य करों में व्यवसाय पर लगाये गए कर, हैसियत कर आदि हैं। सेवा पर लिए जाने वाले करों से सेवा में हुए व्यय की प्रतिपूर्ति की जाती है, ऐसे कर निकाय के राजस्व नहीं बढ़ाते हैं। इन करों के अतिरिक्त नगरीय निकायों को शुल्कों से आय प्राप्त होती है। जैसे- निकाय द्वारा संचालित स्कुलों से प्राप्त होने वाली फीस और वभिन्न अनुज्ञप्तियों से प्राप्त होने वाली आय है। नगरीय निकायों को समय समय पर सरकार से अनुदान भी मिलता है। यह अनुदान देते समय दो बातों को ध्यान में रखा जाता है। प्रथम यह कि निकाय नीति एवम प्रशासन से संबंधित अपने निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त कर सके, दूसरा यह कि निकायों में अपने राजस्व स्त्रोतों का विकास करने में अरुचि पैदा न हो।

स्थानीय संस्थाओं की सबसे कठिन समस्या वित्तीय अपर्याप्तता है। इसका कारण यह है कि इनके पास लोगों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त आर्थिक स्त्रोत नहीं हैं। स्थानीय वित्त की समस्या यह है कि नगरीय निकायों के पास अपने कार्य पूर्ण दक्षता से करने के लिए पर्याप्त साधन होने चाहिए। नगरीय निकायों को

कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि कार्यों तथा स्रोतों को समकालिक होना चाहिए। यही कारण है कि 'स्थानीय वित्त जाँच समिति' को जो कार्य सौपा गया था, उसमें यह विचार किया जाना था कि स्थानीय संस्थाओं को दिए गए कार्यों के लिए क्या वर्तमान स्रोत पर्याप्त हैं तथा उन्हें यह भी विचार करना था कि अगर ऐसा न हो तो इन्हें आय के और कौन से स्रोत दिए जाएँ। समिति ने कार्यों तथा स्रोतों के तारतम्य की महत्ता पर बल दिया। इसकी रिपोर्ट के अनुसार क्योकि वित्त कार्यों से सम्बन्धित है। इसलिए आवश्यकता है कि जब कार्य स्थानीय संस्थाओं को दिए जाएँ तो यह भी विचार कर लिया जाए कि इन कार्यों को करने के लिए इन संस्थाओं के पास पर्याप्त साधन है या नहीं? यदि संस्थाओं के पास अपने कार्य पुरे करने के लिए पर्याप्त साधन न हों तो उन्हें राज्य की सहायता पर निर्भर रहना होगा। वित्तीय सहायता के लिए राज्य सरकार पर अधिक निर्भरता स्थानीय संस्थाओं के महत्व तथा स्वतंत्रता को कम कर देगी। यदि स्थानीय संस्थाएं अपने कार्यक्षेत्र में स्वावलंबी होना चाहती हैं तो उनके पास अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए अपने पर्याप्त साधन होने चाहिए। हालाँकि 74वें संविधान संशोधन द्वारा इन संस्थाओं के लिए पृथक से वित्त आयोग का प्रावधान किया गया है, लेकिन जरुरत इस बात की है कि इस संस्था को और ज्यादा वास्तविक अधिकार सौंपे जाए।

अभ्यास प्रश्न-

1. भारत में नगरीय शासन प्रणाली को किस संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा संवैधानिक दर्जा मिला?
2. किसे प्रशासन का जीवन रक्त कहा जाता है?
3. राज्य वित्त आयोग का गठन कौन करता है?
4. भारत में नगरीय निकाय की शुरुआत कब हुई?
5. 12वीं अनुसूची में अनुच्छेद- 243 (ब) के अनुसार कितने विषय हैं जिनपर नगरपालिकाओं को विधि बनाने की शक्ति प्रदान की गई है?

10.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपको ज्ञात हो गया होगा कि नगरीय निकाय व्यवस्था में वित्त की व्यवस्था विविध कारणों से महत्व रखती है। स्थानीय निकायों का कार्यक्षेत्र जितना बड़ा है, उनके विभिन्न स्रोत उतने हीं कम हैं। भारत में स्वस्थ लोकतान्त्रिक परम्पराओं की स्थापित करने के लिए स्थानीय शासन व्यवस्था ठोस आधार प्रदान करती है। इसके माध्यम से शासन सत्ता जनता के हाथों में चली जाती है। इस व्यवस्था द्वारा देश की ग्रामीण एवं शहरी जनता में लोकतान्त्रिक संगठनों के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। अपनी तमाम वित्तीय, प्रशासनिक सीमाओं

और राजनीतिक दबावों के बावजूद स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं ने भारतीय लोकतंत्र को तीसरे पायदान अर्थात जनता के पास ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। लोकतंत्र में कोई भी सुधार या संस्थागत विकास रातोरात नहीं, बल्कि क्रमिक रूप से होता है तथा क्रमिक परिवर्तन या विकास की प्रक्रिया ही दीर्घकालीन होती है। अतः स्थानीय नगरीय संस्थाएं भी समय के साथ मजबूती और प्रौढ़ता प्राप्त करेगी। इन संस्थाओं को स्वतंत्र आर्थिक स्रोत या तो दिये नहीं गये या फिर जो भी दिए गये वे अर्थ शून्य हैं। परिणामत: शासकीय अनुदानों पर ही जीवित रहना पड़ता है। आय के पर्याप्त एवं स्वतंत्र स्रोत नगरीय निकायों को दिये जाने चाहिए, ताकि उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बन सके। स्थानीय संस्थाओं की सबसे कठिन समस्या वित्तीय अपर्याप्तता है। इसका कारण यह है कि इनके पास लोगों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त आर्थिक स्रोत नहीं हैं। यदि स्थानीय संस्थाएं अपने कार्यक्षेत्र में स्वावलंबी होना चाहती हैं, तो उनके पास अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए अपने पर्याप्त साधन होने चाहिए।

अपनी तमाम वित्तीय, प्रशासनिक सीमाओं और राजनीतिक दबावों के बावजूद स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं ने भारतीय लोकतंत्र को तीसरे पायदान अर्थात जनता के पास ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। लोकतंत्र में कोई भी सुधार या संस्थागत विकास रातोरात नहीं, बल्कि क्रमिक रूप से होता है तथा क्रमिक परिवर्तन या विकास की प्रक्रिया ही दीर्घकालीन होती है। अतः स्थानीय नगरीय संस्थाएं भी समय के साथ मजबूती और प्रौढ़ता प्राप्त करेगी, बस जरुरत इस बात की है कि इन संस्थाओं को संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों को पूर्णता से बिना किसी हस्तक्षेप के प्रदान की जाएं।

10.8 शब्दावली

संविधान - किसी सरकार के मूलभूत कानून और सिद्धान्तों की लिखित या अलिखित व्यवस्था,

बजट- एक वित्तीय योजना है जिसमें गत वर्ष की आय-व्यय की वास्तविक स्थिति, चालू वर्ष में आय-व्यय का संशोधित आकलन तथा आगामी वर्ष के आर्थिक-सामाजिक कार्यक्रम एवं आय-व्यय घटान-बढ़ाने के लिए प्रस्तावों का विवरण होता है।

कटौती प्रस्ताव- अनुदानों की मांग पर चर्चा के दौरान किसी मांग की राशि कम करने के लिए प्रस्ताव लाया जा सकता है, ऐसे प्रस्ताव को कटौती प्रस्ताव कहते हैं।

विभाग- नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु मंत्रालय का एक भाग।

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा, **2.** वित्त, **3.** राज्यपाल, **4.** 1688 में मद्रास नगर निगम की स्थापना के साथ, **5.** 18 विषय

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एस0 आर0 माहेश्वरी, 2005, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. हरिश्चंद्र शर्मा, 2005 भारत में स्थानीय प्रशासन, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
3. बामेश्वर सिंह, 2000,भारत में स्थानीय स्वशासन, राधा प्रकाशन, जयपुर।
4. चन्द्र प्रकाश बर्थवाल, 1997, स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ।

10.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एल0सी0 जैन, 2005 ,डिसेंट्रलाइजेसन एंड लोकल गर्वनेंस, ऑरिएण्ट लौंगमैन, नई दिल्ली।
2. इकबाल नारायण, 1975, राजनीति शास्त्र के मूल सिद्धान्त, रतन प्रकाशन मंदिर, आगरा।

10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में नगरीय निकायों की वित्त व्यवस्था का मूल्यांकन कीजिए।
2. भारत में नगरीय निकायों के आय के स्रोत क्या हैं?
3. नगरीय निकायों की बजट प्रक्रिया का मूल्यांकन कीजिए।
4. नगरीय स्थानीय संस्थाओं के आर्थिक एवं वित्तीय परिदृश्य का विश्लेषण कीजिए।
5. नगरीय निकायों की वित्तीय व्यवस्था में राज्य वित्त आयोग की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई- 11 शासनिक ढ़ाँचा: नगरीय स्थानीय प्रशासन

इकाई की संरचना

11.0 प्रस्तावना

11.1 उद्देश्य

11.2 भारत में नगरीय स्थानीय प्रशासन का परिचय

11.3 भारत में नगरीय स्थानीय शासन का प्रशासनिक ढ़ाँचा

11.3.1 नगर पंचायत का प्रशासनिक ढ़ाँचा

11.3.2 नगरपालिका का प्रशासनिक ढ़ाँचा

11.3.3 नगर निगम या महानगरपालिका का प्रशासनिक ढ़ाँचा

11.4 नगरीय स्थानीय प्रशासन में सरकारी एवं गैर सरकारी अधिकारियों के सम्बन्ध

11.5 नगरीय स्थानीय प्रशासन की चुनौतियाँ एवं चुनौतियों का समाधान

11.5.1 चुनौतियों का समाधान

11.6 सारांश

11.7 शब्दावली

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

11.11 निबन्धात्मक प्रश्न

11.0 प्रस्तावना

नगरीकरण ग्रामीण से नगरीय जीवन में रूपान्तरण की प्रक्रिया है, जब एक समाज कृषिपरक अर्थव्यवस्था से औद्योगिक अर्थव्यवस्था को अपनाता है तथा एक छोटे समरूप समाज से एक विशाल विविधतापूर्ण समाज में परिणत होता है। सरल शब्दों में नगरीकरण को एक सामाजिक-आर्थिक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके द्वारा एक क्षेत्र की अधिकांश जनसंख्या नगरों तथा कस्बों में संकेन्द्रित हो जाती है। भारत में नगरीय क्षेत्रों की जनसंख्या, ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में दोगुनी गति से बढ़ रही है। नगरों में जनसंख्या के इस बढ़ते दबाव के कारण अधिक सेवाओं, सुविधाओं व जीवन यापन के लिए बेहतर वातावरण की आवश्यकता पड़ रही

है। शहरी क्षेत्रों में अवस्थापना तथा मूलभूत नागरिक सुविधाओं पर अपेक्षाकृत अधिक दबाव होने के कारण कालान्तर से ही शहरों के सुनियोजित विकास की आवश्यकता का अनुभव किया जाता रहा है। इसी क्रम में प्रदेश के नगरीय क्षेत्रों को नगरीय स्थानीय निकाय के एक स्वतंत्र इकाई के रूप में अंगीकार किया गया है। भारत में 'शहरी स्थानीय शासन' का अर्थ शहरी क्षेत्र के लोगों द्वारा चुने प्रतिनिधियों से बनी सरकार से है । शहरी स्थानीय शासन का अधिकार क्षेत्र उन निर्दिष्ट शहरी क्षेत्रों तक सीमित है, जिसे राज्य सरकार द्वारा इस उद्देश्य के लिए निर्धारित किया गया है। भारत में विभिन्न प्रकार के शहरी स्थानीय शासन हैं- नगरपालिका परिषद्, नगरपालिका, अधिसूचित क्षेत्र समिति, शहरी क्षेत्र समिति, छावनी बोर्ड, शहरी क्षेत्र समिति, पत्तन न्यास और विशेष उद्देश्य के लिए गठित एजेंसी। 22 दिसम्बर, 1992 को लोकसभा द्वारा तथा 23 दिसम्बर, 1992 को राज्यसभा द्वारा पारित और 20 अप्रैल, 1993 को राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत एवं 01 जून, 1993 से प्रवर्तित 74वें संविधान संशोधन द्वारा स्थानीय नगरीय शासन के सम्बन्ध में संविधान में भाग- 9- क नये अनुच्छेदों (243 त से 243 य छ तक) एवं 12वीं अनुसूची जोड़कर संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है।

प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था को प्रशासन की आवश्यकता होती है। प्रशासन स्वप्न और उनकी पूर्ति के बीच की दुनिया है। उसे हमारी व्यवस्था, स्वास्थ्य और जीवनशक्ति की कुन्जी माना जा सकता है। राज्य, सरकार और प्रशासन के माध्यम से कार्य करता है। राज्य के उद्देश्य और नीतियाँ कितनी भी प्रभावशाली, आकर्षक और उपयोगी क्यों न हों, उनसे उस समय तक कोई लाभ नहीं हो सकता, जब तक कि उनको प्रशासन के द्वारा कार्य रूप में परिणत नहीं किया जाये। हमारे देश में नगरीय क्षेत्रों की जनसंख्या, ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में दो गुनी गति से बढ़ रही है। नगरों में जनसंख्या के इस बढ़ते दबाव के कारण अधिक सेवाओं, सुविधाओं व जीवन यापन के लिए बेहतर वातावरण की आवश्यकता पड़ रही है। वस्तुतः प्रशासन सभी नियोजित कार्यों में विद्यमान होता है, चाहे वे निजी हों अथवा सार्वजनिक।

इस अध्याय का उद्देश्य पाठकों को भारत में नगरीय प्रशासन एवं उसके ढ़ाँचे से परिचय कराना है। इसमें नगर पंचायत, नगरपालिका, नगर निगम आदि नगरीय निकायों के प्रशासनिक ढ़ाँचा, नगरीय प्रशासन में सरकारी एवं गैर सरकारी अधिकारियों के सम्बन्ध तथा नगरीय प्रशासन की चुनौतियाँ आदि मुद्दों पर चर्चा से भी पाठकों का ज्ञानवर्धन होगा।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारत में नगरीय प्रशासन एवं उसके ढ़ाँचे के बारे में ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे।
- साथ ही आप नगरीय निकायों की प्रशासनिक संरचना के बारे में जान सकेंगे।
- आप विविध स्तर पर सरकारी एवं गैर-सरकारी अधिकारियों के सम्बन्ध के बारे में जान सकेंगे तथा
- नगरीय प्रशासन की चुनौतियों एवं समाधान से भी आप अवगत होंगे।

11.2 भारत में नगरीय स्थानीय प्रशासन का परिचय

राज्य के स्वरूप और गतिविधियों के विस्तार के साथ प्रशासन का महत्व भी बढ़ता गया है। प्रशासन लोक कल्याणकारी राज्य में 'पालने से शमशान' तक व्यक्ति के साथ होता होता है। आज की बढ़ती हुई जटिलताओं का सामना करने में व्यक्ति एवं समुदाय, अपनी सीमित क्षमताओं और साधनों के कारण स्वयं को असमर्थ पाते हैं। स्थिति यह है कि प्रशासन के अभाव में हमारा अपना जीवन, मृत्यु के समान भयावह और टूटे तारे के समान असहाय लगता है। हम उसे अपने वर्तमान का ही सहारा नहीं समझते, वरन् एक नयी सभ्यता, संस्कृति, व्यवस्था और विश्व के निर्माण का आधार मानते हैं। प्रशासन की आवश्यकता सभी निजी और सार्वजनिक संगठनों को होती है। प्रशासन स्वप्न और उनकी पूर्ति के बीच की दुनिया है। उसे हमारी व्यवस्था, स्वास्थ्य और जीवनशक्ति की कुन्जी माना जा सकता है। वस्तुतः प्रशासन सभी नियोजित कार्यों में विद्यमान होता है, चाहे वे निजी हों अथवा सार्वजनिक। उसे प्रत्येक जनसमुदाय की सामान्य इच्छाओं की पूर्ति में सलग्न व्यवस्था माना जा सकता है।

लोकतंत्र की संकल्पना को यथार्थ में अस्तित्व प्रदान करने की दिशा में शहरी स्थानीय स्वशासन व्यवस्था एक ठोस कदम है। लोकतान्त्रिक विकेंद्रीकरण भागीदारी के माध्यम से जनता को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से शासन एवं प्रशासन का प्रशिक्षण स्वत: ही प्रदान रहती है। लोकतान्त्रिक शासन के विधि निर्माण प्रक्रिया से जनता को जोड़ने और जनता के सबसे नजदीक की संस्थाओ तक लोकतान्त्रिक शक्तिओं का विस्तार करने के लिए यह आवश्यक है कि शासन का विकेन्द्रीकरण इस प्रकार से किया जाये कि लोकतान्त्रिक शक्ति अंतिम जन तक पहुँचे। विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया में सन् 1992 में हुए 73वें एवं 74वें संविधान द्वारा ग्रामीण व नगरीय क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन को स्थापित कर उन्हें मजबूत बनाने की मंशा को एक ऐतिहासिक कदम के रूप में जाना जाता है। स्थानीय स्वशासन संस्थाएं लोकतंत्र की रीढ़ हैं। भारत की तरह बड़ी आबादी एवं क्षेत्रीय विभिन्नता वाले विशाल देश में लोकतंत्र को सार्थक एवं कल्याणोन्मुख बनाने के लिए विकेन्द्रीकरण अन्तर्निहित अनिवार्यता है। उच्च स्तर से निम्न स्तर की ओर शक्ति का प्रवाह होना लोकतंत्र में आवश्यक एवं वांछित प्रक्रिया है।

शहरी स्थानीय निकायों के लिए समान ढ़ाँचा प्रदान करने के लिए और स्वशासन के प्रभावशील प्रजातांत्रिक इकाईयों के रूप में निकायों के कार्यों को सुदृढ़ बनाने में सहायता देने के लिए संसद में 1992 में नगरपालिकाओं के सम्बन्ध में संविधान (74वां संशोधन) अधिनियम, 1992 अधिनियमित किया है। अधिनियम पर राष्ट्रपति की सहमति 20 अप्रैल 1993 को प्राप्त हुई। भारत सरकार ने 1 जून, 1993 जिस तारीख से उक्त अधिनियम लागू हुआ, को अधिसूचित किया। नगरपालिका सम्बन्धी नया भाग IX- क, को अन्य चीजों के अतिरिक्त तीन प्रकार की नगरीय निकायों की व्यवस्था करने के लिए संविधान में शामिल किया गया है, अर्थात् ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्र में मार्गस्थ के लिए नगर पंचायतें**,** छोटे आकार के शहरी क्षेत्रों के लिए नगरपालिका परिषद और बड़े शहरी क्षेत्रों के लिए नगरपालिकाएं, नगरपलिकाओं की नियत अवधि, राज्य निर्वाचन आयोग की नियुक्ति, राज्य वित्त आयोग की नियुक्ति और मेट्रोपोलिटन एवं जिला योजना समितियों का गठन राज्य/संघ राज्य क्षेत्रों ने अपना निर्वाचन आयोग गठित किया है। नगरीय शासन से सम्बन्धित अनुच्छेदों का वर्णन संविधान की 12वीं अनुसूची में अनुच्छेद- 243(पी) से 243(जेड जी) तक किया गया है। नगरीय शासन से सम्बन्धित संस्थाओं के तीन प्रकार हैं- नगर पंचायत, नगरपालिकाएं एवं नगर निगम।

- नगर पंचायत, ऐसे क्षेत्र के लिए जो ग्रामीण क्षेत्र से नगर क्षेत्र में परिवर्तित हो रहा है,
- नगर परिषद, छोटे नगर क्षेत्र के लिए, तथा;
- नगर निगम, बड़े नगर क्षेत्र के लिए।

अनुच्छेद-243(थ) ने प्रत्येक राज्य के लिए ऐसी इकाइयां गठित करना अनिवार्य कर दिया है। किंतु यदि कोई ऐसा नगर क्षेत्र है जहाँ कोई औद्योगिक स्थापन नगरपालिका सेवाएं प्रदान कर रहा है या इस प्रकार प्रदान किए जाने का प्रस्ताव है तो क्षेत्र का विस्तार और तथ्यों पर विचार करने के पश्चात राज्यपाल उसे औद्योगिक नगर घोषित कर सकेगा। ऐसे क्षेत्र के लिए नगरपालिका गठित करना अनिवार्य नहीं होगा। नगरीय शासन से सम्बन्धित 74वें संविंधान संशोधन अधिनियम, 1992 के अस्तित्व में आने से निचले स्तर तक अधिकारों के विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई है। संविधान के इस संशोधन अधिनियम से नगरीय स्वायत्त संस्थाओं को विशेष दर्जा प्राप्त हो गया है। साथ ही स्थानीय प्रशासन की प्रशासन का तीसरा स्तर माना जाने लगा है, जबकि दो अन्य स्तर हैं- केन्द्र स्तर एवं राज्य स्तर। नगरीय निकाय ऐसी संस्थायें हैं, जिनकी निश्चित सेवाएं एवं नियामक कार्य हैं। इन्हें आगे अनिवार्य एवं विवेकाधीन दायित्वों में वर्गीकृत किया जा सकता है। नगरीय निकाय विकास एवं जन-कल्याण से सम्बन्धित सभी कार्यक्रमों एवं योजनाओं से सम्बन्धित हैं। नगरीय स्थानीय निकायों के क्षेत्र में निवास करने वाली

जनसंख्या को मूलभूत नागरिक सुविधाएं, जैसे- स्वच्छ पेयजलापूर्ति, सड़कें/गलियां, जल निकासी, सफाई व्यवस्था, कूड़ा निस्तारण, सीवरेज व्यवस्था, मार्ग प्रकाश, पार्क, स्वच्छ पर्यावरण, आदि उपलब्ध कराया जाना, इन शहरी स्थानीय निकायों का कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व है।

नगरीय निकायों के जनसंख्या के आधार पर तीन वर्ग किए गए हैं, पहला, बड़ी जनसंख्या वाले नगरों के लिए नगर निगम या महानगर पालिका, दूसरा, नगर पालिका तथा तीसरा, नगर पंचायत जो जनसंख्या में भारी वृद्धि के कारण नगरों में परिवर्तित हो रहे हैं। अलग-अलग राज्यों के नगरीय निकाय कानून के अंतर्गत जनसंख्या का आकार अलग-अलग है। प्रत्येक राज्य में नगर पंचायत, नगर पालिका परिषद् तथा नगर निगम का गठन किया जाएगा। नगर पंचायत का गठन उस क्षेत्र के लिए होगा, जो ग्रामीण क्षेत्र से नगरीय क्षेत्र में परिवर्तित हो रहा है। नगर पालिका परिषद् के सम्बन्ध में छोटे नगरीय क्षेत्रों के लिए किया जाएगा, जबकि बड़े नगरों के लिए नगर निगम का गठन होगा। तीन लाख या अधिक जनसंख्या वाली नगर पालिका के क्षेत्र में एक या अधिक वार्ड समितियों का गठन होगा। ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के बीच के क्षेत्र से सम्बन्धित नगरपालिका को नगर पंचायत के नाम से जानते हैं, हालाँकि इसका नाम राज्यों के अनुसार बदलता रहता है। छोटे और मध्यम शहरों के लिए नगर परिषद् की गठन की गई है, परन्तु ऐसे नगर क्षेत्रों या उसके किसी भाग के लिए नगरपालिका का गठन नहीं किया जायेगा जिसे राज्यपाल उस क्षेत्र के आकार को और उस क्षेत्र में स्थापित किसी औद्योगिक संस्थान के द्वारा उपलब्ध की गई या प्रस्तावित नगरपालिका सेवाओं को या अन्य किसी बात को ध्यान में रखते हुए उचित समझता है। लोक अधिसूचना द्वारा ऐसे क्षेत्र को एक औद्योगिक शहर के रूप में विनिर्दिष्ट कर सकता है। इस अनुच्छेद के अंतर्गत संक्रमणशील, और वृहत्तर नगरीय क्षेत्र से अर्थ ऐसे क्षेत्र से है जिसे किसी राज्य की सरकार उस क्षेत्र के जनसँख्या की सघनता, स्थानीय प्रशासन के लिए प्राप्त राजस्व कृषि इतर क्रियाकलापों में नियोजन की प्रतिशतता आर्थिक महत्व या ऐसी ही अन्य बातों को जिसे वह ठीक समझे ध्यान में रखते हुए लोक अधिसूचना द्वारा इस भाग के प्रयोजन के लिए विनिर्दिष्ट करे। वहीं बड़े शहरी क्षेत्रों के लिए नगर निगम की व्यवस्था की गई है। अलग-अलग राज्यों के नगरीय निकाय कानून के अंतर्गत जनसंख्या का आकार अलग-अलग है। केरल में अभी तक नगर पंचायत की स्थापना नहीं की गई है, इसलिए केरल में सैकड़ों गांवों की जनसंख्या 20 हजार से 30 हजार के बीच है। जबकि छत्तीसगढ़ की 127 नगर पंचायतों में से वर्ष 2011 में 76 ग्राम पंचायतों की जनसंख्या 10 हजार से भी कम थी। संविधान में 12वीं अनुसूची में नगर पालिकाओं की 18 कार्यमदों का उल्लेख है जो अनुच्छेद- 243 डब्ल्यू से सम्बन्धित है।

नगरीय स्थानीय शासन व्यवस्था के तीनों स्तर पर संरचना निम्नवत होती है-

संस्था का नाम	राजनीतिक प्रतिनिधि	प्रशासनिक अधिकारी
नगर निगम	महापौर	आयुक्त
नगरपालिका	अध्यक्ष	अधिशासी अधिकारी
नगर पंचायत	अध्यक्ष	अधिशासी अधिकारी/ नगर पंचायत अधिकारी

11.3 भारत में नगरीय स्थानीय शासन का प्रशासकीय ढ़ाँचा

भारत के विभिन्न राज्यों में नगरीय स्थानीय संगठन की प्रशासनिक संरचना भिन्नता लिए हुए है, तथापि मूलभूत सिद्धान्तों में काफी समानता है। शहरी स्थानीय निकायों के कार्यों पर प्रशासकीय नियंत्रण के साथ-साथ नगरीय क्षेत्रों में अवस्थापना सुविधाओं के विकास एवं विस्तार हेतु विभिन्न योजनाओं/कार्यक्रमों के माध्यम से आवश्यक वित्तीय सहायता उपलब्ध कराये जाने हेतु राज्यों में नगर विकास विभाग का गठन किया गया। नगर विकास विभाग द्वारा उक्त कार्यों के अतिरिक्त शहरों में स्वच्छता, पर्यावरण संरक्षण तथा नदियों/झीलों में प्रदूषण नियंत्रण आदि का कार्य भी किया जा रहा है। राज्यों में नगरीय स्थानीय निकाय से सम्बन्धित कार्यों के नियंत्रण, निरीक्षण एंव निर्देशन और योजनाओं की संरचना उनके अनुश्रवण, कार्यान्वयन के लिये राज्य स्तर से लेकर नगर पंचायत स्तर तक एक सशक्त और सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था है। राज्य स्तर पर राजनीतिक नेतृत्व शहरी विकास विभाग के मंत्री का होता है जबकि प्रमुख सचिव, शहरी विकास इसे प्रशासनिक नेतृत्व प्रदान करते हैं।

पदसोपान में यह व्यवस्था सामान्यतः निम्नवत होती है-

मंत्री, शहरी विकास
↓
प्रमुख सचिव, शहरी विकास
↓
सचिव, शहरी विकास
↓
विशेष सचिव
↓
संयुक्त सचिव
↓
उप सचिव
↓
अनु सचिव
↓
अनुभाग अधिकारी

सामान्यतः निदेशालय स्तर पर निदेशक, शहरी विकास के अधीन अपर निदेशक, मुख्य वित्त एवं लेखाधिकारी, संयुक्त निदेशक, प्रशासनिक अधिकारी तथा प्रकाशन अधिकारी आदि के पद स्वीकृत होते हैं और यह समस्त अधिकारी निदेशक, शहरी विकास के सामान्य नियंत्रण में विभागीय कार्यों का सम्पादन करते हैं। निदेशालय स्तर पर निदेशक, शहरी विकास विभागाध्यक्ष का कार्य देखते हैं और यह व्यवस्था निम्नवत होती है-

निदेशक, शहरी विकास (विभागाध्यक्ष)

↓

अपर निदेशक

↓

संयुक्त निदेशक

↓

मुख्य वित्त एवं लेखाधिकारी

↓

प्रशासनिक अधिकारी

11.3.1 नगर पंचायत का प्रशासनिक ढ़ाँचा

अलग-अलग राज्यों के नगरीय निकाय कानून के अंतर्गत जनसंख्या का आकार अलग-अलग है। बिहार नगरपालिका अधिनियम 2007 में यह प्रावधान किया गया है कि जिन ग्राम पंचायतों की आबादी बारह हजार से ऊपर जनसंख्या वाले क्षेत्र हैं, उसे छोटा शहरी क्षेत्र के रूप में वर्गीकृत कर नगर पंचायत का दर्जा दिया जा सकता है। नगर पंचायत घोषित होने पर वहाँ नगर विकास एवं आवास विभाग के नियंत्राणाधीन विभिन्न वार्डों का गठन किया जायेगा। सामान्यतः नगर पंचायत का गठन उस क्षेत्र के लिए होता है, जो ग्रामीण क्षेत्र से नगरीय क्षेत्र में परिवर्तित हो रहा है। नगर पंचायतें नगरीय निकाय व्यवस्था की आधारशिलाएं हैं।

नगर पंचायत एक प्रशासनिक इकाई होती है, जिसमें स्पष्ट रूप से परिभाषित क्षेत्र होता है और इसकी जनसंख्या भी अंकित होती है। एक नगर पंचायत में प्रायः एक नगर पंचायत अधिकारी प्रशासनिक अधिकारी होता है, व इसके ऊपर नगर पंचायत परिषद का नियंत्रण होता है। नगर पंचायत अधिकारी/अधिशासी अधिकारी राज्य सरकार का अधिकारी होता है जो सामान्यतः राज्य असैनिक या सामान्य सेवा (पी0सी0एस0) संवर्ग से सम्बन्ध रखता है और इनकी राज्य सरकार द्वारा प्रतिनियुक्ति होती है। वह प्रशासनिक कार्यों को करता है और नगरीय स्थानीय निकाय की कार्यप्रणाली को निष्पादित करता है। नगर पंचायत अपने कार्यों के लिए या तो अपने मानव संसाधन का इस्तेमाल

करता है या नगर पंचायत में कार्यरत कर्मचारी नगर विकास विभाग के संवर्ग से होते हैं, या फिर वो अन्य किसी विभाग से नगर पंचायत में तैनात किए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त सरकार नगर पंचायत के अधीन काम करने के लिए समय-समय पर उतनी संख्या में राज्य सरकार के पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों को पदस्थापित करती है, जितना वह आवश्यक समझे। इसके अतिरिक्त राज्य सरकार द्वारा बनाये गये नियमों के अधीन कोई नगर पंचायत पने कार्य के संचालन के लिए समय-समय पर उतनी संख्या मे भुगतान के आधार पर या अवैतनिक कर्मचारियो की सेवा ले सकेगी जितनी की जरूरी हो।

11.3.2 नगरपालिका का प्रशासनिक ढ़ाँचा

भारत में, एक नगर पालिका अक्सर एक शहर के रूप में जाना जाता है। यह न तो एक ग्राम और न ही बड़े शहर के बराबर होता है, वरन उनके बीच का होता है। एक नगर पालिका 20 हजार या उससे अधिक लोगों को मिलाकर बनता है, लेकिन अगर यह 05 लाख से अधिक जनसंख्या वाला हो जाता है तब एक निगम बन जाता है। नगरपालिका एक प्रशासनिक इकाई होती है, जिसमें स्पष्ट रूप से परिभाषित क्षेत्र होता है और इसकी जनसंख्या भी अंकित होती है। आमतौर पर यह एक शहर, कस्बे या गांव, या उनमें से छोटे समूह रूप में होता है। एक नगरपालिका में प्रायः एक महापौर प्रशासनिक अधिकारी होता है, व इसके ऊपर नगर परिषद या नगरपालिका परिषद का नियंत्रण होता है। प्रायः नगरपालिका अध्यक्ष ही प्रशासनिक अध्यक्ष होता है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 243 (द) के अनुसार खण्ड (2) में उपबंधित उपबंध के सिवाय किसी नगरपालिका में सभी स्थान नगरपालिका क्षेत्र के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने गये व्यक्तियों द्वारा भरे जाएंगे। इस प्रयोजन के लिए प्रत्येक नगरपालिका क्षेत्र को प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया जाएगा जिसे 'वार्ड' कहा जाएगा। अर्थात नगरपालिका के सभी सदस्यों का चुनाव उस नगरपालिका क्षेत्र के लोगों द्वारा सीधे-सीधे किया जाएगा। इसके लिए प्रत्येक नगरपालिका क्षेत्र को क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों में; अर्थात वार्डों में बांटा जाएगा। नगरपालिका अध्यक्ष के चुनाव पद्धति का निर्धारण राज्य विधानमंडल द्वारा किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त नगरपालिका में निम्नलिखित लोगों के प्रतिनिधित्व का प्रावधान भी किया जा सकता है-

1. नगरपालिका प्रशासन का विशेष ज्ञान या अनुभव रखने वाला व्यक्ति किन्तु उसे नगरपालिकाओं की बैठकों में मत का अधिकार नहीं होगा।

2. लोकसभा या राज्य विधानमंडल के वे सदस्य जो उस चुनाव क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हों, जिसमें नगरपालिका का पूरा अथवा कुछ भाग आता हो।
3. राज्यसभा या राज्य विधानपरिषद के वे सदस्य जो नगरपालिका क्षेत्र में मतदाता के रूप में पंजीकृत हों।

उपरोक्त सभी नियमों के रहते हुए भी राज्य का विधानमंडल विधि बनाकर नगरपालिका के निर्वाचन की रीति विहित करेगा। नगरपालिकाओं के सदस्य प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा निर्वाचित होंगे। राज्य विधानमंडल अपनी विधि द्वारा निम्नलिखित व्यक्तियों के प्रतिनिधित्व के लिए प्रावधान कर सकता है-

- नगरपालिका प्रशासन में विशेष ज्ञान या अनुभव रखने वाले व्यक्ति,
- लोक सभा, राज्य सभा, विधान सभा और विधान परिषद के सदस्य, तथा;
- संविधान के अनुच्छेद- 243-ध, के अंतर्गत गठित वार्ड समितियों के अध्यक्ष।
- अध्यक्षों को निर्वाचन विधानमंडल द्वारा निर्मित उपबंध के अनुसार किया जायेगा।

तीन लाख या उससे अधिक जनसंख्या वाले नगरपालिका क्षेत्र में आने वाले दो या अधिक वार्डों के लिए वार्ड समितियां बनाना आवश्यक है। विधान-मण्डल वार्डों का गठन, क्षेत्र तथा सदस्यों के चुनाव की विधि तय करेगा। विधान-मण्डल अन्य समितियों का भी गठन कर सकता है। ऐसी नगरपालिका जिसकी जनसँख्या तीन लाख या उससे अधिक है, प्रादेशिक क्षेत्र के भीतर एक या अधिक वार्डों को मिलाकर वार्ड समितियों का गठन किया जाएगा। (अनुच्छेद- 243 ध) इसके अतिरिक्त राज्य का विधान-मण्डल वार्ड समिति की संरचना, भौगोलिक क्षेत्र और समिति में स्थान भरने की प्रक्रिया से सम्बन्धित प्रावधान बना सकता है। राज्य का विधान-मण्डल वार्ड समिति के गठन के अतिरिक्त समितियों के गठन के लिए भी किसी भी तरह का प्रावधान बना सकता है। प्रादेशिक वार्ड समिति के क्षेत्र के भीतर किसी वार्ड का प्रतिनिधित्व करने वाला किसी नगरपालिका का सदस्य उस समिति का सदस्य होगा, जहाँ कोई वार्ड समिति एक वार्ड से मिलकर बनी है, वहाँ नगरपालिका में उस वार्ड का प्रतिनिधित्व करने वाला सदस्य या दो या दो से अधिक वार्ड से मिलकर बनी है, वहाँ नगरपालिका में उस वार्ड का प्रतिनिधित्व करने वाला सदस्य जो वार्ड समिति द्वारा निर्वाचित किया गया है, उस समिति का अध्यक्ष होगा।

74वें संशोधन अधिनियम में प्रत्येक नगरपालिका का कार्यकाल 05 वर्ष निर्धारित किया गया है। किन्तु इसे समय से पहले अर्थात कार्यकाल पूरा होने से पहले भी भंग किया जा सकता है। परन्तु विघटन के पूर्व नगरपालिका को उचित सुनवाई का अवसर दिया जाएगा। नगरपालिका को अपने कार्यों को निष्पादित करने के लिए पर्याप्त मानव संसाधनों की जरूरत है। नगरपालिका परिषद के कार्यों को निम्न तरीकों से निष्पादित किया जाता है, कार्यकारी

इकाई नगरपालिका आयुक्त द्वारा संचालित की जाती है। नगरपालिका आयुक्त राज्य सरकार का अधिकारी होता है जो पी0सी0एस0 संवर्ग से सम्बन्ध रखता है और इनकी राज्य सरकार द्वारा प्रतिनियुक्ति होती है। आयुक्त, रोजाना के प्रशासनिक कार्यों को कराता है और नगरीय स्थानीय निकाय की कार्यप्रणाली को निष्पादित करता है। आयुक्त को अधिकारियों की एक टीम द्वारा सहायता प्रदान करता है, जो नगरीय स्थानीय निकाय से सम्बन्धित होती है, जिसका कार्यकाल नगरीय स्थानीय निकाय में काफी लंबा रहा हो। नगरपालिका अपने कार्यों के लिए या तो अपने मानव संसाधन का इस्तेमाल करता है या नगरपालिका में कार्यरत कर्मचारी नगर विकास विभाग के संवर्ग से होते हैं, या फिर वो अन्य किसी विभाग से नगर पालिका में तैनात किए जा सकते हैं। नगरपालिका में और सम्बन्धित संवर्ग में तैनात कर्मचारी नगर विकास विभाग के होते हैं। अपने संवर्ग से सम्बन्धित अन्य विभागों से कर्मचारियों की तैनाती नगरपालिका में होती होती है। उदाहरण के लिए नगर स्वास्थ्य अधिकारी, चिकित्सा स्वास्थ्य विभाग द्वारा तैनात किया जाता है। नगर पालिका आयुक्त ज्यादातर पी0सी0एस0(प्रांतीय सिविल सेवा) संवर्ग से सम्बन्धित होता है और उसकी प्रतिनियुक्ति नगरपालिका में मानी जाती है। इसके अतिरिक्त सरकार नगरपालिका के अधीन काम करने के लिए समय-समय पर उतनी संख्या में राज्य सरकार के पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों को पदस्थापित करती है, जितना वह आवश्यक समझे। इसके अतिरिक्त राज्य सरकार द्वारा बनाये गये नियमों के अधीन कोई नगरपालिका अपने कार्य के संचालन के लिए समय-समय पर उतनी संख्या मे भुगतान के आधार पर या अवैतनिक कर्मचारियो की सेवा ले सकेगी जितनी की जरूरी हो।

11.3.3 नगर निगम या महानगरपालिका का प्रशासनिक ढ़ाँचा

भारत उनतीस राज्यों और सात केन्द्र शासित प्रदेशों का एक संघीय ढ़ाँचा है। शहरी क्षेत्रों में अवस्थापना तथा मूलभूत नागरिक सुविधाओं पर अपेक्षाकृत अधिक दबाव होने के कारण कालान्तर से ही शहरों के सुनियोजित विकास की आवश्यकता का अनुभव किया जाता रहा है। इसी क्रम में प्रदेश के नगरीय क्षेत्रों को नगरीय स्थानीय निकाय के एक स्वतंत्र इकाई के रूप में स्वीकार कर स्थापित किया गया है। बढ़ती आबादी एवं भारत के विभिन्न शहरों में शहरीकरण के साथ, नगर निगमों की स्थापना आवश्यक सामुदायिक सेवाएं जैसे स्वास्थ्य केन्द्र, शैक्षणिक संस्थान और आवास, संपत्ति कर जैसे अन्य मामलों में सहायता प्रदान करने के लिए की गई। शहर के प्रशासन में नगर निगम बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है एवं इसका नेतृत्व नगर निगम आयुक्त द्वारा किया जाता है, जिसके पास समस्त कार्यकारी अधिकार होते हैं। भारत में नगर निगम, पंचायती राज व्यवस्था के निगम अधिनियम,1835 के तहत गठित है एवं, प्रत्येक जिले अथवा शहर के छोटे से छोटे गांव अथवा कस्बे में

आवश्यक सेवाएं प्रदान करने के लिए जिम्मेदार है। राज्य में एक केन्द्रीय महत्व का स्थान रखते हुए नगर निगम लोगों की दैनिक समस्याओं का समाधान करता है एवं उन्हें सुविधाजनक सेवाएं प्रदान करता है। देश के चार महानगरों में सबसे बड़े निगम हैं। दिल्ली, कोलकाता, मुंबई एवं चेन्नई में से मुंबई नगर निगम सबसे बड़ा है। इन चार महानगरों में देश की बहुत बड़ी आबादी ही नहीं रहती है, बल्कि ये चारों महानगर देश के प्रशासनिक एवं वाणिज्यिक केन्द्र भी हैं।

नगरीय स्थानीय शासन व्यवस्था के पदसोपान क्रम में नगर निगम शीर्षस्थ संस्था है। सर्वोच्च इकाई होने के कारण इसका मुख्य कार्य राज्य एवं नगर निगम के निवासियों में एक कड़ी का है। आम आदमी के लाभ के लिए स्थापित की गई विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों के प्रभावी निष्पादन और एक बेहतर एवं योजनाबद्ध शहर के निर्माण के लिए नगर निगम राज्य सरकार के साथ हाथ से हाथ मिलाकर कार्य करता है। 1992 के अधिनियम के अनुसार सभी राज्यों ने अपने नगरपालिका अधिनियम में आवश्यक संशोधन किये हैं। भारत में एक नगर निगम एक स्थानीय सरकार के रूप में 2 लाख या उससे अधिक की जनसंख्या के एक शहर का प्रशासन करता है। शहरी स्थानीय व्यवस्था के तहत, यह राज्य सरकार के साथ सीधे संपर्क रखता है, हालांकि यह प्रशासनिक दृष्टि से जिले के अधीन ही आता है व उसी में स्थित होता है। भारत में ब्रिटिश काल में ही मुंबई, कोलकाता एवं चेन्नई में नगर निगम स्थापित हो गए थे, जबकि दिल्ली में संसद के 1958 के एक अधिनियम द्वारा नगर निगम की स्थापना की गयी। आज दिल्ली नगर निगम एक शहर व नगर निगम है, जो दिल्ली के कुल नौ जिलों में कार्यरत है। यह दिल्ली में कार्यरत तीन नगरपालिकाओं में से एक है। शेष दो हैं- नई दिल्ली नगर पालिका और दिल्ली छावनी बोर्ड। दिल्ली नगर निगम विश्व की सबसे बड़ी नगर पालिका संगठन है, जो कि अनुमानित 137.8 लाख नागरिकों को नागरिक सेवाएं प्रदान करती है। देश के अन्य राज्यों में भी जनसंख्या के आधार पर नगर निगमों की स्थापना की गयी है। राज्यों ने 74वें संशोधन को यथानुरूप आवश्यक परिवर्तन भी कए है तथा नगरीय शासन प्रणाली को साकार बनाया है।

सामान्यतः नगर निगम का सर्वोच्च निर्वाचित पदाधिकारी महापौर (मेयर) कहलाता है। नगर निगम के समस्त सदस्य पहली बैठक में महापौर एवं उप-महापौर का चयन करते हैं। इनका कार्यकाल पांच वर्ष का होता है। महापौर नगर निगम परिषद् और मेयर इन कौंसिल के मुखिया होता है। शहर के प्रथम नागरिक के रूप में उसका ऊंचा ओहदा भी होता है। नगर निगम परिषद में महापौर, उप महापौर और वार्डों के अन्य पार्षद शामिल होते हैं। महापौर, उप-महापौर एवं अन्य पार्षद को मिलाकर बनाई गई एक स्थायी उच्चाधिकार समिति के माध्यम से 'नगर निगम

परिषद' कार्य करती है। निगम अध्यक्ष कार्य करने में असमर्थ हो तो महापौर कभी भी विशेष सम्मेलन बुला सकते हैं। अपने कार्यालय के अमले पर महापौर का प्रशासकीय नियंत्रण होता है। महामारी या आपदा की स्थिति में ऐसे काम के लिए निर्देश दे सकते हैं, जो तत्काल जरूरी हो। कई मामलों में मेयर को मेयर इन कौंसिल अपने अधिकार भी सौंप सकती है। मेयर अपनी कैबिनेट यानी मेयर इन काउंसिल का गठन करते हैं। अधिकांश राज्यों में तीन लाख से अधिक आबादी वाले नगर निगमों में महापौर परिषद् सीधे तौर पर 15 लाख रुपए तक की लागत के कार्यों के लिए मंजूरी दे सकती है। तीन लाख से कम आबादी वाले शहरों के लिए यह सीमा 10 लाख रुपए तक है।

नगर निगम का प्रशासनिक मुखिया आयुक्त होता है, जो भारतीय प्रशासनिक सेवा का अधिकारी होता है। वह अधिकारों से संपन्न होता है तथा शासन से मिलने वाले आदेशों और निर्णयों के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी इन्हीं की होती है। महापौर, एम0आई0सी0 या निगम परिषद् द्वारा लिए जाने वाले निर्णयों के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी नगर निगम आयुक्त की रहती है। महापौर अपने अधिकार-क्षेत्र में आने वाले कार्य का प्रस्ताव बनाकर नगर निगम आयुक्त को भेजते हैं। आयुक्त द्वारा प्रस्ताव के मुताबिक उस पर अमल प्रक्रिया शुरू की जाती है। अब किसी-किसी राज्य में शासन ने आयुक्त को अधिकारिता के मुताबिक जिलाधिकारी या शासन को सीधे प्रस्ताव भेजने की छूट भी दे दी है। शासन कानून में नगर निगम की जिम्मेदारियों के रूप में अनिवार्य व विवेकाधीन कर्तव्यों का उल्लेख है। हालांकि अधिनियम में यह भी साफ किया गया है कि इन कर्तव्यों का पालन नहीं करने पर निगम के किसी पदाधिकारी या पार्षद से क्षतिपूर्ति नहीं मांगी जा सकती या उनके खिलाफ अदालत में कोई वाद दायर किया जा सकता है। मुखिया होने के नाते नगर निगम की जिम्मेदारियों को पूरा करवाना महापौर का दायित्व है। नगर निगम कमिश्नर को पांच लाख तक के कार्यों की स्वीकृति का वित्तीय अधिकार प्राप्त है। इससे अधिक राशि के प्रस्तावों के लिए उन्हें महापौर परिषद से अनुमोदन प्राप्त करना होता है।

उपायुक्त या संयुक्त नगर आयुक्त आयुक्त के अधीन काम करते हैं और उनके द्वारा सौंपे गए दायित्वों को पूरा करने की जिम्मेदारी इन्हीं की है। कुछ अधिकारी राज्य प्रशासनिक सेवा के भी होते हैं। मुख्य नगर लेखा परीक्षक, मुख्य वित्त एवं लेखाधिकारी, मुख्य नगर स्वास्थ्य अधिकारी, पशु चिकित्सा अधिकारी, अधिशासी अभियंता, कर निर्धारण अधिकारी, जन-सम्पर्क अधिकारी, उद्यान अधिकारी आदि नगर निगम के अन्य महत्वपूर्ण अधिकारी हैं।

सामान्यतया आयुक्त नगर निगम का मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी होता है जिसकी नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती है। मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी नगर निगम की नीतियों और निर्देशों को कार्यान्वित करता है और नगर निगम के सभी कार्यों और विकास योजनाओं के शीघ्र निष्पादन हेतु आवश्यक कदम उठाता है।वह महापौर के सामान्य

अधीक्षण और नियंत्रण तथा अन्य पदाधिकारियों और कर्मचारी पर नियंत्रण रखता है, नगर निगम से सम्बन्धित सभी कागजात एवं दस्तावेजों को सुरक्षित रखता है तथा अन्य सौंपे गए कार्यों को पूरा करता है। उसे जिला परिषद् की बैठकों में भाग लेने का अधिकार है। वह बैठक में विचार-विमर्श कर सकता है तथा कोई प्रस्ताव रख सकता है, परन्तु मतदान में भाग नहीं ले सकता है।

11.3.3.1 नगर निगम या महानगर पालिका की भूमिका एवं कार्य

नगर निगम राज्य सरकार के साथ विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए समन्वय से काम करता है। भारत में नगर निगम के सभी अधिनियम निगम के कार्यों, शक्तियों और जिम्मेदारियों को दो श्रेणियों में विभाजित करते हैं।

1. **अनिवार्य कार्य-** कुछ अनिवार्य कार्य हैं। जैसे- शुद्ध और पौष्टिक पानी की आपूर्ति, निर्माण और सार्वजनिक सड़कों का रखरखाव, प्रकाश और सार्वजनिक सड़कों का पानी, सार्वजनिक सड़कों, स्थानों और नाली की सफाई, आक्रामक, खतरनाक एवं अप्रिय ट्रेडों और आजीविकाओं या व्यवहारों का नियमन, प्राथमिक स्कूलों की स्थापना एवं रखरखावय सार्वजनिक अस्पतालों का रख-रखाव या समर्थन, जन्म व मृत्यु का पंजीकरणय सार्वजनिक गलियों, पुलों एवं अन्य स्थानों पर अवरोधों को दूर करना, सड़कों का नामकरण एवं मकानों का क्रमांकन,आदि।
2. **विवेकाधीन कार्य-** कुछ विवेकाधीन कार्य इस प्रकार हैं। जैसे- सार्वजनिक पार्कों, बागीचों, पुस्तकालयों, संग्रहालयों, आराम घर, कुष्ठरोगी घर, अनाथालयों, महिलाओं के लिए वृद्धाश्रमों व बचाव घरों का निर्माण एवं रखरखाव, सड़क के रखरखाव के साथ उसके किनारों व अन्य स्थानों पर पेड़ों का रोपण, निम्न आय वर्ग के लिए आवास, सर्वेक्षणों का आयोजन, सार्वजनिक स्वागत, सार्वजनिक प्रदर्शनियों एवं सार्वजनिक मनोरंजन का आयोजनय नगर पालिका द्वारा परिवहन सुविधाओं का प्रावधान, नगर निगम कर्मचारियों के कल्याण के लिए संवर्धन नगर पंचायत/निगम/पालिका के अन्र्तगत नगर के विभिन्न भाग/वार्ड से एक-एक सदस्य भी चुने जाते है। नगर के एक-एक भाग/वार्ड की जनसंख्या लगभग एक ग्राम पंचायत के बराबर हो जाती है। आंध्र प्रदेश, दिल्ली, मुंबई जैसे कई राज्यों में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के अपनाए जाने से भारत में पूरी तरह से विकसित ई शासित नगर निगम हैं। ये राज्य ई शासन के माध्यम से इस क्षेत्र में नागरिकों को सेवाएं प्रदान करने में उत्कृष्ट रहे हैं।

स्थानीय नगरीय संस्थाओं के कार्यों को सुचारू रूप से सम्पादित करने के लिए 74वें संविधान संशोधन के तहत विभिन्न योजना समितियों की स्थापना की गई है। इनमें से जिला योजना समिति और महानगर योजना समिति प्रमुख है। 'महानगर क्षेत्र' से तात्पर्य ऐसे क्षेत्र से है, जिसकी जनसँख्या दस लाख या उससे अधिक है जो एक या एक से अधिक जिले और एक या अधिक नगरपालिकाओं या पंचायतों का अन्य निकटस्थ क्षेत्र जिसे राज्यपाल लोक अधिसूचना द्वारा इस भाग के प्रयोजन के लिए विनिर्दिष्ट करे। सम्पूर्ण महानगर क्षेत्र के विकास योजना प्रारूप को तैयार करने के लिए प्रत्येक क्षेत्र में एक महानगर योजना समिति गठित की जाती है।

11.4 नगरीय स्थानीय प्रशासन में सरकारी एवं गैर-सरकारी अधिकारियों के सम्बन्ध

स्थानीय स्वशासन व्यवस्था देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को नगरीय समुदाय के आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी सौपी गयी है। स्थानीय शासन संस्थाओं का स्वरुप एक उद्देशीय ना होकर सामान्य उद्देशीय होता है। यह बहुआयामी संस्थान है जो कई प्रकार के कार्यों को करता है। यथा स्थास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, सफाई, जल आपूर्ति आदि। इन जिम्मेदारियों को पूर्ण करने के लिए इन्हे विविध कार्य आबंटित किये गए हैं। नगरीय निकाय संस्थाओं को 18 विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। स्थानीय संस्थाओं के विकास और प्रगति में स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधिओं और अधिकारियों के बीच उचित समन्वय एक आवश्यक तथ्य है।

समाज कल्याण तथा आर्थिक विकास के उद्देश्य से गठित लोकतांत्रिक ढ़ाँचे से लोगों की कई प्रकार की आशाएं होती हैं। बढ़ती आशाएं प्रशासन में लोगों की भागीदारी के लिए यथार्थवादी एवं प्रभावशाली नीतियों की मांग करती हैं। राजनैतिक स्वतंत्रता तथा नीतिगत उद्-घोषणाओं से उठी चुनौतियों और आकांक्षाओं के लिए अंत:मन से किए जाने वाले प्रयासों की आवश्यकता है। लोक कार्यों का प्रबन्ध लोकतांत्रिक होना चाहिए। निम्न स्तर पर लोगों के प्रतिनिधियों से लेकर उच्च स्तर तक दायित्वों का विकेंद्रीकरण व स्थानीय स्वायत्तता आवश्यक है। यहाँ द्रष्टव्य है कि भारत की संस्कृति, भाषा आदि की अनेकता इस कार्य को कुछ अधिक जटिल बना देती है।

किसी भी राष्ट्र के विकास का मूल दायित्व सरकार एवं निजी संस्थाओं के सम्मिलित प्रयास से हीं सम्भव है। प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। लोकतंत्र की सर्वश्रेष्ठ पाठशाला उसकी सफलता की सबसे अधिक गारंटी स्थानीय स्वायत्त शासन का संचालन है। यदि लोकतंत्र का अर्थ जनता की समस्याएं एवं उसके समाधान की प्रक्रिया में जनता की पूर्ण तथा प्रत्यक्ष भागीदारी है तो प्रत्यक्ष, स्पष्ट एवं विशिष्ट लोकतंत्र का

प्रमाण उतना सटीक अन्यत्र देखने को नहीं मिलेगा जितना स्थानीय स्तर पर। द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार स्थानीय स्वशासन निकाय अपने स्तर पर एक सरकार है और इस नाते वह देश की मौजूदा शासन प्रणाली का अभिन्न अंग है, इसलिए निर्दिष्ट कार्यों के निष्पादन के लिए इन निकायों को देश के मौजूदा प्रशासनिक ढ़ाँचे की प्रतिस्थापित करते हुए सामने आना चाहिए।

लेकिन स्थानीय संस्थाओं के विकास और प्रगति में स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों और अधिकारियों के बीच उचित समन्वय का नहीं होना एक बड़ी समस्या है। इनके मध्य अहम् पर आधारित सत्ता का द्वन्द पाया जाता है। दोनों में से कोई भी पक्ष एक दूसरे को अपने ऊपर हावी होने देना नहीं चाहते। जहाँ नौकरशाही अभी भी पुराने औपनिवेशिक ढर्रे पर आधारित शक्ति के ढ़ाँचे से अपने को बाहर नहीं निकाल पाई है और वह जनता के द्वारा चुने गये जनप्रतिनिधियों की भूमिका को न्यूनतम आंकती है तथा उसके साथ सहयोग करने के बजाय उसके राह में रोड़े अटकाती है, वही प्रतिनिधि अपने सत्ता के मद में जनप्रतिनिधियों के वाजिब सलाहों को भी नजरअंदाज करते हैं। जिसके कारण विकास की संभावना प्रभावित होती है। यदि राजनीतिक दल व्यवस्था को अपनी गंदी राजनीति से दूर ही रखें, तो यह राष्ट्र के हित में होगा। ग्रामीण जनता के विकास के लिए केन्द्र एवं राज्य में स्थानीय सरकार द्वारा समय-समय पर विकास की योजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन तो किया जाता है, परन्तु क्रियान्वयन में चुनौतियों के कारण इन योजनाओं का लाभ उन तक नहीं पहुँच पाता जो वास्तव में जरूरतमंद हो। जार्ज मेथ्यु ने भी कहा है कि देश में पंचायती राज के प्रभावकारी ढंग से लागू होने के मार्ग में एक शत्रु नौकरशाह हैं जो पंचायती राज के अधीन काम करना अपनी तौहीन समझते हैं, और नेताओं के साथ इनकी मिलीभगत हैं। वही पीटर रोनाल्ड डिसूजा जो 73वें संविधान को लोकतंत्र की दूसरी हवा कहते हैं, उनके अनुसार पंचायती राज में ग्रामीण विकास की मुख्य समस्या नौकरशाहों की क्षमता व संख्या में कमी भी है। ये बाते नगरीय प्रशासन पर भी यथावत लागू होती हैं।

11.5 नगरीय स्थानीय प्रशासन की चुनौतियाँ एवं चुनौतियों का समाधान

स्थानीय नगरीय संस्थाओं को संवैधानिक प्रस्थिति प्राप्त होने के बावजूद भी इन्हें अपने कार्यकलापों को सुचारू रूप से सम्पादित करने में विभिन्न समस्याओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। नगरीय स्थानीय प्रशासन की अनगिनत चुनौतियाँ हैं। इनकी कुछ चुनौतियाँ सार्वभौमिक होती हैं जो विविध समस्याओं की मूल होती है। यथा वित्तीय संसाधनों की कमी, राज्य सरकार का अतिशय नियंत्रण, स्वायत्तता का अभाव, राज्य सरकार पर अतिरिक्त निर्भरता, अप्रशिक्षित, निष्क्रिय एवं भ्रष्ट कर्मचारी वर्ग, अतिशय राजनीतिक हस्तक्षेप, भाई-

भतीजावाद, भ्रष्ट, अशिक्षित एवं उदासीन जनता आदि-आदि। वस्तुस्थिति उम्मीदों से कहीं भिन्न है। प्रायः प्रशासन तंत्र निम्न स्तर के लोगों को दबाए रखने की क्षमता रखता है। इन व्यवस्थाओं के तहत अधिकारियों और निर्वाचित प्रतिनिधियों के बीच सौहार्दपूर्ण वातावरण बना पाना बहुत मुश्किल काम होगा। दोनों के बीच कटु सम्बन्धों के कारण कई स्थानों पर विकेंद्रित संस्थाओं के निष्पादन पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।

स्थानीय संस्थाओं की सबसे कठिन समस्या वित्तीय अपर्याप्तता है। इसका कारण यह है कि इनके पास लोगों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त आर्थिक स्रोत नहीं हैं। नगरपालिका को कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि पालिका कार्यों तथा स्रोतों को समकालिक होना चाहिए। हालाँकि 74वें संविधान संशोधन द्वारा इन संस्थाओं के लिए पृथक से वित्त आयोग का प्रावधान किया गया है, लेकिन जरुरत इस बात की है कि इस संस्था को और ज्यादा वास्तविक अधिकार सौंपे जाए। स्थानीय स्वशासन और विकेन्द्रीकरण के लक्ष्य को प्राप्त

करने के लिए दलीय प्रतिस्पर्धा के स्थान पर वैचारिक विविधिता में एकता और सामुदायिक सहयोग की भावना का विकास अत्यावश्यक है।

अपनी तमाम वित्तीय, प्रशासनिक सीमाओं और राजनीतिक दबावों के बावजूद स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं ने भारतीय लोकतंत्र को तीसरे पायदान अर्थात जनता के पास ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। लोकतंत्र में कोई भी सुधार या संस्थागत विकास रातोरात नहीं बल्कि क्रमिक रूप से होता है तथा क्रमिक परिवर्तन या विकास की प्रक्रिया ही दीर्घकालीन होती है। अतः स्थानीय नगरीय संस्थाएं भी समय के साथ मजबूती और प्रौढ़ता प्राप्त करेगी, बस जरुरत इस बात की है कि इन संस्थाओं को संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों को पूर्णता से बिना किसी हस्तक्षेप के प्रदान की जाए।

नगरीय जनता के विकास के लिए केन्द्र, राज्य एवं स्थानीय सरकार द्वारा समय-समय पर विकास की योजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन तो किया जाता है। लेकिन नगरीय निकायों की कार्यप्रणाली के क्रियान्वयन में चुनौतियों के कारण इन योजनाओं का लाभ उन व्यक्तियों तक नहीं पहुँच पाता है, जो वास्तव में जरूरतमंद है, इस चुनौतियों के पीछे प्रशासकीय क्रियान्वयन अभिकरणों से सम्बन्धित तंत्रों के कारण दिन-ब-दिन बढ़ती ही जा रही है। योग्य प्रशासकों एवम् विशेषज्ञों के अभाव में नियोजन कार्य असफल हो जाता है।

स्थानीय विकास की मुख्य समस्या यह भी है कि किसी भी स्थानीय योजना का निर्माण एवम् उसका क्रियान्वयन व्यक्तिगत हितों, स्वार्थों को मद्देनजर रखकर किया जाता है, इसके साथ ही संसाधनों का दुरुपयोग, भाई-भतीजावाद, इत्यादि गंभीर समस्याएं हैं जो विकास कार्य में बांधा डालती है।

नीति-निर्माण तथा समन्वय के स्तर पर भी ध्यान ना देने से विकास कार्य शिथिल पड़ जाते हैं। विकास की योजनाओं के निर्माण का कार्य एवं क्रियान्वयन में कठिनाइयां आती हैं एवं विकास यथोचित नहीं हो पाता है। वास्तव में यह प्रत्यक्ष अवलोकन से स्पष्ट हुआ कि सम्बन्धों के अभाव के कारण विभागीय तनाव, मनमुटाव, ईर्ष्या की भावना का विकास होता है। जिससे आपसी सहयोग व समन्वयन का अभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। साथ ही लालफीताशाही में वृद्धि के कारण विकासात्मक कार्यों को पूरा करने में अनावश्यक विलम्ब होता है और कभी-कभी विकासात्मक योजनाओं की फाइलें लंबित रह जाती है। उदाहरण के लिए भवन निर्माण, रोड निर्माण आदि हेतु प्रस्तुत पत्र यदि जिला परिषद् या महानगरपालिका में भेजा जाता है तो महीनों तक परिलंबित पड़ी रह जाती है। इस प्रकार की प्रवृति घुसखोरी, भ्रष्टाचार को बढ़ावा देती है। अधिकारियों व पदाधिकारियों के बीच सम्बन्धों में तनाव, मनमुटाव या ईष्या जैसी भावनाओं के कारण ग्रामीण विकास असफल रहता है। इस प्रकार के सम्बन्धों से विकास की योजनाओं के निर्माण और क्रियान्वयन में कठिनाई आती है।

11.5.1 चुनौतियों का समाधान

लार्ड ब्राइस ने कहा है कि "स्थानीय स्वशासन प्रजातंत्र के लिए प्रशिक्षण की आधारशिला है जिसके अभाव में प्रजातंत्र की सफलता की आशा नहीं की जा सकती।" जनतंत्र का आधार, राजनीतिक एवं नागरिक प्रशिक्षण, उदार दृष्टिकोण एवं नागरिक गुणों का विकास, प्रशासनिक कार्यकुशलता केन्द्र एवं राज्य शासन के कार्यभार में कमी, सरकारी व्ययों में मितव्ययिता, केन्द्रीकरण के दोषों से मुक्ति, विकास योजनाओं की सफलता में सहायक, भष्टाचार की कम सम्भावना, विभिन्नताओं का पोषक आदि ऐसे महत्वपूर्ण कारण हैं जो स्थानीय स्वशासन के महत्व को इंगित करते हैं। अब यह कहना आवश्यक हों गया है कि शासन एवं जनता को अपनी जिम्मेदारियों एवं जबावदारियों के सक्रियता से निभाने का प्रयास करें। अधिकारियों एवं आम जनता को योजनाओं के सफल क्रियान्वयन में सहयोग देना चाहिए, ताकि ग्रामीण विकास के लिए प्रशासन को सहयोग मिल सके। विकासात्मक कार्यों को करने के लिए प्रशासकों एवं विशेषज्ञों को स्वतंत्रता होने से वे अपने अनुभवों एवं कार्यकुशलता के आधार पर कार्य कर सकेगें। प्रशासन को सम्बन्धित समस्या के वास्तविक आकड़े व तथ्य प्रशासन को प्राप्त कराने में सम्बन्धित व्यक्ति को सहयोग प्रदान करना चाहिए। साथ ही विकास कार्यों का नियोजन, क्रियान्वयन एवं उसका

मूल्यांकन समय-समय पर किया जाना चाहिए, जिससें पिछड़े हुए क्षेत्रों का विकास तीव्र गति से हो सकेगा। इसके अतिरिक्त नागरिक घोषणा-पत्र के अनुसार कार्यों का निष्पादन आवश्यक है। अधिकारियों एवं कर्मचारियों को प्रस्तावित फाइलों की यथोचित कार्यवाही के साथ एक निश्चित अवधि के अंदर पूर्ण करना चाहिए। नगर से जुड़ी विभिन्न समस्याओं के समुचित समाधान के लिए वैसे तो प्रत्येक हितभागी की अपनी-अपनी जिम्मेदारियां हैं, परन्तु नागर समाज संगठन के अन्तर्गत ही गैर-सरकारी संस्थाओं की भूमिका बहुत अहम व सुस्पष्ट है। पूर्व से ही स्वयंसेवी संगठन ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक विकास हेतु प्रयासरत रहे हैं, परन्तु पिछले दो दशकों से नगरीय विकास के मुद्दों पर भी कुछ संस्थाएं कार्य कर रही हैं। शहरी विकास प्रक्रिया को आगे बढ़ाना नगर निकाय व विभागों की संयुक्त जिम्मेदारी है, लेकिन नगर निकाय व विभागों के बीच कार्यों व जिम्मेदारियों का स्पष्ट बॅटवारा होना चाहिए। नगर विकास जैसे मुद्दों पर सरकार, निकाय, गैर-सरकारी संगठन एवं नागरिकों के परस्पर समन्वयन व सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता है। आधुनिक युग को नागरिकों की उभरती हुई जन आकांक्षाओं का युग माना जाता है। वर्तमान समय में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के सहज परिणाम स्वरुप शासन सम्बन्धी कार्यों का अत्यधिक विस्तार हुआ है, जिसे प्रशासन सकारात्मक रूप दे सकता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. नगरपालिकाओं की बाध्यकारी स्थापना के सम्बन्ध में संविधान संशोधन कौन सा है?
2. बड़े नगर क्षेत्र के लिए कौन सा नगरीय निकाय स्थापित किया गया है?
3. नगरपालिका का कार्यकाल कितना निर्धारित किया गया है?
4. दिल्ली में नगर निगम की स्थापना कब हुई?
5. नगर निगम का सर्वोच्च निर्वाचित पदाधिकारी कौन होता है?

11.6 सारांश

भारत में स्वस्थ लोकतान्त्रिक परम्पराओं की स्थापित करने के लिए स्थानीय शासन व्यवस्था ठोस आधार प्रदान करती है। इसके माध्यम से शासन सत्ता जनता के हाथों में चली जाती है। इस व्यवस्था द्वारा देश की ग्रामीण एवं शहरी जनता में लोकतान्त्रिक संगठनों के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। अपनी तमाम वित्तीय, प्रशासनिक सीमाओं और राजनीतिक दबावों के बावजूद स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं ने भारतीय लोकतंत्र को तीसरे पायदान अर्थात जनता के पास ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। नगर निगम, नगर पालिका एवं नगर पंचायत नगरीय निकाय व्यवस्था की आधारशिलाएं हैं। नगरों में प्रशासकीय क्रियान्वयन अभिकरणों से सम्बन्धित

तंत्रों के कारण दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। योग्य प्रशासकों एवम् विशेषज्ञों के अभाव में नियोजन कार्य असफल हो जाता है। आधुनिक युग को नागरिकों की उभरती हुई जन आकांक्षाओं का युग माना जाता है। वर्तमान समय में लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा के सहज परिणाम स्वरुप शासन सम्बन्धी कार्यों का अत्यधिक विस्तार हुआ है, जिसे प्रशासन सकारात्मक रूप दे सकता है। नगरीय प्रशासन अपनी विविध संरचनाओं में नया एवं सकारात्मक परिवर्तन लाकर अपनी तमाम वित्तीय, प्रशासनिक सीमाओं और राजनीतिक दबावों के बावजूद भारतीय लोकतंत्र को तीसरे पायदान अर्थात जनता के पास ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकती है।

11.7 शब्दावली

संविधान- राजनीतिक व्यवस्था को नियमित एवं नियंत्रित करनेवाला देश का सर्वोच्च कानून, संविधान संशोधन- संविधान के उपबंधों में आंशिक या पूर्ण परिवर्तन, ढ़ाँचा- संरचना, अधिनियम- कानून, निकाय- संगठन ,व्यवस्था अध्यादेश- विधान-मण्डल की कार्यवाही न होने की स्थिति में राजनीतिक कार्यपालिका द्वारा लाया गया कानून

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 74वां संशोधन अधिनियम, 1992, **2.** नगर निगम, **3.** 05 वर्ष, **4.** 1958, **5.** महापौर (मेयर)

11.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हरिश्चंद्र शर्मा , 2005, भारत में स्थानीय प्रशासन, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
2. चन्द्रप्रकाश बर्थवाल, 1997, स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ।
3. एस0आर0 माहेश्वरी, 2005, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
4. बामेश्वर सिंह, 2000, भारत में स्थानीय स्वशासन, राधा प्रकाशन जयपुर।

11.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एल0सी0 जैन, 2005, डिसेंट्रलाइजेसन एंड लोकल गर्वनेंस, ऑरिएण्ट लौंगमैन, नई दिल्ली।
2. अरुण कुमार शर्मा, 1995, भारत में स्थानीय शासन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली।

11.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में नगरीय स्थानीय प्रशासन एवं उसके ढ़ाँचे का वर्णन कीजिए।
2. भारत में नगर पंचायत के प्रशासनिक ढ़ाँचे की समीक्षा कीजिए।

3. नगरपालिका के प्रशासनिक ढ़ाँचे का विस्तार से वर्णन कीजिए।
4. नगर निगम क्या है? इसके प्रशासनिक ढ़ाँचे का वर्णन कीजिए।
5. नगरीय स्थानीय प्रशासन में सरकारी एवं गैर सरकारी अधिकारियों के सम्बन्धों का विश्लेषण कीजिए।
6. नगरीय स्थानीय प्रशासन की चुनौतियाँ एवं उसके समाधान का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई- 12 भारत में स्थानीय शासन की प्रगति का मूल्यांकन

इकाई की संरचना

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 भारत में स्थानीय स्वशासन- एक परिचय

12.2.1 पंचायती राज

12.2.1 शहरी स्वशासन

12.3 पंचायती राज एवं शहरी निकायों का प्रभाव

12.4 स्थानीय स्वशासन की चुनौतियाँ

12.5 स्थानीय स्वशासन एवं जन आकांक्षाएं

12.6 स्थानीय स्वशासन प्रणाली को अधिक प्रभावी एवं व्यावहारिक बनाने हेतु सुझाव

12.7 सारांश

12.8 शब्दावली

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

विश्व की सबसे बड़ी लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था भारत की प्रमुख विशेषता है। लोकतन्त्र मूलतः विकेन्द्रीकरण पर आधारित शासन व्यवस्था होती है। स्थानीय स्वशासन संस्थाएं लोकतंत्र की रीढ़ हैं। लोकतंत्र की वास्तविक सफलता तब है जब शासन के सभी स्तरों पर जनता की भागीदारी सुनिश्चित हो। भारत की तरह बड़ी आबादी एवं क्षेत्रीय विभिन्नता वाले विशाल देश में लोकतंत्र को सार्थक एवं कल्याणोन्मुख बनाने के लिए विकेन्द्रीकरण अन्तर्निहित अनिवार्यता है। उच्च स्तर से निम्न स्तर की ओर शक्ति का प्रवाह होना लोकतंत्र में आवश्यक एवं वांछित प्रक्रिया है। स्थानीय स्वायत्त शासन के चार मूल कारण हैं- पहले, स्थानीय स्वायत्त शासन में स्थानीय लोगों की समस्या का समाधान किया जाता है। इसमें स्थानीय संस्थाओं की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। दूसरे, स्थानीय

संस्थाएं लोगों की राजनीतिक समझ को परिपक्व बनाती हैं अर्थात लोग स्वयं अपने प्रतिनिधि को चुनते हैं और अपने आस-पास हो रही घटनाओं पर ध्यान देते हैं। तीसरे, सत्ता का विकेंद्रीकरण तभी सम्भव है जब स्थानीय संस्थाएं निचले स्तर तक विद्यमान हों, क्योंकि केन्द्र या राज्य सरकार के लिए सुदूर गांव की समस्या का तत्काल हल निकालना सम्भव नहीं होता है। अतः स्थानीय समस्या का निदान वहीं के लोगों द्वारा सुगमतापूर्वक किया जा सकता है। चौथे एवं सबसे महत्वपूर्ण तथ्य, यदि स्थानीय संस्थाएं लोकतांत्रिक व्यवस्था पर आधारित हैं तो स्थानीय लोगों में राजनीतिक चेतना तथा समझ का विकास देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था के स्वरूप को मजबूत बनाता है।

लोकतंत्र का सैद्धान्तिक अर्थ प्रायः जनता के शासन से लगाया जाता है लेकिन इस सैद्धांतिक अर्थ को व्यावहारिक स्वरुप प्रदान करने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि लोकतान्त्रिक शासन प्रक्रिया में जनता की अधिकतम भागीदारी सुनिश्चित की जाए और जनता को ज्यादा से ज्यादा अधिकार प्रदान किया जाए। लोकतान्त्रिक शासन के विधि निर्माण प्रक्रिया से जनता को जोड़ने और जनता के सबसे नजदीक की संस्थाओं तक, लोकतान्त्रिक शक्तिओं का विस्तार करने के लिए यह आवश्यक है कि शासन का विकेंद्रीकरण इस प्रकार से किया जाये कि लोकतान्त्रिक शक्ति अंतिम जन तक पहुँचें। भारत के सम्पूर्ण स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने सत्ता के एकाधिकारवादी प्रवृति की आलोचना करते हुए शासन के लोकतांत्रीकरण और लोकतान्त्रिक विकेंद्रीकरण की बात की थी। गाँधी जी भारत की विविधता और विशालता को देखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि इस देश में लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है कि इसका स्वरुप बहुलवादी और समावेशी हो। इसीलिए उन्होंने हमेशा भारत में शासन के तीसरे स्तर अर्थात स्थानीय स्वशासन की दिशा में पंचायती राज संस्थाओं के स्थापना की बात की। भारत में 'शहरी स्थानीय शासन' का अर्थ शहरी क्षेत्र के लोगों द्वारा चुने प्रतिनिधियों से बनी सरकार से है। शहरी स्थानीय शासन का अधिकार क्षेत्र उन निर्दिष्ट शहरी क्षेत्रों तक सीमित है, जिसे राज्य सरकार द्वारा इस उद्देश्य के लिए निर्धारित किया गया है। भारत में 08 प्रकार के शहरी स्थानीय शासन हैं- नगरपालिका परिषद्, नगरपालिका, अधिसूचित क्षेत्र समिति, शहरी क्षेत्र समिति, छावनी बोर्ड, शहरी क्षेत्र समिति, पत्तन न्यास और विशेष उद्देश्य के लिए गठित एजेंसी। भारत में स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को 73वें तथा 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- स्थानीय स्वशासन की भारत में प्रगति के बारे में जान सकेंगे।
- आप पंचायती राज एवं शहरी निकायों का प्रभाव का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- आपको स्थानीय स्वशासन की चुनौतियाँ तथा जन आकांक्षाएं का भी आपको ज्ञान प्राप्त होगा।

12.2 भारत में स्थानीय स्वशासन- एक परिचय

गाँवों एवं शहरों के विकास के बिना देश के विकास की कल्पना अधूरी है। हमारे देश के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में पंचायतों एवं शहरी स्थानीय निकायों की महत्वपूर्ण भूमिका है। देश के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरु ने कहा था कि "यदि हमारी स्वाधीनता को जनता की आवाज की प्रतिध्वनि बनना है तो पंचायतो को जितनी अधिक शक्ति मिले, जनता के लिए उतना ही लाभदायक है।" इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए देश में 73वें तथा 74वें संविधान संशोधन के माध्यम से मृतप्राय स्थानीय निकाय संस्थाओं को जीवन प्रदान किया गया तथा संवैधानिक दर्जा दिए जाने की वजह से इनका अस्तित्व भी सुरक्षित हो गया। वित्तीय रूप से सशक्त तथा स्वावलंबी होने पर ही स्थानीय निकायों का विकास में सशक्त एवं प्रभावी योगदान सुनिश्चित करना सम्भव है। जनसहभागी लोकतंत्र के सशक्तिकरण की दिशा में यह कारगर प्रयास है। लोकतंत्र को मजबूती प्रदान करने की दृष्टि से ये 'स्वशासन की इकाईयां' राजनीतिक एवं आर्थिक प्रजातंत्र को धरातल पर लाती हैं।

2011 की जनगणना के अनुसार भारत की 68.84 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती है। इसलिए ग्रामीण स्तर पर स्वशासन का विशेष महत्व है। लोकतंत्र की वास्तविक सफलता तब है जब शासन के सभी स्तरों पर जनता की भागीदारी सुनिश्चित हो। भारत में अंग्रेजी उपनिवेशवाद के समय से ही स्थानीय शासन के महत्व को समझा जाने लगा था। प्रशासन की इकाई जिला स्थापित की गई थी एवं इसकी प्रशासन व्यवस्था जिलाधिकारी के अधीन थी। वर्ष 1882 में लार्ड रिपन के शासन के कार्यकाल में स्थानीय स्तर पर प्रशासन में लोगों को सम्मिलित करने के कुछ प्रयास किए गए एवं जिला बोर्डों की स्थापना की गई। राष्ट्रीय आंदोलन द्वारा महत्व दिए जाने एवं ब्रिटिश शासन द्वारा लोगों को अपने प्रशासन में सम्मिलित करने के लिए 1930 एवं 1940 में अनेक प्रान्तों में पंचायती राज सम्बन्धी कानून बनाए गए। यहाँ ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि संविधान के प्रथम प्रारूप में पंचायती राज व्यवस्था

का कोई उल्लेख नहीं था। महात्मा गाँधी के दबाव के फलस्वरूप इसे संविधान के राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के अनुच्छेद- 40 में स्थान दिया गया।

ब्रिटिश शासन के समय से ही पंचायतें स्थानीय शासन के रूप में कार्य करती रही हैं। परन्तु यह कार्य सरकारी नियंत्रण में होता था। ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायतों और शहरों में नगरपालिकाओं द्वारा स्थानीय स्वशासन का कार्य किया जाता था। स्वतंत्र भारत में इस पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया और भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 40 ने इसकी पुष्टि इस प्रकार से की है- राज्य, ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठाएगा और उनकी ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो। परन्तु इस प्रयास में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के लोकतांत्रिक स्वरूप पर ध्यान नहीं दिया गया। इन कमियों को राजीव गांधी के प्रधानमंत्रित्व काल में उजागर किया गया और पुनः इनके संवैधानिक समाधान के लिए प्रयास किया गया।

भारतीय संसद द्वारा पंचायतों तथा नगरपालिकाओं के लिए ऐतिहासिक कदम उठाते हुए भारतीय संविधान में 73वां तथा 74वां संशोधन 1992 में किया गया। संविधान का 73वां संशोधन अधिनियम 25 अप्रैल, 1993 से तथा 74वां संशोधन अधिनियम 01 जून, 1993 से लागू हो गया है। 73वें तथा 74वें संविधान संशोधन ने पंचायती राज तथा नगर पालिकाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया है।

12.2.1 पंचायती राज

भारत गांवों का देश है। गांवों की उन्नति और प्रगति पर ही भारत की उन्नति एवं प्रगति निर्भर करती है। महात्मा गांधी के अनुसार, यदि गांव नष्ट होते हैं तो भारत नष्ट हो जाएगा। भारत के संविधान निर्माता भी इस तथ्य से भली-भाँति परिचित थे, अतः देश के विकास एवं उन्नति को ध्यान में रखते हुए ग्रामीण शासन व्यवस्था की ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया। संविधान के अनुच्छेद- 40 के अंतर्गत पंचायती राज व्यवस्था को राज्य के नीति-निदेशक तत्वों के अंतर्गत रखा गया है। वस्तुतः भारतीय लोकतंत्र इस आधारभूत अवधारणा पर आधारित है कि शासन के प्रत्येक स्तर पर जनता अधिक से अधिक शासन सम्बन्धी कार्यों में हाथ बटाऐं तथा स्वयं पर राज्य करने का उत्तरदायित्व स्वयं वहन करें। पंचायतें भारत के राष्ट्रीय जीवन की रीढ़ हैं। देश के राजनीतिक भविष्य एवं भावी राजनीतिक चाल का निर्धारण संघीय व्यवस्था में बैठे बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ की अपेक्षा, विभिन्न राज्यों के ग्रामीण अंचलों में विद्यमान पंचायती राज संस्थाएं ही करती हैं। पंचायती राज प्रणाली भारतीय शासन प्रणाली का एक अपरिहार्य हिस्सा है। पंचायती राज की शुरूआत से भारतीय राजनीति का व्याकरण बदलने लगा है। शासन

प्रक्रिया धीरे-धीरे सरकारों के एकाधिकार से निकल रही है। सबसे निचले स्तर पर दलितों, महिलाओं और गरीबों के सत्ता में आने से शासन प्रक्रिया में अब बराबरी का स्तर आ गया है। भारत की विविधता और कार्य की व्यापकता के चलते, लोकतंत्र का विकेन्द्रीकरण एक स्वागत योग्य कदम है। इसने देश में एक मूल क्रांति का सूत्रपात किया है। संविधान के 73वें और 74वें संशोधनों से इसे संवैधानिक दर्जा मिला और ऐतिहासिक रूप से समाज के वंचित और शासन प्रणाली से अलग-थलग पड़े वर्गों को शामिल करने का ढ़ाँचा उपलब्ध हुआ। 73वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 पंचायतों के सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम था। इसे संसद के दोनों सदनों से पारित होने के बाद 20 अप्रैल 1993 को भारत के राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई और 24 अप्रैल 1993 से यह सम्पूर्ण देश में प्रभावी हुआ। पंचायतों के सम्बन्ध में संविधान में नया भाग- IX शामिल किया गया और और ग्यारहवीं अनुसूची में उनके अधिकारों का उल्लेख किया गया।

सरकार ने देशभर की पंचायतों में आधी सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित करने का फैसला किया है। इससे शासकीय परिदृश्य में क्रमिक परिवर्तन आएगा। पंचायतों का अस्तित्व सदियों से चला आया है। पंचायतें गांवों के सामान्य मामलों को देखने के अलावा कुछ शासकीय और न्यायिक शक्तियों का उपयोग करती रही हैं। ब्रिटिश शासन के दौरान और उससे पहले भी, पंचायतें प्रशासन की धुरी, सामाजिक जीवन का केन्द्र, और सर्वोपरि सामाजिक एकता का केन्द्र बिन्दु रही हैं। भारत के प्रांतीय गवर्नर-जनरल सर चार्ल्स मेटकाफ ने पंचायतों का वर्णन करते हुए इन्हें छोटे-छोटे गणराज्य तक कह डाला था। लेकिन सामंतवादी सरकार के राजस्व वसूली के निर्मम तरीकों ने इस संस्थाओं का विनाश कर दिया। गांधीजी पंचायतों के बड़े हिमायती थे। उन्होंने पंचायतों को ग्राम गणराज्य की उपाधि दी। उनका तर्क था कि सच्चा स्वराज गांवों को सशक्त बनाने से ही सम्भव है, गांधी जी का स्वप्न था, ''प्रत्येक गांव सर्वशक्ति संपन्न गणराज्य होगा। यहाँ के जीवन का स्वरूप पिरामिड जैसा नहीं होगा जहाँ शिखर का बोझ सबसे निचले स्तर पर होता है बल्कि यह किसी सागर की गोलाई की तरह होगा जिसके केन्द्र में होगा प्रत्येक व्यक्ति, जो सदा गांवों की भलाई के लिए सर्वस्व न्योछावर करने की तत्पर होगा।''

12.2.2 शहरी स्वशासन

74वें संविधान संशोधन अधिनियम ने भारतीय संविधान में भाग- 9 ए जोड़ दिया। इस भाग का शीर्षक नगरपालिकाएं है तथा जिसके प्रावधानों का उल्लेख अनुच्छेद- 243- पी से 243- जेड- जी में है। इसके अतिरिक्त संविधान में 12वीं अनुसूची भी जोड़नी पड़ी। इस अनुसूची में नगरपालिकाओं की 18 कार्यमदों का उल्लेख है जो अनुच्छेद- 243 डब्ल्यू से सम्बन्धित है, इसी अधिनियम ने नगरपालिकाओं को संवैधानिक दर्जा दिया।

नगरपालिकाएं संविधान के अधिकार क्षेत्र में आ गई, अर्थात इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार राज्य सरकारें नई नगरपालिका प्रणाली अपनाने को बाध्य हो गई। इस अधिनियम का उद्देश्य शहरी शासन को पुनर्जीवन और मजबूती प्रदान करना है ताकि वे स्थानीय शासन की इकाई के रूप में अपना कार्य प्रभावी रूप से कर सकें। इस अधिनियम के तहत प्रत्येक राज्य में तीन प्रकार की नगरपालिकाओं के गठन का प्रावधान है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के बीच के क्षेत्र से सम्बन्धित नगरपालिका को नगर पंचायत के नाम से जानते हैं, हालाँकि इसका नाम राज्यों के अनुसार बदलता रहता है। छोटे और माध्यम शहरों के लिए नगर परिषद की गठन की गई है, परन्तु ऐसे नगर क्षेत्रों या उसके किसी भाग के लिए नगरपालिका का गठन नहीं किया जायेगा, जिसे राज्यपाल उस क्षेत्र के आकार को और उस क्षेत्र में स्थापित किसी औद्योगिक संस्थान के द्वारा उपलब्ध की गई या प्रस्तावित नगरपालिका सेवाओं को या अन्य किसी बात को ध्यान में रखते हुए उचित समझता है। लोक अधिसूचना द्वारा ऐसे क्षेत्र को एक औद्योगिक शहर के रूप में विनिर्दिष्ट कर सकता है। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत संक्रमणशील, और वृहत्तर नगरीय क्षेत्र से अर्थ ऐसे क्षेत्र से है जिसे किसी राज्य की सरकार उस क्षेत्र के जनसंख्या की सघनता, स्थानीय प्रशासन के लिए प्राप्त राजस्व कृषि इतर क्रियाकलापों में नियोजन की प्रतिशतता, आर्थिक महत्व या ऐसी ही अन्य बातों को जिसे वह ठीक समझे ध्यान में रखते हुए लोक अधिसूचना द्वारा इस भाग के प्रयोजन के लिए विनिर्दिष्ट करें। वहीं बड़े शहरी क्षेत्रों के लिए नगर निगम की व्यवस्था की गई है।

12.3 पंचायती राज एवं शहरी निकायों का प्रभाव

21वीं शताब्दी में राष्ट्रों के मध्य तीव्रतर विकास की होड़ लगी है। विकास के इस दौड़ में कुछ राष्ट्रीय राज्यों ने प्रगति की है तो कुछ इस दौड़ में अन्य की तुलना में पिछड़ते जा रहे हैं। किसी भी राष्ट्र के विकास का मूल दायित्व सरकार एवं निजी संस्थाओं के सम्मिलित प्रयास से हीं सम्भव है। प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। लोकतंत्र की सर्वश्रेष्ठ पाठशाला उसकी सफलता की सबसे अधिक गारंटी स्थानीय स्वायत्त शासन का संचालन है। यदि लोकतंत्र का अर्थ जनता की समस्याएं एवं उसके समाधान की प्रक्रिया में जनता की पूर्ण तथा प्रत्यक्ष भागीदारी है तो प्रत्यक्ष, स्पष्ट एवं विशिष्ट लोकतंत्र का प्रमाण उतना सटीक अन्यत्र देखने को नहीं मिलेगा, जितना स्थानीय स्तर पर।

स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को ग्रामीण एवं नगरीय समुदाय के आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपी गयी है। स्थानीय शासन संस्थाओं का स्वरुप एक उद्देशीय न होकर सामान्य उद्देशीय होता है। यह बहुआयामी संस्थान है जो कई प्रकार के कार्यों को करता है। यथा- स्वास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, सफाई,

जल आपूर्ति आदि। इन जिम्मेदारियों को पूर्ण करने के लिए इन्हें विविध कार्य आबंटित किये गए हैं। पंचायती राज संस्थाओं को 29 विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। ये निम्नानुसार हैं-

1. कृषि, जिसके अंतर्गत कृषि विस्तार भी आता है।
2. भूमि विकास, भूमि सुधार का कार्यान्वयन, चकबंदी और भूमि सुधार।
3. लघु सिंचाई, जल प्रबन्ध और जलविभाजक क्षेत्र का विकास।
4. पशुपालन, डेयरी उद्योग और कुक्कुट पालन।
5. मत्स्य उद्योग।
6. सामाजिक वानिकी और फार्म वानिकी।
7. लघु वन उपज।
8. लघु उद्योग, जिनके अंतर्गत खाद्य प्रसंस्करण उद्योग भी हैं।
9. खादी, ग्रामोद्योग और कुटीर उद्योग।
10. ग्रामीण आवासन।
11. पेय जल।
12. ईंधन और चारा।
13. सड़कें, पुलिया, पुल, फेरी, जलमार्ग और अन्य संचार साधन।
14. ग्रामीण विद्युतीकरण, जिसके अंतर्गत विद्युत का वितरण है।
15. अपारंपरिक उर्जा स्रोत।
16. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम।
17. शिक्षा, जिसके अंतर्गत प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय भी हैं।
18. तकनीकी शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा।
19. प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा।
20. पुस्तकालय।
21. सांस्कृतिक क्रियाकलाप।
22. बाजार और मेले।
23. स्वास्थ्य और स्वच्छता जिनके अंतर्गत अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और औषधालय भी हैं।

24. परिवार कल्याण।

25. महिला और बाल विकास।

26. समाज कल्याण जिसके अंतर्गत विकलांगों और मानसिक रूप से मंद व्यक्तियों का कल्याण भी है।

27. दुर्बल वर्गों और विशिष्टतया अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का कल्याण।

28. सार्वजानिक वितरण प्रणाली।

29. सामुदायिक आस्तियों का अनुरक्षण।

भारत में 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन विधेयक के लागू हो जाने के बाद प्रमुख राज्यों में 5-6 बार या अधिक स्थानीय निकायों के चुनाव संपन्न हो चुके हैं। ग्रामीण स्थानीय निकाय के चुनाओं 30 लाख नए जन प्रतिनिधि चुने जा चुके है जिनमे लगभग 10 लाख महिलाएं शामिल हैं। इतनी सारी महिलाओं का अपनी गतिविधियों को चूल्हे-चौके तक सीमित न रखकर गाँव से लेकर जिले तक की विकास प्रशासन में भागीदारी एक सुखद आश्चर्य से कम नहीं है। बलवंतराय मेहता समिति से लेकर 73वें संविधान संशोधन तक विभिन्न समितियों के माध्यम से इन पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं की सहभागिता के बारे में कई उतार-चढ़ाव देखने को मिलते हैं। लगभग छह दशक पूर्व स्थापित पंचायती राज व्यवस्था डगमगाने लगी तो इसी संशोधन ने उसे पुनः सबलता प्रदान की। 73वें संशोधन से लेकर 2017 तक महिलाओं की स्थिति का अध्ययन करने में पाया गया कि पंचायती राज में चुनकर आई महिलायें में बदलाव देखा गया, जो इस प्रकार है-

1. आरक्षण के कारण महिलाओं की विकास प्रक्रिया में हस्तक्षेप में वृद्धि हुई है। उन्होंने अपने अधिकारों व अवसरों का लाभ उठाया है ।
2. शिक्षा के क्षेत्र में रुचि अधिक हुई, ताकि राजनीतिक सहभाग में सक्रिय बन सके।
3. सामाजिक व आर्थिक सुधार व बदलाव आये हैं।
4. स्वयं के कार्य में आत्मनिर्भरता में विकास हुआ है। पिछड़े-वर्ग की महिलाओं को भी इस आरक्षण के कारण राजनीतिक क्षेत्रों में कदम रखने का अवसर प्राप्त हुआ है।

पंचायती राज व्यवस्था से महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्रों में कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ है। महिलाओं में एक नयी जागृति, अधिकारों के प्रति जागरूकता, शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने का साहस आया है। परन्तु महिलायें आरक्षित स्थानों पर ही चुनाव मैदान में आती हैं। सामान्य वर्ग की सीटें पुरुषों के लिए ही आरक्षित मान लिया जाता है। निर्वाचित महिलाओं की भूमिका व भविष्य उनकी सामाजिक व आर्थिक

पृष्ठभूमि से प्रभावित है। महिलाओं की पंचायत में बढ़ती इस भागीदारी को पहचानते हुए पंचायती राज संस्थाओं की निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की भागीदारी, प्रतिनिधित्व तथा कार्य निष्पादन को और बढ़ाने के लिए पंचायती राज मंत्रालय पंचायत महिला एवं युवा शक्ति अभियान को वर्ष 2007-08 से कार्यान्वित कर रहा है। महिलायें नीति-निर्माण से लेकर क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन में सहभागिता कर सकती हैं, जिससे एक सशक्त समाज व देश के निर्माण में सहयोग प्राप्त होगा। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति ने भी अपना प्रतिनिधित्व अच्छी-खासी दर्शायी है, साथ ही समाज के गरीब तबके को भी इन संस्थाओं में समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ है। इन प्रतिनिधित्व के सारे आयामों ने स्थानीय निकायों को एक नयी दिशा दी है।

लोकतंत्र को मजबूती प्रदान करने की दृष्टि से पंचायती राज संस्थाओं को भारतीय संविधान में स्वशासन की इकाई की अवधारणा का उल्लेख एक सही कदम है, किन्तु ध्यान देने की बात है कि यह इकाई राजनीतिक के साथ-साथ आर्थिक इकाई भी है। इस सन्दर्भ में ग्राम सभा को एक कृषि औद्योगिक समुदाय की संज्ञा दी जा सकती है। जी0वी0के0 राव समिति की रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है कि विकास कार्यों में गांव के लोगों का स्वैच्छिक सहयोग स्वावलम्बन की दिशा में पहला कदम होगा। आज भारत के अधिकतर राज्यों में त्रिस्तरीय पंचायती व्यवस्था लागू है। इस व्यवस्था में स्थानीय स्वशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम पंचायत होती है। संविधान के 73वें व 74वें संशोधन के अनुसार ये संस्थायें मोटे तौर पर निम्न विषयों पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगी- कृषि विकास, जल/पेयजल, ग्रामीण आवास, सड़क शिक्षा तथा स्वास्थ्य।

73 वें तथा 74 वें संविधान संशोधन को लागू हुए दो दशक से ज्यादा समय व्यतीत हो गया है। इसमे कोई शक नहीं है कि इन संशोधनों ने स्थानीय स्वशासन को नया जीवन प्रदान करने के साथ-साथ इनको निश्चितता एवं मजबूती प्रदान की है। इन संशोधनों से पूर्व इनकी कार्यक्षमता पूरी तरह से राज्य पर ही निर्भर थी। राज्यों में चुनाव के दौरान 'जनता को सीधी सत्ता' देने की बात अवश्य की जाती थी, परन्तु स्थानीय निकाय को अधिकार देने की कौन कहे? इनके चुनाव भी समय पर सम्पन्न नहीं हो पाते थे। लेकिन 73वें एवं 74वें संशोधन ने स्थानीय निकाय का कार्यकाल सुनिश्चित कर वित्तीय आबंटन हेतु राज्य वित्त आयोग तथा चुनाव हेतु राज्य चुनाव आयोग की स्थायी व्यवस्था की। इसके अतिरिक्त इन संस्थाओं में महिलाओं और समाज के कमजोर वर्गों के समूह जैसे- अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को आरक्षण के माध्यम से जगह दिया ताकि उनकी भागीदारी स्थानीय स्वशासन में सुनिश्चित हो सके।

राज्यों के पंचायत अधिनियमों में ऐसा प्रावधान है कि ग्राम सभा की इस जिम्मेदारी को निभाना है कि ग्रामीण विकास के किसी कार्यक्रम में श्रमदान हेतु लोगों को प्रेरित किया जाए। निःसंदेह इसके लिए पंचायती राज संस्थाओं के स्तर पर एक गतिशील नेतृत्व की आवश्यकता होगी। सभी राज्यों के पंचायती राज संस्थाओं की कार्यकारिणी में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान है। कुछ राज्यों (बिहार, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखण्ड) में महिलाओं के लिए पचास प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान लागू है।

संविधान संशोधन होने से सही अर्थों में दूसरे गणराज्य का मार्ग प्रशस्त हुआ, क्योंकि इसने केवल पंचायतों को प्रभावशाली संस्था बनाने का ही प्रयास नहीं किया बल्कि इन्हें शासन का तीसरा चरण भी बनाया। संशोधन का सबसे क्रांतिकारी बदलाव यह है कि इसमें महिलाओं, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया है।

पंचायतों की नई पीढ़ी को सवैधानिक अधिकार प्राप्त हैं और यह सबसे निचले स्तर पर शासन में आमूलचूल परिवर्तन लाना चाहती है फिर भी अनुसूचित जाति और अन्य वंचित वर्गों के लिए सीटों के आरक्षण से राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक किस्म' के क्रांतिकारी बदलावों के लिए द्वारा खुले हैं। पंचायतों में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और महिलाओं को प्रभावशाली भूमिका सौंपकर पंचायतों की नई पीढ़ी ने उनके प्रतिनिधित्व और भागीदारी की सुविधा प्रदान की है। इस तरह वे लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया को और आगे ले गए हैं। हमारे जैसे जातिवादी, अर्द्ध सामन्ती और वर्गीकृत समाज में आरक्षण के प्रभाव के बारे में किसी ने भी पंचायती की नई पीढ़ी के लाभार्थियों के लिए किसी चमत्कार की उम्मीद नहीं की थीं।

स्थानीय स्वशासन व्यवस्था ने देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। देश को आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर किया है तथा भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में की उपस्थिति ने ग्रामीण एवं शहरी जनता को जागरुकता प्रदान की है। स्थानीय स्वशासन व्यवस्था की उपब्धियां इस प्रकार हैं- जन सहभागिता, अधिकारों के प्रति चेतना, आर्थिक विकास, महिलाओं की सहभागिता, राजनीतिक जागरूकता, लोकतंत्र का विकास तथा कार्य संपादन में शीघ्रता।

पंचायत सशक्तिकरण एवं जवाबदेही प्रोत्साहन योजना (पीईएआईएस) वर्ष 2005-06 से पंचायती राज मंत्रालय द्वारा लागू एवं कार्यान्वित की गई है। इसके तहत् राज्य सरकारों को अनुच्छेद- 243 (जी) के अंतर्गत उसकी 11वीं अनुसूची के साथ पठित संवैधानिक औपचारिकता को पूरा करने के लिए पंचायतों के कार्य, कोष एवं पदाधिकारी विकसित करने के लिए राज्य सरकारों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। इस योजना का उद्देश्य पंचायती राज

संस्थाओं को पर्याप्त रूप से सशक्त करने के लिए राज्यों को प्रोत्साहित करना और पंचायतीराज संस्थाओं को जवाबदेही की ओर लाने की व्यवस्था करना है। इसके अतिरिक्त देश में ग्राम पंचायतों, मध्यवर्ती पंचायतों एवं जिला पंचायतों में शासन की गुणवत्ता सुधार के लिए केन्द्र सरकार ने सभी पंचायतों को ई-सक्षम करने के लिए, ई-पंचायत मिशन मोड परियोजना नामक एक परियोजना आरम्भ की है, जो उनके कार्यकरण को और अधिक कुशल एवं पारदर्शी बनाएगी। ई-पंचायत का उद्देश्य पंचायती राज संस्थाओं को आधुनिकता, दक्षता, उत्तरदायित्व का प्रतीक बनाना एवं सूचना व संचार प्रौद्योगिकी के प्रति वृहत् ग्रामीण आबादी को अभिप्रेरित करना है। इस परियोजना का नेतृत्व केन्द्र द्वारा और कार्यान्वयन राज्यों द्वारा किया जा रहा है। ई-पंचायत द्वारा पंचायतों के लिए राष्ट्रीय पंचायत निर्देशिका, पंचायतों की सामाजिक जनसांख्यिकीय प्रोफाइल, ऑनलाइन परिसंपत्तियों के पंचायतों की परिसंपत्ति निर्देशिका, पंचायत लेखांकन, योजना का ऑनलाइन कार्यान्वयन और निगरानी, शिकायत निवारण, सामाजिक अंकेक्षण, मांग प्रबन्ध न प्रशिक्षण जैसी सेवाएं प्रदान करना सम्भव हो पाया है।

12.4 स्थानीय स्वशासन की चुनौतियाँ

लार्ड ब्राइस ने कहा है कि "स्थानीय स्वशासन प्रजातंत्र के लिए प्रशिक्षण की आधारशिला है जिसके अभाव में प्रजातंत्र की सफलता की आशा नहीं की जा सकती।" जनतंत्र का आधार, राजनीतिक एवं नागरिक प्रशिक्षण, उदार दृष्टिकोण एवं नागरिक गुणों का विकास, प्रशासनिक कार्यकुशलता, केन्द्र एवं राज्य शासन के कार्यभार में कमी, सरकारी व्ययों में मितव्ययिता ,केन्द्रीकरण के दोषों से मुक्ति ,विकास योजनाओं की सफलता में सहायक, भष्टाचार की कम सम्भावना, विभिन्नताओं का पोषक आदि ऐसे महत्वपूर्ण कारण हैं जो स्थानीय स्वशासन के महत्व को इंगित करते हैं।

लोकतंत्र की सबसे निचली इकाई पंचायत है। स्थानीय शासन में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। पंचायत हमारी राष्ट्रीय एकता और अखण्डता, सुदृढ़ता और सुव्यवस्था तथा लोकतंत्र का रक्षा कवच है। किसी भी समुदाय, समाज व राष्ट्र की समृद्धि एवं उन्नति संस्थाओं की कार्यप्रणाली का प्रतिफल होता है। पंचायत सर्वमान्य संस्था के रूप में प्राचीनकाल से ही भारतीय जन-मानस में प्रतिष्ठित रही है। स्थानीय नगरीय संस्थाओं को संवैधानिक प्रस्थिति प्राप्त होने के बावजूद भी इन्हें अपने कार्यकलापों को सुचारू रूप से सम्पादित करने में विभिन्न समस्याओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

पंचायती राज एवं नगरीय निकायों की अनगिनत चुनौतियाँ हैं। इनकी कुछ चुनौतियाँ सार्वभौमिक होती हैं जो विविध समस्याओं की मूल होती है। यथा- वित्तीय संसाधनों की कमी, राज्य सरकार का अतिशय नियंत्रण,

स्वायत्तता का अभाव, राज्य सरकार पर अतिरिक्त निर्भरता, अप्रशिक्षित, निष्क्रिय एवं भ्रष्ट कर्मचारी वर्ग, अतिशय राजनीतिक हस्तक्षेप, भाई-भतीजावाद, भ्रष्ट, अशिक्षित एवं उदासीन जनता आदि-आदि। वस्तुस्थिति उम्मीदों से कहीं भिन्न है। पंचायतों के जिम्मे कृषि, लघु सिंचाई, पेयजल, निर्धनता उन्मूलन, शिक्षा स्वास्थ्य और सफाई जैसे काम हैं, लेकिन कार्यकारिणी और वित्त व्यवस्था सौंपे बिना पंचायतें भला कैसे प्रभावी हो सकती हैं?

स्थानीय स्वशासन में विकेंद्रीकरण के माध्यम से विकास की गति में वृद्धि होगी, परियोजनाएं शीघ्र पूरी होंगी और लोगों की विकास कार्यों में भाग लेने की चेतना में वृद्धि होगी, परन्तु इसके साथ ही कुछ संभावित त्रुटियां भी इस व्यवस्था के अंतर्गत निहित हैं। पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत जो लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया है, वह केन्द्र को कमजोर बना सकती है। जाति, धर्म, वर्ण और लिंग की उपेक्षा करके यह समाज के सभी वगों की समानता के आधार पर सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय दिलाने की प्रक्रिया में बाधा बन सकती है। पूर्व में हम यह अनुभव कर चुके हैं कि क्षेत्रीय राजनीतिज्ञ स्थानीय संगठनों के कार्यों में हस्तक्षेप करते हैं। वर्तमान परिस्थितियों में, इसे रोक पाना बहुत कठिन काम है। हमारे देश में मुद्रा व शक्ति का जो दुरुपयोग किया जा रहा है, उसे पंचायती राज की सफलता हेतु रोकना होगा। यह प्रक्रिया राज्य के अल्पसंख्यकों के संरक्षण में बांधा बन सकती है। यद्यपि, सभी राजनैतिक दल अल्पसंख्यकों का समर्थन प्राप्त करना चाहते हैं, तथापि कई ऐसे अन्य कारण हैं, जो उन्हें ऐसा करने से वंचित कर सकते हैं। हम देखते हैं कि प्रशासन तंत्र निम्न स्तर के लोगों को दबाए रखने की क्षमता रखता है। इन व्यवस्थाओं के तहत अधिकारियों और निर्वाचित प्रतिनिधियों के बीच सौहार्दपूर्ण वातावरण बना पाना बहुत मुश्किल काम होगा। दोनों के बीच कटु सम्बन्धों के कारण कई स्थानों पर विकेंद्रित संस्थाओं के निष्पादन पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।

स्थानीय संस्थाओं की सबसे कठिन समस्या वित्तीय अपर्याप्तता है। इसका कारण यह है कि इनके पास लोगों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त आर्थिक स्रोत नहीं हैं। स्थानीय वित्त की समस्या यह है कि नगरपालिका के पास अपने कार्य पूर्ण दक्षता से करने के लिए पर्याप्त साधन होने चाहिए। नगरपालिका को कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि पालिका कार्यों तथा स्रोतों को समकालिक होना चाहिए। यही कारण है कि स्थानीय वित्त जाँच समिति' को जो कार्य सौंपा गया था, उसमें यह विचार किया जाना था कि स्थानीय संस्थाओं को दिए गए कार्यों के लिए क्या वर्तमान स्रोत पर्याप्त हैं तथा उन्हें यह भी विचार करना था कि अगर ऐसा न हो तो इन्हें आय के और कौन से स्रोत दिए जाएँ। समिति ने कार्यों तथा स्रोतों के तारतम्य की महत्ता पर बल दिया इसकी रिपोर्ट के अनुसार, क्योंकि वित्त कार्यों से सम्बन्धित है, इसलिए आवश्यकता है कि

जब कार्य स्थानीय संस्थाओं को दिए जाएँ तो यह भी विचार कर लिया जाए कि इन कार्यों को करने के लिए इन संस्थाओं के पास पर्याप्त साधन है या नहीं? यदि संस्थाओं के पास अपने कार्य पूरे करने के लिए पर्याप्त साधन न हों तो उन्हें राज्य की सहायता पर निर्भर रहना होगा। वित्तीय सहायता के लिए राज्य सरकार पर अधिक निर्भरता स्थानीय संस्थाओं के महत्व तथा स्वतंत्रता को कम कर देगी। यदि स्थानीय संस्थाएं अपने कार्यक्षेत्र में स्वावलंबी होना चाहती हैं तो उनके पास अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए अपने पर्याप्त साधन होने चाहिए। हालाँकि 74वें संविधान संशोधन द्वारा इन संस्थाओं के लिए पृथक से वित्त आयोग का प्रावधान किया गया है लेकिन जरुरत इस बात की है कि इस संस्था को और ज्यादा वास्तविक अधिकार सौंपे जाएं।

इसके अतिरिक्त स्थानीय स्वायत्त संस्थाएं राजनीतिक दलों के शक्ति परीक्षण की प्रयोगशाला बन गयी हैं। स्थानीय संस्थाओं की सफलता बहुमत के बजाय आम सहमति और व्यापक समन्वय की भावना पर आधारित हैं, लेकिन राजनीतिक दलों द्वारा सहमति स्थापित करने के स्थान पर दलीय प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया जाता है जो भले ही तत्कालीन दलीय हितों की पूर्ति करे लेकिन वैचारिक दलीय प्रतिस्पर्धा के माध्यम से स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के द्वारा सामुदायिक विकास और सहयोग लाने की भावना धूमिल होती है। अतः स्थानीय स्वशासन और विकेन्द्रीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए दलीय प्रतिस्पर्धा के स्थान पर वैचारिक विविधिता में एकता और सामुदायिक सहयोग की भावना का विकास अत्यावश्यक है।

स्थानीय नगरीय संस्थाओं के विकास और प्रगति में स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधिओं और अधिकारियों के बीच उचित समन्वय का नहीं होना एक अन्य बड़ी समस्या है। इनके मध्य अहम् पर आधारित सत्ता का द्वन्द पाया जाता है। दोनों में से कोई भी पक्ष एक-दुसरे को अपने ऊपर हावी होने देना नहीं चाहते। जहाँ नौकरशाही अभी भी पुराने औपनिवेशिक ढर्रे पर आधारित शक्ति के ढ़ाँचे से अपने को बाहर नहीं निकाल पाई है और वह जनता के द्वारा चुने गये जनप्रतिनिधियों की भूमिका को न्यूनतम आंकती है तथा उसके साथ सहयोग करने के बजाय उसके राह में रोड़े अटकाती है, वहीं प्रतिनिधि अपने सत्ता के मद में जनप्रतिनिधियों के बाजिब सलाहों को भी नजर-अंदाज करते हैं। जिसके कारण नगरीय विकास की सम्भावना प्रभावित होती है। राजनैतिक तथा अन्य कारणों से पंचायती राज संस्थाओं के प्रतिस्थापन पर प्रतिबंध हेतु कड़े नियम बनाने होंगे। यदि राजनीतिक दल पंचायती राज व्यवस्था को अपनी गंदी राजनीति से दूर ही रखें, तो यह राष्ट्र के हित में होगा। जाति, धर्म और मुद्रा शक्ति पर आधारित वर्तमान ढ़ाँचे को उखाड़ने के लिए एक सामाजिक क्रांति का होना अति आवश्यक है। महात्मा गांधी के अनुसार, स्वतंत्रता और स्वायत्तता का मूल्य केवल राजनैतिक विकेंद्रीकरण से ही प्राप्त नहीं किया जा सकता, बल्कि आर्थिक मोर्चे पर

भी विकेन्द्रीकरण अनिवार्य है। तद्-नुसार, राजनैतिक तथा आर्थिक विकेन्द्रीकरण एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। इसके अतिरिक्त राजनैतिक कार्यकर्ताओं से उन्होंने सदैव सृजनात्मक कार्यों के माध्यम से लोकतंत्र की नींव तैयार करने की अपील की।

समाज कल्याण तथा आर्थिक विकास के उद्देश्य से गठित लोकतांत्रिक ढ़ाँचे से लोगों की कई प्रकार की आशाएं होती हैं। बढ़ती आशाएं प्रशासन में लोगों की भागीदारी के लिए यथार्थवादी एवं प्रभावशाली नीतियों की मांग करती हैं। राजनैतिक स्वतंत्रता तथा नीतिगत उद्-घोषणाओं से उठी चुनौतियों और आकांक्षाओं के लिए अंत:मन से किए जाने वाले प्रयासों की आवश्यकता है। लोक कार्यों का प्रबन्ध लोकतांत्रिक होना चाहिए। निम्न स्तर पर लोगों के प्रतिनिधियों से लेकर उच्च स्तर तक दायित्वों का विकेन्द्रीकरण व स्थानीय स्वायत्तता आवश्यक है। यहाँ द्रष्टव्य है कि भारत की संस्कृति, भाषा आदि की अनेकता इस कार्य को कुछ अधिक जटिल बना देती है।

पंचायती राज में ग्राम सभा की बैठकों में पुरुषों की तुलना में आम महिलाओं की भागीदारी बेहद कम होती है। यह असमानता महिला सशक्तीकरण की दृष्टि से एक गलत संदेश देती है। आज महिलाओं द्वारा गठित स्वयं सहायता समूहों का व्यापक स्तर पर विकास हुआ है। यह खेदजनक है कि अधिकतर ग्राम पंचायत क्षेत्रों में इनका कोई पंचायत भवन नहीं है, जहाँ इन संस्थाओं की बैठक हो सके। हर ग्राम पंचायत में कार्यालय और एक बड़े सभा कक्ष की आवश्यकता होगी। किन्तु इनके निर्माण हेतु कितनी भूमि की आवश्यकता होगी, यह स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं है।

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार स्थानीय स्वशासन निकाय अपने स्तर पर एक सरकार है और इस नाते वह देश की मौजूदा शासन प्रणाली का अभिन्न अंग है, इसलिए निर्दिष्ट कार्यों के निष्पादन के लिए इन निकायों को देश के मौजूदा प्रशासनिक ढ़ाँचे की प्रतिस्थापित करते हुए सामने आना चाहिए। इस आधार पर जब तक स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के लिए कोई स्वायत्त जगह निर्मित नहीं की जाती तब तक स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र में कोई खास सुधार कर पाना सम्भव नहीं होगा। जबकि स्थानीय स्तर पर जिला प्रशासन के साथ-साथ राज्य सरकार की कुछ संस्थापनाओं के प्रतिधारण के औचित्य पर कुछ सवाल उठ सकते हैं। उनके कार्यों एवं उत्तरदायित्व उन क्षेत्रों में आ सकते हैं जोकि स्थानीय निकायों के अधिकार क्षेत्र से बाहर हों। जहाँ तक इन्हें सौंपे गए कार्यों का प्रश्न है, स्थानीय शासन संस्थाओं को स्वायत्तता होनी चाहिए और इन्हें राज्य सरकार की नौकरशाही के नियंत्रण से पूरी तरह से मुक्त होना चाहिए।

इस प्रकार वित्तीय साधनों की कमी, जनप्रतिनिधियों को प्रदान की गयी निम्न सुविधाएँ और निम्न वेतनमान, निकम्मा कर्मचारी वर्ग, राज्य सरकार का अतिशय हस्तक्षेप, राजनीतिज्ञों का आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप,

व्यापक भ्रष्टाचार, आदि नगरीय प्रशासन की कतिपय समस्याएं हैं। फ्रेडरिक विलियम विल्सन, जो एक समय 'द पायनियर' के सम्पादक थे, के अनुसार " यह असम्भव है कि कोई व्यक्ति भारत की निर्वाचित नगरपालिकाओं, नगर निगमों तथा जिला परिषदों की दशा तथा स्थिति का सर्वेक्षण करे और उसके परिणामों से संतुष्ट हो जाए। इस समय भारत में नगरीय जीवन का जो रूप दृष्टिगत हो रहा है वह ऐसा नहीं है, जिसपर भारतीय देशभक्त गर्व कर सकें।"

12.5 स्थानीय स्वशासन एवं जन आकांक्षाएं

विकेन्द्रीकरण का अर्थ है- विकास हेतु नियोजन, क्रियान्वयन एवं निगरानी में स्थानीय लोगों की विभिन्न स्तरों पर भागीदारी का सुनिश्चत होना। स्थानीय समुदाय को अधिक से अधिक अधिकार एवं संसाधनों से युक्त करना ही वास्तविक विकेन्द्रीकरण है। साधारणतया कहें तो विकेन्द्रीकरण वह व्यवस्था है जिसमे सत्ता जनता के हाथ में हो और सरकार लोगों के विकास के लिए कार्य करें। भारत में स्वस्थ लोकतान्त्रिक परम्पराओं की स्थापित करने के लिए पंचायत व्यवस्था ठोस आधार प्रदान करती है। इसके माध्यम से शासन सत्ता जनता के हाथों में चली जाती है। इस व्यवस्था द्वारा देश की ग्रामीण जनता में लोकतान्त्रिक संगठनों के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। पंचायतों के कार्यकर्ता एवं पदाधिकारी स्थानीय समाज एवं राजनीतिक व्यवस्था के मध्य की कड़ी है। इन स्थानीय पदाधिकारियों के बिना ऊपर से प्रारम्भ हुए राष्ट्र-निर्माण के क्रिया-कलापों का चलना दुष्कर हो जाता है। पंचायती राज संस्थाएं विधायकों एवं मंत्रियों को राजनीति का प्राथमिक अनुभव एवं प्रशिक्षण प्रदान कर देश का भावी नेतृत्व तैयार करती हैं। इससे राजनीतिज्ञ ग्रामीण भारत की समस्याओं से अवगत होते हैं। इस प्रकार ग्रामों में उचित नेतृत्व का निर्माण करने एवं विकास कार्यों में जनता की अभिरुचि बढ़ाने में पंचायतों का प्रभावी योगदान रहता है। इन समस्याओं के माध्यम से जनता शासन के अत्यंत निकट पहुँच जाती है। इसके फलस्वरूप जनता एवं प्रशासन के मध्य परस्पर सहयोग में वृद्धि होती है, जो कि भारतीय उत्थान हेतु परमावश्यक है। पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों के मध्य स्थानीय समस्याओं का विकेन्द्रीकरण किया जा सकता है। प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की इस प्रक्रिया में शासकीय सत्ता गिनी- चुनी संस्थाओं में न रहकर गांव की पंचायत के कार्यकर्ताओं के हाथों में पहुँच जाती है। पंचायतें लोकतंत्र की प्रयोगशाला हैं। ये नागरिकों को अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रयोग की शिक्षा देती हैं। साथ ही उनमें नागरिक गुणों का विकास करने में सहायता प्रदान करती हैं। आधुनिक युग को नागरिकों की उभरती हुई जन आकांक्षाओं का युग माना जाता है। वर्तमान समय में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के सहज परिणाम स्वरुप शासन सम्बन्धी कार्यों का अत्यधिक विस्तार हुआ है।

ऐतिहासिक रूप में वंचित समूहों के प्रतिनिधित्व, भागीदारी और सशक्तिकरण के सम्बन्ध में पंचायतों की नई पीढ़ी ने उल्लेखनीय प्रगति की है। स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं में अनुसूचित जातियों और ऐतिहासिक रूप से वंचित अन्य वर्गों के लिए सीटों के आरक्षण के कारण आज शासन प्रक्रिया कहीं अधिक गहरी और कहीं ज्यादा व्यापक है, बेशक यह उतनी पारदर्शी नहीं हो पाई है, हालांकि यह तस्वीर का केवल एक ही पहलू है। तस्वीर का दूसरा पहलू यह है कि नई-नई शक्ति प्राप्त वर्गों खासकर दलितों के विरूद्ध हिंसा, दुर्व्यवहार और अवहेलना का सिलसिला भी जारी है। पंचायती राज संस्थाओं में भारतीय राजनीति को पूरी तरह बदल देने की क्षमता है। शासन प्रक्रिया धीरे-धीरे सरकारों के एकाधिकार से निकल रही है। सबसे निचले स्तर पर दलितों, आदिवासियों, महिलाओं और गरीबों के सत्ता में आने से शासन प्रक्रिया में अब बराबरी का स्तर आ गया है। आरक्षण ने वंचित समूहों को बेहतर पहचान दिलाई है और स्थानीय मुद्दों को प्रभावित करने का भी अवसर प्रदान किया है। एक प्रतिनिधि सरकार लोगों के जितना करीब होगी, वह उतना ही बेहतर काम करेगी। आदर्श स्थिति यह होगी कि स्थानीय सरकारें उच्चस्तरीय सरकारों की बराबर की भागीदारी हों। ग्रामीण जनता के सशक्तीकरण से आर्थिक प्रगति तेजी होगी और लोकतांत्रिक संस्थाएं सुदृढ़ होंगी।

प्रोफेसर रजनी कोठारी के अनुसार, इन संस्थाओं ने नए नेताओं को जन्म दिया है, जो आगे चलकर राज्य और केन्द्रीय सभाओं के निर्वाचित प्रतिनिधियों से अधिक शक्तिशाली हो सकते हैं। पंचायती राज के माध्यम से भारत की शासन प्रणाली में एक नवीन एवं सजीव प्रणाली की नींव रखी जा चुकी है और इसके परिणामस्वरूप भारत की स्थानीय स्वशासन व्यवस्था में उतार-चढाव देखने को मिलते हैं-

1. स्थानीय स्वशासन के माध्यम से उत्साही कार्यकर्ताओं में स्थान मिल गया और उन्हें आगे बढने के लिए प्रशिक्षण की सुविधायें उपलब्ध हो गई।
2. स्थानीय स्वशासन का दूरगामी प्रभाव यह हुआ कि ग्रामीण राजनीति मे गतिशीलता एवं बढ़ गई।
3. स्थानीय स्वशासन का चुनाव लोकसभा एवं विधानसभा के चुनावों की भाँति होता है, जिसके कारण गुटबन्दी की भावनाएँ विकसित हो गई है और राजनीति के अखाड़े बनते जा रहे हैं।
4. 73वें संविधान संशोधन द्वारा पिछड़ी जातियों एवं महिलाओं के विकास के लिए पंचायती राज में सीटों के आरक्षण का प्रावधान किया गया है, जिससे कि उनमें नवीन चेतना का विकास हो सके।

5. जिला प्रशासन और सामुदायिक विकास दोनों विभागों के कर्मचारियों को पहली बार पर्याप्त शक्ति सम्पन्न और राजनीतिक समर्थन द्वारा प्रतिरक्षित जनप्रिय सस्थाओं के एक सुसगठित जाल का सामना करना पड़ रहा है।
6. इनके माध्यम से सम्पर्क सूत्र की राजनीति का विकास हुआ। गाँव, जिलों व राज्यों के मुख्यालयों से जुड़ने लगे। राज्यस्तरीय नेता ऐसी जोड़-तोड़ करने लगे कि उनके गुट एवं पार्टी के व्यक्ति पंचायतों में आयें, ताकि उनका समर्थन मजबूत बन सके। पंचायती संस्थाएं एवं नेतृत्व गाँवों को राजनीति से जोड़ने की महत्वपूर्ण कड़ी हैं।

12.6 स्थानीय स्वशासन व्यवस्था को अधिक प्रभावी एवं व्यावहारिक बनाने हेतु सुझाव

स्थानीय स्वशासन व्यवस्था को अधिक प्रभावी एवं व्यावहारिक बनाने के लिए निम्नाकिंत सुझाव दिये गये हैं। आईये इनका अध्ययन करते हैं-

1. स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को और अधिक कार्यपालिका अधिकार प्रदान किए जाने चाहिए। स्थानीय स्वशासन को और अधिक प्रभावी एवं व्यवहारिक बनाने तथा प्रोत्साहित करने हेतु यह आवश्यक है कि विधायी अंग की कार्यवाही का संचालन जन-भावनाओं के अनुसार किया जाए।
2. स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को कर लगाने के कुछ व्यापक अधिकार दिए जाने चाहिए। पंचायती राज संस्थाओं के पास अपने स्वयं के साधन विकसित किए जाने चाहिए, ताकि वे अपने वित्तीय साधनों में वृद्धि करके अधिक स्वतन्त्रतापूर्वक अपने विवेकानुसार कर्तव्यों का निर्वहन कर सकें।
3. ग्रामीण जीवन को प्रभावित करने वाले समस्त महत्वपूर्ण मुद्दों पर ग्राम सभा में विचार-विमर्श होना चाहिए। ग्राम सभा द्वारा विचार किए जाने योग्य विषयों के अंतर्गत पंचायत का बजट, पंचायत के कार्यों का विवरण, योजनाओं की प्रगति, ऋण एवं अनुदानों का उपयोग, स्कुल एवं सहकारी सहकारी समितियों की व्यवस्था, लेखा-परीक्षण की रिपोर्ट, आदि सम्मिलित किए जाने चाहिए।
4. पंचायती राज संस्थाओं की कार्यप्रणाली में राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए तथा इन संस्थाओं के चुनाव सर्वसम्मति के आधार पर होने चाहिए। स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के निर्वाचन नियत समय पर सम्पन्न कराए जाने चाहिए। पंचायती राज संस्थाओं को अकारण ही समयावधि से पूर्व ही भंग करने की राज्य सरकारों की प्रवृत्ति से बचाना चाहिए।

5. साधारण जनता की समस्याओं के निवारणार्थ पंचायतों की अधिकार एवं साधन प्रदान किए जाने चाहिए। पंचायतों के अधिकार क्षेत्र में लोगों की अधिकाधिक समस्याएं लाई जानी चाहिए, ताकि लोग अपनी कठिनाइयों को दूर कर सकें तथा समस्याओं का शीघ्र समाधान प्राप्त कर सकें।
6. जिला स्तर के अधिकारियों को समूहभाव अर्थात् टीम-भावना के साथ कार्यकरना चाहिए। उनका प्रमुख दायित्व जिला परिषद,पंचायत सरकारी नीतियों एवं निर्देशों के अनुसार तकनीकी दृष्टि से सुव्यवथित योजनाएं बनाने तथा उनकी क्रियान्विति में सहायता प्रदान करना है। जिला परिषद के मुख्य कार्यपालक अधिकारी को कर्मचारियों में अनुशासन स्थापित करने तथा उनसे काम लेने हेतु प्रभावपूर्ण शक्तियां प्रदान की जानी चाहिए। कर्मचारियों की वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट उसके ठीक ऊपर के उस अधिकारी द्वारा लिखी जानी चाहिए, जिसके अधीन वे कार्य कर रहे हैं। इस रिपोर्ट को मुख्य कार्यपालक अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए। जिला परिषद को सौंपे जा सकने योग्य कार्य एवं परियोजनाऐं राज्य सरकार द्वारा जिला परिषद को सौंप दिए जाने चाहिए। पंचायत समितियों से वे परियोजनाएं वापस ले लेनी चाहिए, जो जिला परिषद स्तर पर अधिक कुशलतापूर्वक क्रियान्वित की जा सकती हैं।

स्थानीय शासन व्यवस्था को अधिक प्रभावी बनाने के लिए वास्तविक सत्ता सम्पन्न लोकतान्त्रिक स्थानीय संस्थाओं की स्थापना आवश्यक है, क्योंकि वर्तमान व्यवस्था का लोकतान्त्रिक स्वरूप प्राय: लुप्त होता जा रहा है। प्रशासनिक तनाव को समाप्त करना अत्यावश्यक है ।

अभ्यास प्रश्न-

1. पंचायती राज को संविधान के किस अनुच्छेद में स्थान दिया गया है?
2. 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कितनी प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती है?
3. पंचायतों के सम्बन्ध में संविधान में कौन सी अनुसूची शामिल की गयी?
4. पंचायती राज संस्थाओं को कितने विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है?
5. शहरी स्वशासन से सम्बन्धित संशोधन कौन सा है?

12.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके होंगे कि विकेन्द्रीकरण वह व्यवस्था है जिसमें सत्ता जनता के हाथ में हो और सरकार लोगों के विकास के लिए कार्य करें। भारत में स्वस्थ लोकतान्त्रिक परम्पराओं की स्थापित करने के लिए स्थानीय शासन व्यवस्था ठोस आधार प्रदान करती है। इसके माध्यम से शासन सत्ता जनता के हाथों

में चली जाती है। इस व्यवस्था द्वारा देश की ग्रामीण एवं शहरी जनता में लोकतान्त्रिक संगठनों के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। कार्यकर्ता एवं पदाधिकारी स्थानीय समाज एवं राजनीतिक व्यवस्था के मध्य की कड़ी है। इन स्थानीय पदाधिकारियों के बिना ऊपर से प्रारम्भ हुए राष्ट्र-निर्माण के क्रिया-कलापों का चलना दुष्कर हो जाता है। स्थानीय स्वशासन संस्थाएं लोकतंत्र की रीढ़ हैं। लोकतंत्र की वास्तविक सफलता तब है जब शासन के सभी स्तरों पर जनता की भागीदारी सुनिश्चित हो। भारत की तरह बड़ी आबादी एवं क्षेत्रीय विभिन्नता वाले विशाल देश में लोकतंत्र को सार्थक एवं कल्याणोन्मुख बनाने के लिए विकेन्द्रीकरण अन्तर्निहित अनिवार्यता है। उच्च स्तर से निम्न स्तर की ओर शक्ति का प्रवाह होना लोकतंत्र में आवश्यक एवं वांछित प्रक्रिया है। अपनी तमाम वित्तीय, प्रशासनिक सीमाओं और राजनीतिक दबावों के बावजूद स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं ने भारतीय लोकतंत्र को तीसरे पायदान अर्थात जनता के पास ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। लोकतंत्र में कोई भी सुधार या संस्थागत विकास रातोरात नहीं, बल्कि क्रमिक रूप से होता है तथा क्रमिक परिवर्तन या विकास की प्रक्रिया ही दीर्घकालीन होती है। अतः स्थानीय नगरीय संस्थाएं भी समय के साथ मजबूती और प्रौढ़ता प्राप्त करेगी। बस जरुरत इस बात की है कि इन संस्थाओं को संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों को पूर्णता से बिना किसी हस्तक्षेप के प्रदान की जाएँ।

12.8 शब्दावली

प्रत्यक्ष प्रजातंत्र- शासन की वह व्यवस्था जिसमे सम्पूर्ण जनता स्वयं, प्रत्यक्ष रूप से बिना प्रतिनिधियों के प्रभुसत्ता का प्रयोग करती है।

प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण- ऐसी शासन व्यवस्था जिसमे जनता को शासन कार्यों में अधिकाधिक भाग लेने के अवसर हो, शक्ति का हस्तांतरण ऊपर से नीचे की ओर होता हो तथा स्थानीय स्वायत्त शासन की इकाईयां अपने प्रशासन का स्वयं प्रबन्ध करती हों।

सामाजिक नीति- सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन की दिशा में एक स्थायी एवं सुसंगत दृष्टिकोण।

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अनुच्छेद- 40, **2.** 68.84 प्रतिशत, **3.** ग्यारहवीं अनुसूची, **4.** 29 विषयों पर, **5.** 74वां संविधान संशोधन

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एस0आर0 माहेश्वरी, 2005, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

2. गिरवर सिंह, 2004 , भारत में पंचायती राज, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।

3. आश नारायण राय, जनवरी, 2010, पंचायतों का गणतंत्र, आजकल, नयी दिल्ली।

4. चन्द्रा पटनी, 2006, ग्रामीण स्थानीय प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।

5. हरिश्चंद्र शर्मा, 2005, भारत में स्थानीय प्रशासन, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।

6. चन्द्रप्रकाश बर्थवाल, 1997, स्थानीय स्वशासन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ।

12.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एल0सी0 जैन, 2005, डिसेंट्रलाइजेसन एंड लोकल गर्वनेंस, ऑरिएण्ट लौंगमैन, नई दिल्ली।

2. के0के0 शर्मा, 2005, भारत में पंचायती राज, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।

12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में स्थानीय स्वशासन की प्रगति का वर्णन कीजिए।

2. भारत में पंचायती राज एवं शहरी निकायों के प्रभाव का मूल्यांकन कीजिए।

3. स्थानीय स्वशासन की चुनौतियाँ क्या हैं? विस्तार से वर्णन कीजिए।

4. स्थानीय स्वशासन एवं उनसे सम्बन्धित जन आकांक्षाओं का परीक्षण कीजिए।